प्रथम भाग

फ्रांस की राज्यक्रान्ति

अपने प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय पिता

श्री आशाराम

और

अपनी पूजनीया स्वर्गीय माता

श्रीमती रामरक्खीदेवी

की पुण्यस्मृति में

विषय सूचि

निवेदन

यूरोप का यह आधुनिक इतिहास तीन भागों मे प्रकाशित किया जा रहा है । प्रथम भाग 'फ्रास की राज्यक्रान्ति' पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है । शेष दो भाग *'उन्नीसवी सदी'* और *'वर्तमान यूरोप'* भी शीघ्र ही छप कर तैयार हो जावेंगे । हिन्दी में बड़ी पुस्तक का प्रकाशित कर सकना सुगम कार्य नही है । कीमत अधिक हो जाने से उसका विक्रय कठिन हो जाता है । इसी दृष्टि से इस इतिहास को तीन भागों मे प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है । भागों का विभाग इस ढग से किया गया है, कि वे अपने आप में स्वतन्त्र ग्रन्थ भी रहें । आशा है, इस से पाठकों को सुविधा रहेगी ।

दूसरे भाग *'उन्नीसवीं सदी'* में निम्न लिखित विषय रहेगे—

१. यूरोप मे व्यावसायिक क्रान्ति
२ राष्ट्रीयता की भावना का विकास
३. क्रान्ति की तीसरी लहर
४. नैपोलियन तृतीय और उसका साम्राज्य
५. इटली की स्वाधीनता
६. जर्मनी का सगठन
७. इङ्गलैण्ड में शासन-सुधार
८. एशिया मे नवयुग का प्रारम्भ
९. आष्ट्रिया-हगरी का सगठन
१०. फ्रास में तृतीय रिपब्लिक की स्थापना
११. जर्मन साम्राज्य की प्रगति
१२. स्वतन्त्र इटली का विकास

भूमिका

ससार के आधुनिक इतिहास में यूरोप का महत्त्व बहुत अधिक है। सभ्यता, सस्कृति, ज्ञान, विज्ञान, कला-कौशल, व्यापार, व्यवसाय आदि सभी क्षेत्रों मे यूरोप इस समय ससार का शिरोमणि है। भूखण्ड के अधिकाश भाग पर आज कल यूरोप का आधिपत्य है। एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि सर्वत्र यूरोप की प्रभुता है। संसार की शान्ति यूरोप की राजनीति पर आश्रित है। यूरोप से जो नई लहर शुरू होती है, यूरोप में जो घटना घटती है, उसका प्रभाव सारे ससार पर पड़ता है।

यूरोप का यह महत्व सदा से नहीं चला आ रहा। न ही यूरोप सदैव इतना उन्नत रहा है। आज से केवल डेढ़ सदी पूर्व यूरोप की प्रायः वही दशा थी, जो भारत व अन्य चीन, ईरान आदि देशों की थी। सर्वत्र एकतन्त्र, स्वेच्छाचारी राजा राज्य करते थे। लोकतन्त्र शासन का कहीं नाम भी न था। कल कारखानों का विकास नहीं हुआ था। कारीगर अपने घर पर बैठ कर मोटे, भद्दे औज़ारों से कार्य करते थे। रेल, मोटर, हवाई जहाज, तार, रेडियो आदि का नाम भी कोई नहीं जानता था। यूरोप में जो यह असाधारण उन्नति हुई है, वह पिछली डेढ़ सदी कृति है। यूरोप का यह डेढ़ सदी का इतिहास सचमुच बड़ा अद्भुत व आश्चर्यजनक है। इस थोड़े से काल में यूरोप उन्नति की दौड़ में किस प्रकार इतना आगे बढ गया, इसकी कहानी बड़ी मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। इसी आश्चर्य जनक उन्नति की कहानी को सरल व स्पष्ट रूप से लिखने का प्रयत्न मैंने इस इतिहास में किया है।

भारत मे यूरोप के इतिहास को पढने का रिवाज़ बहुत कम है। यहा स्कूलों और कालिजों मे इङ्गलैंड का इतिहास पढाया जाता है। अपने देश के इतिहास की अपेक्षा भी इङ्गलैंड के इतिहास को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है। हम ब्रिटेन के साम्राज्य के आधीन हैं, अतः यदि ब्रिटिश लोग हमे अपने देश का इतिहास पढा कर अपनी उत्कृष्टता का सिक्का हमारे दिमागों पर जमाने का प्रयत्न करें, तो इस में आश्चर्य ही क्या है ? यह ठीक है कि केवल अपने देश के इतिहास को जानने से काम नही चल सकता। हमे दूसरे देशों का भी इतिहास पढना चाहिए। आज कल प्रवृत्ति यह है, कि ससार के इतिहास को समग्र रूप से पढा जाय। ससार एक है, मनुष्य जाति एक है, एक देश का दूसरे देश के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही कारण है, कि मानवीय उन्नति की कथा को भी समग्ररूप से ही पढ़ना उचित है। अपने देश का इतिहास तो विस्तार के साथ पृथक रूप से पढना ही चाहिए। पर अपने देश के इतिहास के साथ साथ ससार के इतिहास को भी समग्र रूप से पढना आवश्यक है। यूरोप और अमेरिका के उन्नत देशों मे आज कल यही ढंग बरता जाता है। यहा स्कूलों तक मे इतिहास के कोर्स का निर्माण इसी दृष्टि से किया जाता है। पर भारत मे अभी कालिजों तक में 'इङ्गलैंड का इतिहास' पढ़ाया जा रहा है। ससार व समग्र यूरोप के इतिहास को पढने की प्रवृत्ति अभी इस देश मे बहुत कम है।

इस में सन्देह नहीं, कि इङ्गलैंड के इतिहास में अनेक उपयोगी अंश हैं। विशेषतया, पार्लियामैण्ट द्वारा शासन का विकास और ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार—ये दो बाते ऐसी हैं, जो इङ्गलैंड के इतिहास की विशेषतायें हैं, और जिनके सम्बन्ध में यथोचित जानकारी प्रत्येक इतिहास प्रेमी के लिए आवश्यक है। पर इङ्गलैंड के इतिहास की और बहुत सी घटनाये ऐसी हैं, जिनका दूसरे देशों के लिए कोई विशेष

उपयोग नहीं। भारतीय विद्यार्थियों को उन्हें पढ़ाना उन पर ज्यादती करना है। मेरी सम्मति में, आज कल भारत के स्कूलों, कालिजों में जो स्थान इङ्गलैंड के इतिहास को प्राप्त है। वह यूरोप के इतिहास को मिलना चाहिए। इङ्गलैंड के इतिहास की मुख्य घटनायें, पार्लिया-मैण्ट द्वारा शासन का विकास और ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार—यूरोप के इतिहास मे आ ही जाती हैं। यूरोप का इतिहास पढने से फ्रास, जर्मनी, रशिया आदि अन्य देशों के इतिहास की भी उन बहुत सी घटनाओं का बोध होता है, जिन्हें जाने बिना संसार की वर्तमान प्रगति का परिचय हो ही नहीं सकता। मुझे आशा है, हमारे देश के शिक्षा-विज्ञ इस तरफ ध्यान देंगे, और यूरोप के आधुनिक इतिहास को पढने की ओर हिन्दी पाठकों की रुचि अधिकाधिक बढेगी। भारत आज कल स्वराज्य की ओर बड़ी तेज़ी से पग बढा रहा है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ साथ हमारे देश में सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्र में भी स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति बढ रही है। नये विचार प्रवेश कर रहे हैं, और पुरानी रूढियों व विश्वासों के विरुद्ध सब प्रकार की प्रतिक्रिया व क्रान्ति की प्रवृत्ति प्रबल हो रही है। ऐसे समय में यूरोप के आधुनिक इतिहास का अनुशीलन और भी अधिक उपयोगी है। यूरोप मे ये प्रवृत्तिया हम से पहले आ चुकी हैं, और उसका अनुभव हमारे लिए मार्ग प्रदर्शन कर सकता है।

यद्यपि यह पुस्तक यूरोप का आधुनिक इतिहास है, पर इस में आवश्यकतानुसार अन्य देशों का वृत्तान्त भी संक्षेप से आ गया है। जापान, चीन, ईरान, टर्की, आदि अन्य देशों के आधुनिक इतिहास की बहुत सी ज्ञातव्य बातों का समावेश प्रसंगवश इस पुस्तक में हुआ है। इस से इस पुस्तक की उपयोगिता और भी अधिक बढ गई है। मुझे आशा है, कि इस इतिहास से हिन्दी प्रेमियों को सन्तोष होगा।

सत्यकेतु विद्यालंकार

यूरोप का आधुनिक इतिहास

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

१. प्रस्तावना

फ्रास में राज्य क्रान्ति को हुए अभी पूरे डेढ़ सौ वर्ष भी नहीं हुए। डेढ सदी के इस थोड़े से समय में यूरोप ने जो असाधारण उन्नति की है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक, धार्मिक—सभी क्षेत्रों में यूरोप मे एक युगान्तर उपस्थित हो गया है। अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में, फ्रेंच राज्यक्रान्ति के श्रीगणेश के समय, यूरोप में एक भी देश ऐसा नहीं था, जहा लोकतन्त्र शासन हो। प्रायः सब देशों में वशक्रम से आये हुए एकतन्त्र स्वेच्छाचारी निरकुश राजा राज्य करते थे। उनका शासन सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त यह था—"हम पृथिवी पर ईश्वर के प्रतिनिधि हैं, और हमारी इच्छा ही कानून है।" समाज में ऊँच नीच का भेद विद्यमान था। कुछ लोग ऊँचे समझे जाते थे, क्योंकि वे कुलीन घर में पैदा हुए थे। दूसरे लोग नीचे समझे जाते थे, क्योंकि वे जन्म से नीच थे। कल कारखानो का

विकास उस समय नहीं हुआ था। रेल, मोटर, तार, हवाई जहाज आदि का नाम तक भी कोई नहीं जानता था। सूत कातने के लिये तकुवे और चरखे काम में आते थे। घोड़े या बैल से चलने वाली लकड़ी की गाड़िया सवारी के काम आती थीं। समुद्र में जहाज चलते थे, पर भाप व बिजली से नहीं, अपितु पाल व चप्पुओं से। कारीगर लोग अपने घर में बैठकर पुराने ढग के मोटे औजारों से काम करते थे। यान्त्रिक शक्ति से चलने वाले विशाल कारखाने यूरोप में उस समय तक नहीं बने थे। स्त्रियों को स्वाधीनता नहीं मिली थी। उनका कार्य-क्षेत्र घर था, और घर से बाहर वे बहुत कम दिखाई देती थीं। धर्म के मामले में लोग बड़े सकीर्ण और असहिष्णु थे। प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथोलिक लोग आपस में खूब लड़ते थे। आजकल के ज्ञान विज्ञान उस समय विकसित नहीं हुए थे। जिन बातों पर आज यूरोप गर्व करता है, उनका प्रादुर्भाव उस समय तक नहीं हुआ था।

डेढ़ सदी के इस थोड़े से समय में कितना भारी परिवर्तन हो गया है। इस बीच में पाश्चात्य ससार ने कैसी आश्चर्यजनक उन्नति की है। आज यूरोप में एक भी देश ऐसा नहीं है, जहा किसी न किसी रूप में लोकतन्त्र शासन विद्यमान न हो। वशक्रम से आये हुए निरकुश राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन आज यूरोप से नष्ट हो गये हैं। राजाओं का दैवी अधिकार' अब स्वप्न की बात हो गया है। समाज में ऊँच नीच का भेद मिट गया है। जन्म के कारण न आज कोई ऊँचा है, न नीचा। रेल, तार, मोटर, हवाई जहाज और रेडियो ने देश और काल पर कैसी अद्भुत विजय प्राप्त की है। आज बम्बई में बैठे लण्डन से बात की जा सकती है। दिल्ली में पेरिस का सगीत सुना जा सकता है। तीन दिन में हजारों मील की दूरी पार कर भारत से यूरोप पहुँच सकते हैं। आज कपड़ा बनाने के लिये तकली, चरखे व करघे की आवश्यकता नहीं रही। आज कपड़े की ऐसी मिलें विद्यमान हैं, जो एक दिन में लाखों गज

कपड़ा तैयार करती हैं। कल कारखानों के विकास ने यूरोप के आर्थिक जीवन को बिलकुल बदल दिया है। स्वतन्त्र कारीगर का स्थान आज पूँजीपति और मजदूर ने ले लिया है। स्त्रियां अब स्वाधीन हो चुकी हैं। उन्हें सब क्षेत्रों मे अब पुरुषों के बराबर अधिकार मिल गये हैं। स्त्रियों की स्वाधीनता के कारण यूरोप के सामाजिक और पारिवारिक जीवन में भारी परिवर्तन आ गया है। धर्म के क्षेत्र मे आज प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। धर्म के कारण आज कोई व्यक्ति किसी अधिकार से वञ्चित नहीं रहता। -

यह महान परिवर्तन किस प्रकार आगया, यही हम इस इतिहास में स्पष्ट करेंगे। पर यह ध्यान में रखना चाहिए, कि यह परिवर्तन एक दम नहीं हुआ। मनुष्य जाति के इतिहास में कोई परिवर्तन अकस्मात व एकदम नही होता। मानव शरीर के समान मनुष्य जाति भी एक जीती जागती चेतन सत्ता है। उसमे उन्नति और ह्रास दोनों धीरे धीरे होते हैं। हमने १७८९ से यूरोप के आधुनिक इतिहास को शुरू किया है। इस वर्ष फ्रांस में राज्य-क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ था। पर यह नहीं समझना चाहिये, कि १७८९ मे ये सब महान् परिवर्तन यूरोप में अकस्मात् शुरू होगये थे। ये परिवर्तन देर से धीरे धीरे हो रहे थे। १७८९ के बाद भी ये धीरे धीरे होते रहे। पर सुगमता के लिये हमने १७८९ के साल को आधुनिक यूरोपियन इतिहास का प्रारम्भ करने के लिये चुन लिया है। जिस प्रकार मनुष्य के जीवन मे बाल्य, यौवन और बुढ़ापा—तीनों अवस्थाये क्रमशः आती हैं। हम यह नही बता सकते कि किस दिन बाल्यकाल समाप्त हुआ और यौवन का प्रारम्भ हुआ, या यौवन का अन्त हो बुढ़ापा शुरू हुआ। पर यह निश्चित है, कि किसी समय बाल्य के बाद यौवन और यौवन के बाद बुढ़ापा आजाता है। हम केवल सुगमता के लिये यह मान लेते हैं, कि २५ वर्ष की आयु में यौवन और ५० वर्ष मे बुढापा शुरू हो जाता है। इसी तरह मनुष्य जाति के इतिहास में परिवर्तनों के धीरे धीरे होने के

कारण यह नहीं कहा जा सकता, कि कब मध्यकाल समाप्त हुआ और आधुनिक काल का प्रारम्भ हुआ। पर इतिहास लेखक अपनी सुगमता के लिये कोई निश्चित वर्ष चुन लेते हैं, और हमने इस इतिहास में फ्रास की राज्यक्रान्ति के श्री गणेश के वर्ष—सन् १७८९ को आधुनिक यूरोपियन इतिहास को शुरू करने के लिये चुना है।

१७८९ से १९३९ तक डेढ सदी के इस काल में यूरोप ने जो आश्चर्य-जनक उन्नति की है, उसी पर हम इस ग्रन्थ म प्रकाश डालेंगे। पर यूरोप के आधुनिक इतिहास को शुरू करने से पूर्व यह जरूरी है, कि हम प्राचीन और मध्यकालीन यूरोप के सम्बन्ध मे भी कुछ विचार करें। पुराने यूरोप को जाने बिना नवीन यूरोप को समझ सकना कठिन है।

२. प्राचीन काल

यूरोप का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। आज से ढाई हजार वर्ष यूरोप का बड़ा भाग जङ्गलों से आच्छादित था। जहा आजकल इङ्गलैंड, फ्रास, जर्मनी, रूस, नार्वे, स्वीडन, आष्ट्रिया आदि के सभ्य और समृद्ध राज्य हैं, वहा उस समय प्रायः जगली और असभ्य लोग बसते थे। उस समय यूरोप म केवल दो देश ऐसे थे, जहा सभ्यता का विकास हो रहा था। ये देश हैं, ग्रीस और रोम। आज से ढाई हजार वर्ष पहले ग्रीस अच्छा उन्नत और सभ्य देश था। वहा के लोग सुन्दर मकानों मे रहते थे, खेती करते थे, ससार के गूढ तत्वो पर विचार करते थे, और विविध देवी देवताओं की पूजा कर इहलोक और परलोक में सुखी होने का प्रयत्न करते थे। राजनीतिक दृष्टि से ग्रीस एक राज्य नही था। उसमें बहुत से छोटे-छोटे राज्य थे, जिन्हें हम नगर राज्य (सिटी स्टेट) कहते हैं। विविध नगर राज्यों के निवासी आपस मे निरन्तर लड़ते रहते थे, और एक दूसरे को अधीन कर अपना 'साम्राज्य' बनाने का यत्न किया करते थे। कुछ नगर राज्यों मे वशक्रम से आये राजा शासन

पृथक् हो गये। र्‌हाइन के पश्चिम में फ्रास का प्रदेश पवित्र रोमन साम्रा.ज्य से निकल गया। ८४० ईस्वीं के बाद फ्रास का विकास एक पृथक् राज्य के रूप मे होने लगा और र्‌हाइन के पूर्व में विविध राजा, महाराजा पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए निरन्तर एक दूसरे के साथ सघर्ष में व्याप्त रहे।

४. क्रूसड

छठी शताब्दि के अन्त मे अरब के मरुस्थल में एक महान् नेता तथा सुधारक का जन्म हुआ। इसका नाम था मुहम्मद। मुहम्मद से पूर्व अरब में बहुत सी छोटी-छोटी जातिया थी, जो निरन्तर आपस मे लड़ती रहती थीं। अरब लोग देवी देवताओं की पूजा करते थे, और अनेक विधि-विधानों तथा पूजापाठ द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते थे। मुहम्मद ने अरब के इस पुराने धर्म मे सुधार किया। ईश्वर एक है, सब मनुष्य उस एक ईश्वर के पुत्र हैं, सब परस्पर भाई हैं—इन सिद्धान्तों का प्रचार मुहम्मद ने किया। इतना ही नहीं, मुहम्मद ने अरब की विविध जातियों को सगठित कर उसे एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे परिवर्तित किया। इसके बाद अरब लोगों ने बड़ी उन्नति की। देखते-देखते अरब का साम्राज्य पूर्व मे सिन्ध नदी तक और पश्चिम में स्पेन तक विस्तृत हो गया। सिन्ध, बिलोचिस्तान, पर्शिया, ईराक, आर्मीनिया, काशगर, तुर्किस्तान, एशिया माइनर, पेलेस्टाइन, ईजिप्ट, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन—ये सब प्रदेश अरब साम्राज्य के अन्तर्गत थे। सभ्यता के चेत्र में भी अरब लोगों ने बड़ी उन्नति की। गणित, ज्योतिष, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में इन अरबों ने बहुत सी नई खोज की। अरब लोग धार्मिक क्षेत्र मे भी सहिष्णु थे। ईसाईयों की धर्म भूमि पेलेस्टाइन उनके साम्राज्य के अन्तर्गत थी—पर वहा तीर्थ करने के लिये आने वाले ईसाई यात्रियों पर वे अत्याचार नहीं करते थे।

पर अरबों का यह सभ्य और समृद्ध साम्राज्य देर तक कायम नहीं रहा। उत्तर पूर्व की ओर से उस पर तुर्क जातियों के आक्रमण शुरू हुए। इन तुर्क आक्रान्ताओं ने अरब साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया और उसके खण्डहरों पर अपने विविध राज्य कायम किये। तुर्क जातियों ने अरब साम्राज्य के धर्म-इस्लाम तथा वहा की सभ्यता को अपना लिया, क्योंकि इन दृष्टियो से तुर्क लोग अरबों से बहुत पिछड़े हुए थे। पर तुर्क लोग अरबों के समान सहिष्णु नहीं थे—उन्होंने पेलेस्टाइन में आने वाले ईसाई यात्रियों पर अत्याचार प्रारम्भ किये और यूरोप मे इस बात पर बड़ा असन्तोष हुआ।

उस समय अर्बन द्वितीय रोम का पोप था। उसने १०९५ ई० में यूरोप के विविध राजाओं से अपील की, कि आपस मे युद्ध बन्द कर पेलेस्टाइन को तुर्कों के हाथ से मुक्त करावे। पीटर नाम का एक भिक्खू सारे यूरोप मे इस बात के लिये आन्दोलन करता हुआ भ्रमण करने लगा, कि लोग तुर्कों को पवित्र धर्मभूमि से बहिष्कृत करने के लिये तैयार हो। सारे यूरोप मे धार्मिक जोश फैल गया—और लोग धर्मयुद्ध (क्रूसेड) के लिये निकल पड़े। इन धर्मयुद्धों का विस्तृत वर्णन करने की आवश्यकता नही है। कुल मिलाकर आठ क्रूसेड (१०९५ से १२५० इ०तक) हुए। पर अन्ततोगत्वा पेलेस्टाइन तुर्क लोगों के ही हाथ मे रहा।

यद्यपि क्रूसेडर अपना उद्देश्य पूर्ण नहीं कर सके, पर इनसे यह लाभ अवश्य हुआ, कि यूरोप के विविध राजा महाराजा कुछ समय के लिये एक उद्देश्य से सगठित हुए, और परस्पर मिलकर कार्य करने में समर्थ हुए। इन धर्मयुद्धों से व्यापार तथा पर्यटन को भी बड़ा प्रोत्साहन मिला। यूरोप के लोगों को अन्य देशों को अवलोकन करने का अवसर मिला। इससे उनकी दृष्टि भी कुछ विशाल होने लगी।

५. चर्च की स्थिति

मध्यकालीन यूरोप में क्रिश्चियन चर्च का प्रभाव बहुत अधिक था। उस समय के राजाओं को प्रजा की भलाई का जरा भी ध्यान नहीं था। उन्हें आपस में लड़ने झगड़ने से ही फुरसत नहीं मिलती थी। सामन्त-पद्धति के कारण उस समय के राज्य बहुत असंगठित तथा अव्यवस्थित थे। परन्तु क्रिश्चियन चर्च की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न थी। चर्च का जनता पर बड़ा प्रभाव था। सारे क्रिश्चियन पोप को अपना धर्मगुरु मानते थे। चर्च का सगठन बहुत उत्तम था। स्थान स्थान पर धार्मिक मठ बने हुए थे। उनके पादरी पोप के नीचे थे और उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। उस समय यूरोप में जो भी शिक्षा, विद्या व प्रकाश था, वह चर्च मे केन्द्रित था। सर्वसाधारण जनता चर्च मे आकर आश्वासन व शान्ति अनुभव करती थी। पादरी लोग जनता को इहलोक और परलोक मे सुख देने के लिये अनेकविध उपायों का अनुष्ठान किया करते थे।

सर्वसाधारण जनता पर प्रभाव रखने के अतिरिक्त उस समय चर्च के पास शक्ति भी बहुत थी। लोग समय समय पर चर्च को दान दक्षिणा देते रहते थे। जिन लोगों के कोई सन्तान न हो, वे प्रायः अपनी सम्पत्ति चर्च को दे देते थे। दान-दक्षिणा, चढावा और विरासत मे प्राप्त हुई सम्पत्तियों के कारण चर्च बहुत अधिक समृद्ध हो गया था। सगठन और व्यवस्था के कारण भी चर्च की शक्ति बहुत बढ गई थी। यह आवश्यक था, कि प्रत्येक व्यक्ति चर्च के अधीन हो और उसकी आज्ञाओं का पालन करे, जिस प्रकार कि आजकल प्रत्येक व्यक्ति राज्य के अधीन होता है और उसकी आज्ञाओं को मानता है। चर्च सरकार के समान लोगों से बाकायदा टैक्स भी वसूल करता था। चर्च के आदमी, पुजारी और पुरोहित राजकर से मुक्त थे। चर्च की सम्पत्ति पर राजा कर नहीं

लगा सकता था—पर चर्च के टैक्सों से कोई वञ्चित नहीं था। चर्च के अपने कानून थे, अपने न्यायालय थे, अपनी पुलीस थी, अपनी दण्ड व्यवस्थाये थीं। चर्च का सगठन ठीक राज्योंका सा था। चर्च की अपनी सरकार होती थी। प्रत्येक व्यक्ति चर्च की सरकार के अधीन था, चाहे वह पुरोहित हो या सामान्य मनुष्य। पर चर्च के आदमियों पर राजा को कानून नही लगता था—उन्हें राजकीय न्यायालय दण्ड नही दे सकते थे।

चर्च की स्थिति सब राज्यों व राजाओं से ऊपर थी। प्रत्येक राजा उसके अधीन होता था। यदि चर्च चाहे, तो किसी भी राजा को पद-च्युत कर सकता था। अपनी आज्ञा को मनाने के लिये चर्च के पास दो बड़े साधन थे—

१. धर्मबहिष्कार—यदि कोई राजा व अन्य मनुष्य चर्च की बात न माने, तो चर्च उसे धर्म बहिष्कृत कर देता था। आजकल धर्म से बहिष्कृत हो जाना बड़ी बात नही है। पर उस समय के यूरोपियन लोग धर्मप्राण होते थे। धर्म बहिष्कार उन्हें काबू करने के लिए बड़ा उत्तम साधन था।

२. धार्मिक हड़ताल—यदि कोई राजा धर्म बहिष्कार से काबू न आवे, तो चर्च उसके राज्य मे हड़ताल कर देता था। पादरी अपना काम करना बन्द कर देते थे। बच्चों का बपतिस्मा नहीं होता था। मृतकों का सस्कार नहीं हो सकता था। चर्च के घण्टे नहीं सुनाई देते थे। पादरी लोग श्रद्धालु भक्तों से पाप श्रवण करना बन्द कर देते थे। धर्म-प्राण जनता चिन्ताकुल हो किंकर्तव्यविमूढ हो जाती थी। सारे राज्य मे हाहाकार मच जाता था।

अनेक बार पोप राजा को पदच्युत कर उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति के राजा बनने की उद्घोषणा करता था, और धर्म भक्त प्रजा को आज्ञा देता था, कि पदच्युत राजा का साथ छोड़कर नये राजा का

अनुगमन करे। उस समय की यूरोपियन जनता पोप की आज्ञा का उल्लघन नहीं कर सकती थी।

मध्यकाल में पोप और चर्च की यह महान् शक्ति थी। उनके ये असाधारण अधिकार थे।

पर धीरे धीरे चर्च मे विकार आने लगा था। पोप और अन्य पादरी लोग अपने कर्तव्यों से विमुख हो भोग विलास मे मस्त रहने लगे थे। पोप एक वैभवशाली सम्राट् की तरह अपना जीवन व्यतीत करता था—उसके बिशप और एवट बड़े बड़े सामन्तो और मनसबदारों के समान आराम की जिन्दगी व्यतीत करते थे। सम्पत्ति के बढने के साथ साथ पादरियों मे अनेक दोष तथा बुराइया आने लगी थीं। धर्मगुरु का असली कार्य सेवा, परोपकार और सन्मार्ग का प्रदर्शन है। पर यूरोप के मध्यकालीन धर्मगुरु पदों के लिये आपस मे लड़ते थे, आमोद प्रमोद मे मस्त रहते थे और स्वार्थ का जीवन व्यतीत करते थे। इन कारणों से चर्च का प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा। लोग सोचने लगे, कि क्या चर्च की यह अपार सम्पत्ति और भोगविलास क्रिश्चियन धर्म के अनुकूल है।

यही कारण है, कि तेरहवीं सदी मे यूरोप में अनेक ऐसे आचार्य उत्पन्न होने शुरू हुए, जिन्होंने चर्च की शक्ति और वैभव के विरुद्ध आवाज़ उठाई। वाल्डो, जान हस्स और विक्लिफ इनमें प्रमुख हैं। इन आचार्यों ने यत्न किया, कि ईसाई धर्म का सुधार किया जावे और चर्च अपने कर्तव्य का पालन करे। पर पोप की सम्मति मे ये लोग काफ़िर और धर्मद्रोही थे। इनके विरुद्ध क्रूसेड उद्घोषित किया गया। वाल्डो के अनुयायी वाल्डेन्सियन लोग दक्षिणी फ्रांस मे बुरी तरह कतल किये गये। बोहेमिया मे हस्स के अनुयायियों के विरुद्ध बाकायदा सेनायें भेजी गईं। हस्स को जीते जी आग मे जलाया गया। विक्लिफ की हड्डियों को कबर से निकाल कर अग्नि मे भस्म किया गया।

चर्च के विरुद्ध केवल जनता में ही असन्तोष नहीं था। राजा लोग भी चर्च की शक्ति तथा वैभव को ईर्षा की दृष्टि से देखने लगे थे। अनेक आत्माभिमानी राजा चर्च के इशारे पर नाचने के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय (१२२०-१२५०) इनमें मुख्य हैं। पर चर्च की शक्ति इस समय बहुत अधिक थी। जिस तरह चर्च वाल्डो और हस्स को खाक में मिला सकता था, वैसे ही फ्रेडरिक द्वितीय का भी मानमर्दन कर सकता था। तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में कितने ही राजाओं और सम्राटों ने पोप के विरुद्ध विद्रोह किया, पर वे सफल न हो सके।

६. मध्यकाल में यूरोप की दशा

सामन्त पद्धति, पवित्र रोमन साम्राज्य और शक्तिशाली चर्च—मध्यकालीन यूरोप की ये तीन बड़ी विशेषतायें हैं। पर इस काल में जनता की क्या दशा थी? मध्यकालीन यूरोप में शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। सर्वसाधारण जनता सर्वथा अशिक्षित और निरक्षर थी। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, सामन्त और अमीर उमरा उस समय प्रायः निरक्षर होते थे। विद्या अगर कहीं थी, तो केवल क्रिश्चियन मठों में। उस समय यूरोप के शिक्षणालय केवल मठों में और पादरियों के आधीन होते थे। मठों में जो शिक्षा उस समय दी जाती थी, वह मुख्यतया धार्मिक होती थी। बाइबल और उसके विविध भाष्य उस समय अध्ययन की सब से उत्कृष्ट सामग्री थे। चर्च के गुरु और शिष्य लेटिन के अध्यापन और अध्ययन में व्यस्त रहते थे। लेटिन के व्याकरण को बड़ी सूक्ष्मता से पढ़ा जाता था। फिर लेटिन ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने की बारी आती थी। स्वतन्त्र विज्ञानों का विकास उस समय तक नहीं हुआ था। लोगों में स्वतन्त्र विचार की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था। अपनी बुद्धि से काम लेना गुनाह समझा जाता था। बाइबल और उसके भाष्यों में,

प्राचीन सत्य शास्त्रो मे जो कुछ लिखा है, उसको पढकर कण्ठस्थ कर लेना उस समय की सब से बड़ी विद्वत्ता थी। अंग्रेजी, फ्रेञ्च, जर्मन, इटालियन आदि भाषाये उस समय अशिक्षित जन-साधारण की भाषाये थीं, न इनमे कोई साहित्य था और न विद्या। उस समय के विद्वान् केवल लेटिन व ग्रीक भाषा पढते थे। साधारण लोक भाषाओं को तुच्छ दृष्टि से देखा जाता था।

उस समय यूरोप कृषि प्रधान था। अधिकाश जनता देहातों मे बसती थी। भूमि पर बड़े जमींदारो का अधिकार था। सर्व साधारण लोग दासों के समान जीवन व्यतीत करते थे। जिस भूमि पर वे खेती करते थे, उस पर उनका कोई भी अधिकार नहीं था। जमीदार जब चाहें उन्हें बेदखल कर सकता था। देहात प्रायः गन्दे और मैले होते थे। मामूली किसान अपने पशुओं को अपने ही साथ कच्चे मकानो मे रखते थे। शहरों की सख्या बहुत कम थी। शहरों की गलिया बहुत तङ्ग तथा टेढी-मेढी होती थीं। लोग छोटे-छोटे और तग घरों मे निवास करते थे। शहर के एक मुहल्ले में बड़े कुलीन लोग, दूसरे मुहल्ले मे अमीर व्यापारी लोग और तीसरे हिस्से मे व्यवसायी लोग बसते थे। गरीब मजदूर शहर से बाहर मैले कुचैले झोपड़ों मे निवास करते थे। शहर के अमीर लोग इन्हें अछूत और अपवित्र समझते थे।

यूरोप के इतिहास मे मध्यकाल को अन्धकार और अज्ञान का युग कहा जाता है। इस समय लोगों मे तरह-तरह के अन्धविश्वास प्रचलित थे। बीमारी का इलाज दवाई से कराना लोग पाप समझते थे। उनका खयाल था, कि रोग ईश्वर के कोप का परिणाम है। अतः उससे बचने का उपाय केवल प्रार्थना और पूजा है। विज्ञान का उस समय सर्वथा अभाव था। लोग समझते थे, जमीन स्थिर है, सूर्य उसके चारों ओर घूमता है। जमीन गोल नहीं, अपितु चपटी है। नक्षत्रों के सम्बन्ध मे आम लोगों का विचार था, कि ये जीवित जाग्रत चेतन प्राणी हैं।

भूगोल का ज्ञान लोगों को बहुत कम था। इगलैण्ड के पश्चिम में अटलांटिक सागर से परे क्या है? अफ्रीका कितना विशाल है? भारतवर्ष कहा है? ये सब बाते लोगों को नहीं मालूम थी। चीन और भारत का नाम कुछ लोग जानते थे, पर उन्हें भी यह ज्ञान नहीं था, कि ये देश किस जगह पर स्थित है।

लोग अपने अज्ञान मे सन्तुष्ट थे। उनमे जरा भी जिज्ञासा नहीं थी। वे अपनी हालत से सर्वथा सन्तुष्ट हो एक निद्रामयी जिन्दगी व्यतीत कर रहे थे। इसी काल मे अरब, मगोलिया, भारत तथा चीन की दशा यूरोप मे बहुत उत्तम थी। इन देशों के मुकाबले मे यूरोप उस समय एक 'अर्ध सभ्य' देश था।

७. यूरोप का पुनः जागरण और धार्मिक सुधारणा

पर धीरे-धीरे यूरोप की दशा मे परिवर्तन आना शुरू हुआ। वहा एक नई लहर शुरू हुई, जिसे हम पुनः जागरण की लहर कहते हैं। इसका प्रारम्भ निम्नलिखित कारणों व परिस्थितियों से हुआ—

(१) हम पहले कह चुके हैं, कि जिस समय यूरोप मे अविद्यान्धकार छाया हुआ था, तब अरब मे ज्ञान का दीपक प्रज्वलित था। अरब लोगों का साम्राज्य स्पेन तथा उत्तरी अफ्रीका मे भी विस्तृत था। यहा अरबों के अनेक बड़े बड़े विद्यापीठ विद्यमान थे, जिनमें ज्योतिष, गणित तथा अन्य विज्ञानों के अतिरिक्त प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के ग्रन्थों का भी स्वाध्याय होता था। यूरोपियन लोग इन विद्यापीठों के समर्ग में आकर नवीन ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ हुए। अरब पडित बड़े स्वतन्त्र विचारक तथा उदार होते थे। इनके ससर्ग से यूरोप मे भी स्वतन्त्र विचार की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई।

(२) यूरोप मे अनेक ऐसे विचारक उत्पन्न हुए, जो चर्च के प्रमाणवाद को मानने के लिये तैयार न थे, जो स्वतन्त्र विचार और वैज्ञा-

निक खोज के पक्षपाती थे। उदाहरण के लिये रोजर बेकन (१२१०-१२९३) को लीजिये। उसने इस बात पर बड़ा जोर दिया, कि हमें पुराणे लकीर का फकीर न होकर अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिये। हमें पुराने ग्रन्थों को कण्ठस्थ करने के स्थान पर वैज्ञानिक परीक्षणों पर जोर देना चाहिये। सत्य जानने का यह तरीका नहीं है, कि हम प्राचीन शास्त्रों की पक्तिया लगाये, अपितु सत्य ज्ञान का सर्वोत्तम साधन यह है, कि हम परीक्षण करें। रोजन बेकन इस युग का एक प्रतिनिधि है। उसी के समान अन्य बहुत से विचारक इस समय यूरोप मे उत्पन्न हुए, जो बुद्धि स्वातन्त्र्य के पक्षपाती थे, और मनुष्य के दिमाग को प्रमाणवाद की जजीरों से मुक्त कराने का आन्दोलन कर रहे थे।

(३) बुद्धि स्वातन्त्र्य के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप अनेक विचारकों ने सत्य की खोज के लिये परीक्षण शुरू किये। पहले यूरोपियन लोगों का यह विश्वास था, कि जो चीज़ बोझ मे सौगुनी होगी, वह सौ गुने वेग से नीचे गिरेगी। यह विश्वास ठीक है या नही, इस पर लोग शास्त्रीय विचार तो किया करते थे, पर इस के लिये परीक्षण करने का कष्ट नहीं उठाते थे। गेलिलियो (१५६४-१६४२) ने पहले पहल परीक्षण करके इस विश्वास को असत्य सिद्ध किया। कोपर्निकस (१४७३-१५४३) ने पहले पहल इस सत्य का पता किया कि सूर्य स्थिर है और पृथिवी उसके चारों ओर घूमती है। इसी तरह के अन्य बहुत से विचारक अब यूरोप मे उत्पन्न होने लगे, जो परीक्षणों द्वारा सत्य की खोज कर नये नये तथ्यों का पता लगा रहे थे। उस समय के विद्वान इनका केवल उपहास ही नहीं करते थे, अपितु इन्हें 'धर्म-द्रोही' और काफिर समझते थे। उन्हें भयङ्कर दण्ड दिये गये। अनेक को जीते जी आग मे जलाया गया। वस्तुतः ये लोग विज्ञान के लिये शहीद हो रहे थे। चर्च के सब अत्याचारों के बावजूद भी बुद्धि स्वातन्त्र्य और वैज्ञानिक खोज की यह

प्रवृत्ति रुकी नहीं। आज ससार ने जो असाधारण उन्नति की है, उसमें यह प्रवृत्ति बहुत बड़ा कारण है।

(४) इसी समय यूरोप मे कागज और छापेखाने का प्रवेश हुआ। पहले यूरोप मे लिखने के लिये बकरी की खाल प्रयोग मे आती थी। कागज का आविष्कार सबसे पूर्व चीन मे हुआ था। चीन से यह मगोल लोगों ने सीखा, मङ्गोलो से अरबों ने और फिर अरबों द्वारा कागज का प्रवेश यूरोप मे हुआ। चौदहवीं सदी मे पहले पहल यूरोप मे कागज का निर्माण शुरू हुआ था। अगली सदी में छापेखाने का भी प्रवेश हुआ और यूरोप में पुस्तकें अच्छी तथा सस्ती छपने लगीं। जनता मे ज्ञान-विस्तार के लिये पुस्तकों का प्राचुर्य तथा सस्ता होना बहुत आवश्यक है। कागज़ और छापेखाने का प्रवेश यूरोप के पुनः जागरण म बहुत सहायक हुआ।

इसके साथ ही पोप और चर्च के विरुद्ध असन्तोप की जो लहर प्रारम्भ हो रही थी, वह बड़ी तेजी के साथ यूरोप मे एक नई जागृति सी उत्पन्न कर रही थी। हम ऊपर वाल्डो, हस्स तथा विक्लिफ का नाम दे चुके हैं धीरे धीरे चर्च के विरुद्ध यह असन्तोप उग्र रूप धारण करता जा रहा था। पन्द्रहवीं सदी के अन्त मे जर्मनी मे एक सुधारक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम लूथर (१४८३—१५४६) था। उन दिनों पोप को रोम के गिरजे के लिये रुपये की आवश्यकता थी। रुपया इकट्ठा करने का एक सरल उपाय पाप-मोचन-पत्र जारी करना था। उस समय क्रिश्चियन लोग यह विश्वास करते थे, कि धर्म-मन्दिर बनवाने आदि सत्कर्मों से पाप मुक्त हो सकते हैं। इसलिये पोप समय समय पर लोगों को यह अवसर प्रदान करते थे, कि मन्दिर निर्माण मे हाथ बटा कर पापों से मुक्त होने का सौभाग्य प्राप्त करें। इसके लिये वे पाप-मोचन-पत्र जारी किया करते थे, जिन्हें धर्मप्राण क्रिश्चियन लोग बडी उत्सुकता से खरीदा करते थे। सन् १५१७ में पोप का एक एजेण्ट इन पाप-मोचन-पत्रों द्वारा क्रिश्चियन लोगों

को पापों से मुक्त करता हुआ विटनबर्ग पहुँचा, जहा लूथर अध्यापन का कार्य करता था। लूथर एक पुराने ढग का पादरी था, और धार्मिक प्रश्नों पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया करता था। बाइबल तथा अन्य क्रिश्चियन शास्त्रों का वह बड़ा गम्भीर विद्वान था। उसने अनुभव किया कि पाप-मोचन-पत्रों की व्यवस्था शास्त्रों के अनुकूल नहीं है। अतः उसने इसके विरुद्ध एक निबन्ध प्रकाशित किया। यह निबन्ध सर्वसाधारण जनता के लिये नहीं था। इसे लेटिन में लिखा गया था और विद्वानो के सम्मुख अपने विचार प्रकट करने के उद्देश्य से लूथर ने इसे प्रकाशित किया था।

पर राजाओं और जनता में चर्च के विरुद्ध जो असन्तोष की अग्नि विद्यमान थी, वह इस घटना से प्रदीप्त होगई। छापेखाने का प्रवेश इस समय तक यूरोप में हो चुका था। चर्च के विरोधियो ने अपने विचार छाप छाप कर प्रकाशित करने शुरू किये। लूथर इनका नेता बना। अनेक राजाओं ने इस आन्दोलन का साथ दिया। वे चर्च के वैभव तथा शक्ति को ईर्षा की दृष्टि से देखते थे। चर्च की सम्पत्ति को जब्तकर अपनी शक्ति बढ़ाने का यह सुवर्णावसर उन्हें प्राप्त हुआ था। देखते देखते चर्च और उसके विरोधियों की बाकायदा लड़ाई शुरू हो गई। इस समय यूरोप दो भागों में विभक्त होगया। एक भाग वह, जो पोप और चर्च के प्रभुत्व को पूर्ववत् स्वीकार करता था और दूसरा भाग वह जो पोप के विरुद्ध विद्रोह कर उसके प्रभुत्व का विरोध करता था। पहले भाग को 'रोमन कैथोलिक चर्च' और दूसरे भाग को 'प्रोटेस्टेन्ट चर्च' कहते हैं।

जहा पोप के विरुद्ध विद्रोह कर पृथक् चर्च की स्थापना हो रही थी, वहा भी वस्तुतः चर्च स्वतन्त्र नहीं हुआ था। वहा प्रायः चर्च के अधिपति राजा लोग हो रहे थे, जो चर्च की सम्पत्ति तथा जायदाद को जब्त कर अपने काबू में करते जाते थे। उत्तरी जर्मनी के विविध राजा महाराजाओं ने इसी तरह चर्च की सम्पत्ति जब्त कर अपने आधीन कर ली

थी और अपने अपने राज्य में स्वय चर्च के अधिपति बन गये थे। इङ्गलैण्ड में भी हेनरी अष्टम (१५३०) ने अपने एक स्वार्थ को पूर्ण करने के लिये पोप के विरुद्ध विद्रोह किया और इङ्गलिश चर्च को पोप की अधीनता से मुक्त कर राजा के अधीन कर दिया। यही दशा अन्य अनेक देशों मे भी हुई। अभिप्राय यह है, कि जो प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलन इस समय यूरोप में चल रहा था, उसका उद्देश्य केवल धार्मिक सुधार नहीं था। उसमें अनेक राजाओं के निजू स्वार्थ भी कार्य कर रहे थे। पर इसमे सन्देह नहीं, कि इस आन्दोलन ने यूरोप में एक नई जागृति उत्पन्न करने मे अवश्य सहायता की। इससे रोमन कैथोलिक चर्च मे भी नवजीवन का सञ्चार हुआ। प्रोटेस्टेण्ट लोगों का विरोध करने के उद्देश्य से रोमन कैथोलिक लोगों मे अनेक ऐसे सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ, जो बड़े सतर्क और जीवित जागृत थे। जैसुएट सम्प्रदाय इनमें प्रमुख है। इस सम्प्रदाय की स्थापना इग्नेटियस लोयोला (१५३९) ने की थी। लोयोला स्पेन का निवासी था। जैसुएट सम्प्रदाय आगे चल कर बहुत ही शक्तिशाली हुआ। दूर दूर देशों मे ईसाई-धर्म के प्रसार के लिये इस सम्प्रदाय के पादरियों ने बड़ा भारी कार्य किया।

प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक लोगों का पारस्परिक सघर्ष बड़ा ही वीभत्स और प्रचण्ड था। जहा के राजा प्रोटेस्टेण्ट थे, वे रोमन कैथोलिक लोगों पर घोर अत्याचार करते थे। जहा के राजा रोमन कैथोलिक थे, वे प्रोटेस्टेण्ट लोगों को जीने नहीं देते थे। रोमन कैथोलिक राज्यों मे पोप की सरक्षकता मे एक विशेष धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजिशन कोर्ट) का निर्माण हुआ था। जिन लोगों पर जरा भी सदेह होता था, कि वे चर्च के विरुद्ध सम्मति रखते हैं, उन्हें इस न्यायालय के सम्मुख पेश किया जाता था। वहा उन्हें कठोर दण्ड दिये जाते थे। मुख्य दण्ड यह था, कि ऐसे लोगों को जीते जी आग मे जला दिया जावे। एक एक राजा के शासनकाल मे एक एक देश मे इस ढग से

हजारों आदमियों को केवल इसलिये प्राणदण्ड दिया गया, क्योंकि वे धार्मिक क्षेत्र मे स्वतन्त्र सम्मति रखते थे। यूरोप के इतिहास मे यह धार्मिक असहिष्णुता सचमुच बड़ी वीभत्स है।

पर इन सब अत्याचारों और सघर्षों के होते हुए भी धीरे धीरे यूरोप में एक नवयुग का प्रारम्भ हो रहा था। लोग स्वतन्त्रता के साथ विचार करने लगे थे। अपनी सम्मति और विचारों के लिये प्राणो की बलि देने लगे थे।

८. नये प्रदेशों की खोज

पन्द्रहवीं सदी तक यूरोप के लोगों को बाहरी दुनिया का बहुत कम परिचय था। उस समय समुद्र मे जो जहाज चलते थे, वे चप्पुओं से खेये जाते थे। दिग्दर्शक यन्त्र का प्रवेश भी तब तक यूरोप मे नहीं हुआ था। ऐसे समय मे उन जहाजों व नौकाओं से महासमुद्रों को पार करना नितान्त कठिन था। पर पन्द्रहवीं सदी में दिग्दर्शक यन्त्र का प्रवेश पहले पहल यूरोप मे हुआ। यह यन्त्र भी कागज के समान अरब होता हुआ चीन से यूरोप मे आया था। इसके साथ ही अब जहाज पहले की अपेक्षा बड़े और मजबूत बनने लगे। चप्पुओं के साथ साथ पाल का भी प्रयोग शुरू हुआ। पाल से चलने वाले जहाजों से यह सम्भव था, कि अनुकूल वायु के साथ महासमुद्र को पार किया जासके।

उस समय यूरोप और एशिया का व्यापारिक मार्ग लालसागर से ईजिप्ट होता हुआ भूमध्यसागर पहुँचता था। एक दूसरा मार्ग एशिया की खाड़ी से बसरा बगदाद होता हुआ एशिया माइनर के बन्दगाहों पर जाता था। पहले इन व्यापारिक मार्गों पर अरबों का अधिकार था। अरब लोग सभ्य थे और व्यापार के महत्व को भली भाति अनुभव करते थे। पर पन्द्रहवीं सदी में तुर्क लोग इन प्रदेशों के स्वामी हो गये और एशिया व यूरोप के व्यापारिक मार्ग रुद्ध हो गये। सन् १४५३ में

जब तुर्क विजेता मुहम्मद द्वितीय ने कान्स्टेन्टिनोपल को भी जीत लिया, तब तो यूरोप के लोगों के लिये इन पुराने मार्गों से व्यापार कर सकना अत्यन्त कठिन हो गया।

अब यूरोपियन लोगों को नये मार्ग ढूढ़ निकालने की चिन्ता हुई। उस समय यूरोप का भारत आदि प्राप्त देशों से घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध था। विशेषतया,मसाले बहुत बड़ी मात्रा मे पूर्व की तरफ से यूरोप मे आते थे। इस व्यापार से लाभ उठाने के लिये अब नये मार्गों की खोज प्रारम्भ हुई। इस कार्य मे पोर्तगाल और स्पेन ने विशेष तत्परता प्रदर्शित की। पोर्तगीज लोगों ने सोचा, कि अफ्रीका का चक्कर काट कर पूर्व में पहुँचा जासकता है। इसी दृष्टि से अनेक पोर्तगीज मल्लाहों ने समुद्र तट के साथ साथ यात्रा प्रारम्भ की। आख़िर, १४९८ मे वास्कोडिगामा नामक पोर्तगीज मल्लाह एक नवीन मार्ग मे पहले पहल भारत पहुँचने मे समर्थ हुआ।

अफ्रीका का चक्कर काटकर एशिया पहुँचने का यह नया मार्ग इस प्रकार आविष्कृत हुआ। पर इसी समय कोलम्बस नामक एक इटालियन मल्लाह के मन मे एक नई कल्पना उत्पन्न हुई। पृथिवी गोल है, यह बात उस समय तक ज्ञात हो चुकी थी। कोलम्बस ने सोचा कि यदि अटलांटिक सागर मे निरन्तर पश्चिम की ओर चलते जावे, तो जमीन के गोल होने के कारण भारत पहुँचा जा सकता है। कोलम्बस के इस विचार का इटली मे किसी ने स्वागत नही किया। पर स्पेन के राजा ने उसकी सहायता की और १४९२ में वह अपनी कल्पना को क्रिया में परिणत करने के लिये चल पड़ा। उसके साथ छोटे छोटे तीन जहाज थे, जिनके मल्लाहों की कुल सख्या ८८ थी। अटलांटिक सागर में पश्चिम की तरफ चलते चलते ११ अक्टूबर १४९२ को जमीन के दर्शन हुए। कोलम्बस ने समझा, कि भारतवर्ष आ गया। वस्तुतः वह भारत नहीं था— वह एक नया महाद्वीप था, जो अब अमेरिका के नाम से प्रसिद्ध है।

कोलम्बस को जो महाद्वीप अचानक ही प्राप्त हो गया था, वह अत्यन्त विशाल था। उसके अधिकाश प्रदेश मे जगली और असभ्य जातिया निवास करती थीं। पर दो प्रदेश ऐसे भी थे, जहा अच्छे उन्नत सभ्य लोग बसते थे। ये प्रदेश थे मैक्सिको और पेरू। मैक्सिको मे एजटेक सभ्यता और पेरू में मय सभ्यता का विकास उस समय हो रहा था। कोलम्बस स्पेन के राजा की सहायता से समुद्र यात्रा के लिये निकला था, अतः स्वाभाविक रूप से अमेरिका पर स्पेन का अधिकार हुआ। स्पेनिश लोगों ने बड़ी निर्दयता से अमेरिका के निवासियों को नष्ट किया। न केवल वहा के जगली असभ्य लोगो को, अपितु एजटेक और मय लोगों का भी क्रूरता से सहार किया गया। यूरोप के लोग तब तक बारूद का प्रयोग जान चुके थे। वे बन्दूक चलाना सीख चुके थे। बन्दूक की मार के सामने अमेरिकन लोग न ठहर सके और कुछ ही समय मे उन लोगों का विनाश हो गया। स्पेनिश लोगों ने इस विशाल भूखण्ड मे अपने उपनिवेश बसाने प्रारम्भ किये। यह प्रदेश खनिज पदार्थों की दृष्टि से बडा समृद्ध था। सोने चादी की खानों से आकृष्ट हो स्पेनिश लोग बड़ी सख्या मे अमेरिका जाने लगे। इन नये प्राप्त हुए प्रदेशों से स्पेन की समृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढने लगी। स्पेन की होड़ मे अन्य यूरोपियन राज्य भी अमेरिका जाकर बसने के लिये प्रयत्नशील हुए। दक्षिण अमेरिका मे स्पेनिश लोग बस रहे थे, वहा पर उनका कब्जा हो चुका था। अतः फ्रास, ब्रिटेन आदि ने उत्तरी अमेरिका मे बसना शुरू किया। जहा आजकल सयुक्त राज्य अमेरिका है, वहा ब्रिटेन के तथा जहा अब कनाडा है, वहा फ्रास के उपनिवेश बसने शुरू हुए। अमेरिका के विस्तृत प्रदेशो पर अधिकार करने के लिये इन यूरोपियन राज्यों में परस्पर सघर्ष का भी प्रारम्भ हुआ।

अफ्रीका का चक्कर काट कर पहले पहल पोर्तगीज लोग भारत आये थे। उन्होंने इस नये मार्ग से पूर्वीय देशों के व्यापार को हस्तगत करना

शुरू किया। इस व्यापार से पोर्तगीज लोग बड़े समृद्ध हो गए। उनकी देखा देखी फिर अन्य यूरोपियन राज्य भी इसी दक्षिण मार्ग से एशिया जाने लगे। हालैण्ड, फ्रास, ब्रिटेन आदि मे पूर्वी व्यापार को हस्तगत करने के लिये कम्पनिया खड़ी की गई। ये कम्पनिया पूर्वी देशों के विविध वन्दरगाहों पर अपनी कोठिया कायम करती थीं, और अधिक से अधिक व्यापार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का उद्योग करती थी।

पर ये यूरोपियन जातिया केवल व्यापार से ही सन्तुष्ट नहीं रही। एशिया के विविध राज्यों की दशा उस समय उत्तम नहीं थी। भारत को ही लीजिये। अठारहवीं सदी में मुगल साम्राज्य क्षीण हो गया था, और विविध राजनीतिक सत्तायें शक्ति के लिये परस्पर सघर्ष करने लगी थीं। यही दशा उस समय जावा, सुमात्रा, मलक्का आदि देशो की थी। यूरोपियन लोगों ने इस राजनीतिक दुर्दशा का लाभ उठाया और व्यापार के साथ साथ अपनी राजनीतिक सत्ता भी स्थापित करनी शुरू की।

अमेरिका की प्राप्ति तथा पूर्वी व्यापार के दक्षिणी मार्ग की खोज से यूरोप के उत्कर्ष में बहुत सहायता मिली। जिन यूरोपियन लोगों को पहले यह भी ज्ञात नहीं था, कि भारत कहा है, और अफ्रीका कितना विशाल है, वे अब सारे भूमण्डल की परिक्रमा करने लगे। वस्तुत., यूरोप का अब पुनः जागरण हो गया था।

६. शक्तिशाली और निरंकुश राजा

यूरोप मे सभ्यता का पुन. जागरण हो रहा था। सब ओर नवजीवन और स्फूर्ति के चिह्न प्रगट हो रहे थे। पर राजनीतिक क्षेत्र मे अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। राजा पहले की ही तरह निरकुश और स्वेच्छाचारी थे। पोप की शक्ति कम हो जाने के कारण उनका प्रभाव और भी बढ गया था। वे बड़े वैभव के साथ राजप्रासादो मे निवास करते थे और आमोद प्रमोद मे अपना जीवन व्यतीत करते थे।

मध्यकाल के प्रारम्भ में सैंकड़ों हजारों राजा, महाराजा और सामन्त यूरोप के विविध प्रदेशों पर शासन करते थे। हम पहले बता चुके हैं, कि ये आपस मे निरन्तर लडते रहते थे। कोई किसी की प्रभुता स्वीकार नहीं करता था। पर धीरे-धीरे इन बहुत से राजा महाराजों के बीच मे कुछ शक्तिशाली राजाओं का विकाश शुरू हुआ, जिन्होंने अपने सामन्तों को पूरी तरह काबू मे ला अपना एकतन्त्र शासन स्थापित किया। सामन्त लोग उनके प्रतिद्वन्द्वी न हो उनके पूर्णतया वशवर्ती हो गये। वे आपस के झगड़ों को लड़ाई से निबटाने के स्थान पर उस शक्तिशाली राजा से न्याय कराने लगे। अपनी-अपनी जागीरों मे स्वतन्त्र राजा के समान रहने के स्थान पर वे उस एक राजा के शानदार दरबार मे रहना अधिक सम्मानास्पद समझने लगे। यह स्थिति यूरोप मे एकदम नहीं आ गई। इसे आने मे भी बहुत समय लगा। सत्रहवीं सदी तक यूरोप के अधिकाश देशों मे यह स्थिति आ चुकी थी। इसे आने मे बारूद का प्रवेश बहुत सहायक हुआ। सामन्तो की शक्ति का आधार मुख्यतया उनके पृथक् पृथक् दुर्ग थे, जो प्रायः मट्टी के बने होते थे। जब तक बारूद नहीं थी, सामन्त अपने इन दुर्गों म सर्वथा अजेय थे। पर तोपों और बारूद के सम्मुख मट्टी के दुर्ग देर तक नही ठहर सकते थे। यही कारण है, कि जब बारूद की मार से दुर्ग नष्ट होने लगे, तो सामन्तों की शक्ति भी क्षीण होनी शुरू हुई। इसके अतिरिक्त चौदहवीं पन्द्रहवीं सदियो मे यूरोप के प्रायः सभी देशो मे बड़े भयङ्कर युद्ध हुए। ये युद्ध विविध राजवंशो और विविध सामन्तों मे परस्पर हो रहे थे। इनके कारण बहुत से राजकुल नष्ट हो गये और विविध सामन्तों की शक्ति क्षीण हो गई। इसी का परिणाम हुआ, कि कुछ शक्तिशाली राजाओं के लिये उत्कर्ष का मार्ग साफ हो गया और स्वेच्छाचारी निरकुश राजाओं का विकास हुआ।

फ्रास, इङ्गलैण्ड, स्पेन, रूस आदि सभी देशों मे यही प्रक्रिया हुई थी। इस प्रक्रिया का प्रदर्शन कर सकना यहा सम्भव नहीं है, पर सत्रहवीं सदी तक इन सब देशों के शक्तिशाली राजाओं ने अपने-अपने सामन्तो को पूरी तरह काबू कर अपनी सत्ता का पूर्णतया विकास कर लिया था। इङ्गलैण्ड का राजा हेनरी अष्टम (१५३०), फ्रास का राजा लुई १४ वा (१६४३), स्पेन का राजा फिलिप द्वितीय (१५५८), रूस का राजा पीटर (१६८९), सब इसी प्रकार के शक्तिशाली निरकुश राजा थे। वे अपने को पृथिवी पर ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे। उनकी इच्छा ही कानून थी। उनका वैभव अपरम्पार था। सारी प्रजा और सामन्त उन्हें ईश्वर का अवतार मानते थे। उनके दैवी होने मे किसी को भी सन्देह नहीं था।

निरकुश शासन के इस युग मे भी कोई कोई स्थान ऐसे थे, जहा जनता के शासन का धीरे धीरे सूत्रपात हो रहा था। स्विटजरलैंड की पहाड़ी घाटी के निवासी चौदहवीं सदी में ही अपना शासन अपने आप करने लगे थे। होलैण्ड के निवासियों ने स्पेन के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर १६४८ मे स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। स्वतन्त्र होने के बाद होलैण्ड में जो सरकार कायम हुई थी, उसमे जनता का पर्याप्त हाथ था। पर लोक सत्तात्मक शासन के लिए सबसे प्रबल सघर्ष इङ्गलैण्ड में हुआ। सत्रहवीं सदी मे स्टुअर्ट वशी राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध इङ्गलैण्ड मे जो क्रान्ति हुई, उस पर हम आगे चलकर प्रकाश डालेंगे। पर इन थोड़े से अपवादों को छोड़ कर अठारहवीं सदी तक यूरोप के सभी देशों के शासक पूर्णतया स्वेच्छाचारी रहे।

पर यूरोप मे सर्वत्र जो पुनः जागरण हो रहा था, जो युग परिवर्तन हो रहा था, उसका प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र पर न पड़े, यह असम्भव था। कुछ समय बाद ही अठारहवीं सदी के अन्त में फ्रास मे राज्यक्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के साथ यूरोप के राजनीतिक क्षेत्र मे एक नवीन प्रवृत्ति का

प्रारम्भ हुआ। आज वह प्रवृत्ति पूर्णतया सफल हो चुकी है। सब देशों मे एकतन्त्र शासनों का अन्त हो लोक-तन्त्र शासनों की स्थापना हो गई है। यूरोप के आधुनिक इतिहास में हम इन्हीं महान् परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे।

यूरोप के पुनः जागरण का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। जब एक बार मनुष्यों ने पुरानी रूढियों और अन्धविश्वासों का परित्याग कर अपनी बुद्धि से काम लेना प्रारम्भ किया, तब उनके बन्धन निरन्तर टूटते गए। प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का मार्ग उनके लिए खुलता गया। न केवल राजनीतिक क्षेत्र में, अपितु सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक, और धार्मिक क्षेत्रों में भी यूरोप ने असाधारण उन्नति की। हम इस इतिहास में इसी चौमुखी उन्नति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

हमने १७८९ तक यूरोप का इतिहास बहुत सक्षेप से यहा दिया है। इसे क्रमबद्ध इतिहास कहा जा सकता है, इस बात में भी हमें सन्देह है। हमने यहा केवल उन बातों को लिखा है, जिनका जानना आधुनिक यूरोपियन इतिहास को समझने के लिये आवश्यक है। कुछ बातें जो आवश्यक थीं, हमने जान बूझ कर यहा नहीं लिखीं। उन्हें यूरोप के आधुनिक इतिहास में विविध प्रकरणों को स्पष्ट करते हुए दिया गया है। उनका वहा देना अधिक उपयोगी है।

दूसरा अध्याय

राज्यक्रान्ति से पूर्व फ्रांस की दशा

एकतन्त्र राजा—राज्यक्रान्ति से पूर्व फ्रांस में स्वेच्छाचारी एकतन्त्र राजा राज्य करते थे। ये राजा वंशक्रमानुगत होते थे और अपने को ईश्वर के सिवा किसी अन्य के सम्मुख उत्तरदायी न समझते थे। इनकी इच्छा ही कानून थी। ये जिसे चाहते, राजकीय पद पर नियत करते। जिसे चाहते पद-च्युत करते। राजा अपनी इच्छा से जनता पर कर लगाता था और राजकीय आमदनी को अपनी इच्छानुसार ही खर्च करता था। सन्धि और विग्रह का अधिकार केवल राजा को था। वह अपनी इच्छा से, प्रजा से किसी भी प्रकार की सलाह बिना लिये, किसी राजा व देश से लड़ाई शुरू कर सकता था। वह जिसे चाहे कैद कर सकता था। जिसे चाहे सजा दे सकता था। लुई १६वा अभिमान से कहा करता था—"यह कानून है, क्योंकि मेरी ऐसी ही इच्छा है। राज्य की प्रभुत्व शक्ति मुझ में निहित है। कानून बनाने का हक केवल मुझे है, इसके लिये मुझे किसी पर आश्रित रहने व किसी का सहयोग लेने की आवश्यकता नहीं।" फ्रांस के राजाओं का शासन-सम्बन्धी मूल सिद्धान्त यह था, कि राजा पृथिवी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि है। वह राजा है, क्योंकि परमेश्वर ने उसे राजा बनाया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर परमेश्वर ब्रह्माण्ड के विविध प्राणियों की किसी भी प्रकार

सम्मति बिना लिये स्वेच्छा से शासन करता है, उसी प्रकार राजा अपने राज्य मे प्रजा की सम्मति पर जरा भी आश्रित हुए बिना अपनी इच्छा से शासन करता है। यदि राजा दयालु है, प्रजा का सौभाग्य है। यदि राजा अत्याचारी है, तो किसी का क्या बस है! परमेश्वर के शासन मे आंधिया आती हैं, तूफान आते हैं, महामारिया फैलती हैं, भूकम्प आते हैं—इन सब ईश्वरीय विधानों के सम्मुख मनुष्य क्या कर सकता है? कुछ नही। अपने पापों का फल समझ कर चुप रह जाने के सिवा मनुष्य की गति ही क्या है? इसी प्रकार, यदि राजा अत्याचार करता है, कर से जनता को पीडित करता है, निरपराधियों को शूली पर चढाता है, तो इन राजकीय विधानों के सम्मुख मनुष्य का क्या बस है? मनुष्य को यह सब राजकीय प्रकोप भी चुपचाप सहना ही चाहिये! और हो ही क्या सकता है!

फ्रास के राजा इसी पुराने सिद्धान्त को मानने वाले थे। अधिकाश जनता भी यही विश्वास रखती थी। जनता का सम्पूर्ण जीवन राजा पर आश्रित था। राजा बड़ी शानशौकत से, हजारों पार्श्वचरों और अनुचरों के साथ वर्साय के राज प्रासाद मे निवास करता था। पेरिस से १२ मील दूर राजा और उसके दरबारियों के भोग-विलास का केन्द्र यह वर्साय नगर विराजमान था। इसकी कुल आबादी ८० हजार थी। ये इतने लोग राजा और उसके दरबार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये ही इस सुन्दर नगरी मे एकत्रित थे। राजा का महल तीस करोड़ रुपयों की लागत से बनाया गया था। यह विपुल धनराशि जनता से कर के रूप मे वसूल की गई थी। राज दरबार मे १५ हजार आदमी थे। अकेली रानी के नौकरों की सख्या ५०० से ऊपर थी। राजा के खर्च की कोई हद न थी। राजा की अपनी घुड़साल पर ही सालाना एक करोड़ रुपये से अधिक खर्च आता था। ५० लाख के लगभग रुपये खाने पीने में उठा दिए जाते थे। राजा के आमोद प्रमोद, शान शौकत और

भोग विलास का खर्च ६ करोड़ रुपया सालाना से कम न था! यह सब धन कहा से प्राप्त होता था? जनता के टैक्सों से, गरीब जनता के पसीने की मेहनत से।

यह भोग विलास प्रधान, स्वेच्छाचारी, एकतन्त्र शासन जनता के लिये असह्य न होता, यदि इसमें क्षमता होती। एकतन्त्र शासन दुनिया में रहे हैं, हजारों सालों तक रहे हैं; पर वे सफल तभी हुए, जब कि वे मजबूत थे—जब कि उनमें शक्ति थी। पर फ्रास का इस समय का शासन बहुत ही ढीला ढाला तथा विच्छृङ्खल हो गया था। राजा तथा उसके कर्मचारियो को शासन की कोई परवाह न थी। उन्हें परवाह थी, अपने आमोद-प्रमोद की, अपने सम्मान की और अपने आराम की जिंदगी की। ऐसा शासन देर तक कायम नहीं रह सकता था। जब उसे क्राति का धक्का लगा, तब वह मुकाबला नहीं कर सका। वह पुराने खोखले वृक्ष की तरह लड़खड़ाकर गिर गया।

राजा की स्वेच्छाचारिता—राजा की स्वेच्छाचारिता अनेक अशों में सीमा को लाघ चुकी थी। फ्रास के राजा जिसको चाहते, गिरफ्तार कर सकते थे। केवल राजा ही नहीं, उसके रिश्तेदारों, कृपापात्रो, कर्मचारियों और सरदारों को भी यह अद्भुत अधिकार प्राप्त था। राजा एक किसम के "मुद्रित पत्र" जारी किया करता था, इन पर राजा की मुद्रा लगी होती थी और किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करने तथा सजा देने का हुकम जारी किया गया होता था। किसको गिरफ्तार किया जाय, उसके नाम की जगह खाली रहती थी। कितनी और क्या सजा दी जाय, इसका स्थान भी खाली रहता था। जिस आदमी के पास यह "मुद्रित पत्र" मौजूद हो, उसे इन खाली स्थानों को भर देना होता था। वे "मुद्रित पत्र" की खाना पूरी कर जिसे चाहते गिरफ्तार करवा देते और जो सजा चाहते, दिलवा देते। राजा को यह जानने की जरूरत भी नहीं थी, कि किसे और क्या सजा दी जा रही है। ये "मुद्रित पत्र"

भी एक सौगात थे, एक उपहार थे, एक कृपा थी—जिसे राजा बड़ी उदारता के साथ अपने कृपापात्रों को प्रदान किया करते थे। कितने निरपराध इन "मुद्रित पत्रों" से कष्ट भोगते थे, इसका अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। जो आदमी राजा की कृपा से यह "मुद्रित पत्र" प्राप्त करले, उसके दुश्मनों की खैर नहीं थी। न्याय और स्वतन्त्रता का खून करने के लिये इससे उत्तम साधन अन्य क्या हो सकता था? इन "मुद्रित पत्रों" के कारण जनता का जीवन सदा खतरे में रहता था, उनका जीवन राजा और उसके कृपापात्रों के हाथ में रहता था।

फ्रांस की जनता पर जो टैक्स लगाये जाते थे, वे दो प्रकार के थे—प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष टैक्सों में नमक, शराब, तमाखू और आयात और निर्यात माल पर लगाये गये टैक्स प्रमुख थे। नमक पर कर की मात्रा बहुत अधिक थी। इस कर से जनता बहुत कष्ट में थी। नमक जैसी उपयोगा वस्तु उन्हें बहुत ही महगी कीमत से प्राप्त होती थी। इन करों को वसूल करने का तरीका बहुत ही अजीब था। अमीर आदमियों व कम्पनियों को टैक्स वसूल करने का ठीका राज्य की तरफ से दे दिया जाता था। ये ठेकेदार एक निश्चित धनराशि देकर मनमानी टैक्स वसूल करने का हक प्राप्त कर लेते थे। इन्हें अपनी जेब भरने से मतलब था। जनता की अवस्था की जरा भी परवाह किये बिना ये अपने स्वार्थ को दृष्टि में रखकर टैक्स वसूल करते थे।

प्रत्यक्ष-कर भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्ति से होने वाली आमदनी पर लिया जाता था। पर इस कर का ढग इस प्रकार का था, कि अमीरों पर बहुत ही कम बोझ पड़ता था। गरीबों पर टैक्स का भार बहुत अधिक था। मामूली किसान अपनी जमीनों से जो कुछ पैदा करते थे, उसका आधा उन्हें भूमिकर के रूप मे राज्य को दे देना होता था। पर बड़े बड़े जमींदार राज्य-कर से प्रायः मुक्त ही रहते थे।

विविध करों से जो आमदनी होती थी, राजा उसका उपयोग अपनी इच्छा से करता था। राजा के निजी खर्च और राज्य के खर्च मे कोई भेद न था। राजा जितना चाहे, खर्च कर सकता था। वह जो बिल बना दे, राजकर्मचारियों को आख मींच कर उसे स्वीकार करना पड़ता था। वे कोई आपत्ति न कर सकते थे।

लोक सभाओं का अभाव—फ्रास मे कानून बनाने के लिये या राजकीय विषयों पर विचार करने के लिये कोई ऐसी लोक-सभाये न थी, जिनमे जनता के प्रतिनिधि एकत्रित हो सके। निस्सन्देह, पुराने समयों में फ्रास मे भी एक इस प्रकार की सभा थी, जिसे 'एस्टेट्स जनरल' कहते थे, पर सन् १६१४ के बाद उसका एक भी अधिवेशन नहीं हुआ था। लोग यह भी भूल गये थे, कि इस 'एस्टेट्स जनरल' के क्या सगठन और नियम थे। अब तो फ्रास पर राजा का अबाधित शासन था। उसने अपनी मदद के लिये कुछ सभाये बनाई थीं, पर ये राजा की अपनी सृष्टि थी। ये राजा के सम्मुख उत्तरदायी थीं, उसकी इच्छा पर अवलम्बित थीं, इनका प्रयोजन यही था, कि राजा अपने सामान्य राजकीय कार्यों से भी निश्चिन्त हो सके, वह सब चिन्ताओं से मुक्त होकर मौज से अपने कृपापात्रों के साथ आमोद प्रमोद मे विलीन रह सके।

राष्ट्रीयता का अभाव—फ्रास पर एक राजा का अबाधित राज्य था, इससे ऊपर से देखने पर तो यह मालूम होता था, कि फ्रास एक देश है—एक राष्ट्र है। पर वास्तविकता यह नहीं थी। फ्रास में राष्ट्रीयता का अभी उदय नहीं हुआ था। जनता मे एक राष्ट्र की भावना का सर्वथा अभाव था। भिन्न भिन्न प्रदेशों के लोग अपने को फ्रासीसी न समझ कर उस उस प्रात का निवासी समझते थे। पुराने जमाने मे फ्रास मे अनेक राजाओ व सामन्तों का शासन था। फ्रास अनेक छोटे छोटे राज्यों मे विभक्त था। अब ये विविध राज्य नष्ट हो चुके थे, पर उनकी स्मृति मौजूद थी। यह स्मृति केवल मनुष्यों के हृदयों मे ही नहीं थी, अपितु

देश के कानूनों और विविध संस्थाओं मे भी विद्यमान थी। अब तक भी इन प्रदेशों मे से बहुतो की सीमा पर आयात और निर्यात कर लगते थे। अगर कोई व्यापारी फ्रांस के दक्षिणी समुद्र तट से माल लाद कर उत्तर मे जाना चाहे, तो रास्ते मे अनेक स्थानो पर उसके माल की तलाशी होती थी, अनेक स्थानो पर उसे चुंगी देनी पड़ती थी। ये आयात और निर्यात-कर स्पष्ट रूप मे यह जताते थे, कि फ्रांस अब भी एक देश नहीं है, अनेक देशों का समूह है। इन विविध प्रदेशों मे टैक्स वसूल करने के नियम तथा ढग भी एक दूसरे से पृथक् थे।

फ्रांस अभी एक राष्ट्र नहीं बना था, इस का सबसे अच्छा प्रमाण यह है, कि उसके कानून की कोई एक पद्धति प्रचलित नहीं थी। दक्षिणीय फ्रांस मे विशेषतया रोमन कानून का प्रचार था। पर उत्तरीय, पश्चिमीय और पूर्वीय फ्रांस मे २८५ किसम के कानून प्रयोग मे आ रहे थे। ये विविध कानून फ्रांस के मध्यकालीन विभेदो के अवशेष थे। इन भिन्न भिन्न कानूनों के रहते हुए फ्रांस मे एक राष्ट्र की भावना कैसे उत्पन्न हो सकती थी?

सामाजिक रचना—फ्रांस की सामाजिक रचना स्वतन्त्रता पर आश्रित न होकर स्थिति-जन्म मूलक स्थिति पर आश्रित थी। सब फ्रांस निवासियों के अधिकार एक समान न थे। कुछ लोग विशेष अधिकार रखते थे और कुछ के कोई भी अधिकार न थे। कुछ लोग बड़े थे और कुछ लोग छोटे। कुछ लोग कुलीन समझे जाते थे और कुछ लोग नीच। फ्रांस में सामाजिक सगठन का आधार-भूत सिद्धान्त यह था, कि सब मनुष्य एक समान और स्वतन्त्र नहीं हैं। कुछ लोग स्वभावतः ही बड़े हैं, विशेष अधिकार रखते हैं, और अमीर हैं, और दूसरे स्वभावतः ही छोटे हैं, अधिकार रहित हैं, और गरीब हैं। रूसो का प्रसिद्ध सिद्धान्त "परमेश्वर ने सब मनुष्यो को एक समान और स्वतन्त्र उत्पन्न किया है"

उस समय फ्रास मे केवल कुछ विचारकों के दिमागों मे ही था, क्रिया मे नहीं।

फ्रास की जनता को हम तीन श्रेणियों मे बाट सकते हैं—कुलीन श्रेणी, पुरोहित श्रेणी और सर्वसाधारण जनता। इनमे से कुलीन और पुरोहित श्रेणिया विशेष अधिकारों से युक्त थी, ऊँची समझी जाती थीं, और सख्या मे बहुत कम होने पर भी बहुत अधिक प्रभाव रखती थीं। सर्वसाधारण जनता की उनके मुकाबिले मे न कोई स्थिति थी और न कोई अधिकार।

फ्रास की सम्पूर्ण भूमि का एक चौथाई भाग कुलीन-श्रेणी की सम्पत्ति था। ये कुलीन लोग मध्यकालीन सामन्त पद्धति के अवशेष थे। इनकी राजनीतिक स्थिति अब क्षीण हो चुकी थी, पर सामाजिक और आर्थिक अधिकार वैसे ही कायम थे। राज्य, सेना और चर्च के सब उच्च पद इन्हीं के लिये सुरक्षित थे। अनेक प्रकार के टैक्सों से ये बरी थे। ये समझते थे, हमे रुपये पैसे के रूप मे टैक्स देने की क्या जरूरत है? हम तो अपना टैक्स तलवार से देते हैं। जो कुलीन लोग अमीर होते थे, वे बड़ी शान शौकत के साथ राज दरबार मे राजा के इर्द गिर्द निवास करते थे। वहा इनके भोग विलास की कोई सीमा न थी। इनका पेशा केवल मौज उड़ाना ही न होता था, अपितु दरबार की साजिशों से भी इन्हें फुरसत न मिलती थी। इनकी जमीन किसान लोग जोतते थे। जमीन की फिकर करने की इन्हें कोई जरूरत न थी। राज्य के बड़े बड़े पद, खास तौर पर आमदनी वाले पद—नीलाम हुआ करते थे और ये कुलीन लोग उन्हे खरीदने के लिये सदा उत्सुक रहते थे। ये पद इनकी शान को बढाते थे, और साथ ही आमदनी को बढाने मे भी सहायक होते थे, क्योंकि उस समय के फ्रास के शासन मे रिश्वतखोरी का बाजार बहुत गरम रहता था।

परन्तु कुलीन श्रेणी के सभी लोग अमीर न थे। बहुत से कुलीन लोग जूए, शराब, तथा इसी प्रकार के अन्य व्यसनो में फसे रहने के

कारण ऋणी होकर तवाह हो गए थे। एक कुलीन के मरने पर उसकी सम्पत्ति का दो तिहाई हिस्सा सबसे बड़े लड़के को मिलता था, बाकी तिहाई हिस्सा छोटे लड़कों में बाट दिया जाता था। विरासत के इस कायदे से भी बहुत से कुलीन लोग गरीब हो गए थे। पर गरीब होने पर भी इनके अधिकारों मे कोई कमी न आती थी। इनका रहन सहन मामूली किसानों का सा ही था। अनेक कुलीनों की आमदनी साधारण किसानों से भी कम थी—पर इनके अधिकार अक्षुण्ण थे। लोग इन्हें मजाक में कहा करते थे कि ये 'कबूतर खाने या जोहड़ के महान् और शक्तिशाली सामन्त हैं।'

पुराने कुलीन लोगों मे से वहुतों की इस प्रकार दुर्दशा हो रही थी। दूसरी तरफ राजा की कृपा ने अनेक कुलीन लोगों को श्रीमन्त बना दिया था। स्वेच्छाचारी एकतन्त्र राजाओं की कृपा कटाक्ष से बहुत से साधारण आदमी कुलीनों की श्रेणी मे पहुँच गये थे। सर्वसाधारण लोगों मे ऊँचे घरानों के लिये एक विशेष प्रकार का आदर भाव होता है। वे उन्हे अपने से अच्छी स्थिति मे देखने के लिये अभ्यस्त होते हैं। उन कुलीनों के विशेष अधिकारों का उपभोग करना उन्हें नहीं चुभता। पर जब कोई उन्हीं की तरह का मामूली आदमो विशेष अधिकारों को प्राप्त कर लेता है, तब वह उन्हें असह्य हो जता है। फ्रास की जनता की दृष्टि मे राजा की कृपा से कुलीन बने हुए इन मामूली लोगों के विशेष अधिकार काटे की तरह से चुभते थे। इसी प्रकार, कुलीनता के रोब को कायम रखने के लिये आर्थिक समृद्धि अत्यन्त आवश्यक होती है। गरीबी की हालत मे कुछ समय तक तो खानदान का रोब काम करता रहता है, पर कुछ समय बाद ही वह काफूर की तरह उड़ जाता है। फ्रास के गरीब कुलीनों का रोब भी इसी प्रकार निरन्तर क्षीण हो रहा था। पर कुलीनता के सब विशेष अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जनता को ये सह्य न थे।

धार्मिक सुधारणा का युग इस समय समाप्त हो चुका था, पर फ्रांस में रोमन कैथोलिक चर्च का ही अभी आधिपत्य था। यह चर्च राज्य के अन्दर एक दूसरे राज्य के समान था। इसकी अपनी सरकार और अपने राजकर्मचारी थे। फ्रांस की बहुत सी भूमि चर्च की मल्कियत थी। किसी किसी प्रदेश में तो ४० फी सदी जमीन चर्च की सम्पत्ति थी। इस जमीन से चर्च को भारी आमदनी थी। इसके सिवा चर्च सब लोगों से कर वसूल करता था। जमीन की उपज का दसवा हिस्सा चर्च को कर रूप में जाता था। हिसाब लगाया गया है, कि चर्च की कुल आमदनी तीस करोड़ रुपये वार्षिक के लगभग थी। चर्च की जमीनों और सम्पत्ति पर राज्य कोई कर न लेता था। चर्च जो टैक्स वसूल करता था, वह केवल रोमन कैथोलिक लोगों से ही नहीं, अपितु प्रोटेस्टेण्ट और यहूदी लोगों से भी लिया जाता था। इन सब कारणों से चर्च के प्रभाव और शक्ति की कोई सीमा न थी। राज्य के बाद उसी का स्थान सर्वोच्च था। इस अत्यन्त प्रभावशाली चर्च के सचालकों का महत्व उस समय में कितना अधिक होगा, इसका अनुमान कर सकना कठिन नहीं है।

चर्च का सचालन करने वाली पुरोहित-श्रेणी को हम दो भागों में बाट सकते हैं—उच्च पुरोहित और सामान्य पुरोहित।

उच्च पुरोहितों की सख्या ६००० के लगभग थी। ये आर्कबिशप, बिशप, एबट आदि चर्च के ऊँचे पदों पर नियत थे। इनके प्रभाव और समृद्धि की कोई सीमा न थी। ये बड़े बडे कुलीन श्रीमन्तों की तरह शानशौकत और भोगविलास से जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक कर्तव्यों की तरफ इनका कोई ध्यान न था। इनमें से बहुत से राजदरबार मे मौज किया करते थे और कुलीन लोगों की तरह राजदरबार की अन्दरूनी साजिशों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने में ही अपने जीवन की सफलता समझते थे। इनमें से बहुतों की आमदनी लाखों रुपये साल

थी। इस आमदनी का उपयोग अनाथों और पीड़ितों की सहायता मे न होकर सहभोजों और शराब की दावतों मे होता था। बहुत से उच्च पुरोहितों को परमेश्वर मे विश्वास तक न था, फिर भी वे चर्च के ऊँचे से ऊँचे पदों पर विराजमान थे।

चर्च के वास्तविक कर्तव्यों का सम्पादन सामान्य पुरोहित करते थे। इनकी संख्या सवा लाख के लगभग थी। ये सर्वसाधारण जनता मे से लिये जाते थे। देहातों मे इनका निवास था, ये ही धार्मिक विधि विधानों और कर्म काण्डों का सम्पादन करते थे। ये लड़कों को पढाते थे और मामूली लोगों की तरह सुख या दुख मे दिन काटते थे। इन्हें बहुत थोड़ा वेतन मिलता था। सारा काम ये करते थे, पर बेफिकरी से पेट भर सकना भी इनके लिए दूभर था। चर्च की विशाल आमदनी का बहुत थोड़ा सा हिस्सा इनके पल्ले पड़ता था। उसका फल तो वे लोग प्राप्त करते थे, जो राजा के साथ वर्साय मे मौज उड़ाते थे। यही कारण है, कि सामान्य पुरोहितों के हृदयों मे उच्च पुरोहितों के प्रति विद्वेष की भावना थी और राज्य क्रान्ति के समय मे उन्होंने जनता का साथ दिया।

इस काल मे फ्रास के अन्दर जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। यद्यपि फ्रास की अधिकाश जनता रोमन कैथोलिक धर्म का मानने वाली थी, पर यहूदियों और प्रोटेस्टेन्टों की सख्या भी कम न थी। फ्रास के कानून के मुताबिक प्रत्येक आदमी के लिये चाहे वह यहूदी या प्रोटेन्टेण्ट धर्म को मानने वाला क्यों न हो, चर्च के—जो कि रोमन कैथोलिक था—अधीन होना आवश्यक था। सब आदमियों को चर्च का सदस्य होना होता था और चर्च के करो को देना पड़ता था। रोमन कैथोलिक लोगों के अतिरिक्त अन्य लोगों के विवाह तक गैर कानूनी समझे जाते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके कैथोलिक रिश्तेदार सम्पत्ति के मालिक बनने के लिये दावा कर सकते थे, और इस प्रकार उनके वास्तविक उत्तराधिकारियों से विरासत के हक्क को छीन सकते थे। विधर्मियों को

अपने विश्वासों के अनुसार स्वतन्त्रता पूर्वक धार्मिक कृत्यों तक को करने का अधिकार नहीं था। जब भी धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये फ्रास मे कोशिश की गई, पुरोहितो ने उसका विरोध किया।

एक तरफ जब फ्रास के कानून के अनुसार धार्मिक स्वतन्त्रता को पूर्णतया रोक दिया गया था, दूसरी तरफ नास्तिकता की प्रवृत्ति बड़ी तेजी के साथ बढ रही थी। सर्व साधारण जनता मे ही नहीं, पुरोहितों और उच्च पुरोहितों में भी नास्तिकता की लहर बड़ी तेजी से चल रही थी।

इन कुलीन और पुरोहित (निस्सन्देह, उच्चपुरोहित) श्रेणियों के विशेषाधिकार अनेक प्रकार के थे। ये अपनी अपनी जमींदारियो से कई किस्म की आमदनी रिवाज के आधार पर प्राप्त करते थे। विवाह आदि विशेष अवसरों पर किसी खास खर्च के आ पड़ने पर, ये बड़े जमींदार अपने आसामियों तथा अपनी जमींदारी के निवासियों से तरह तरह के नजराने वसूल करते थे। जो माल इनके इलाके में आता था, उस पर वे कर लेते थे। स्वतन्त्र किसानों से उनकी उपज का खास हिस्सा प्राप्त करते थे। इनके इलाकों में कई किस्म के कारोबार, जैसे आटे की चक्की शराबखाना आदि—इनके सिवा दूसरा न कर सकता था, और सब लोगों के लिये आवश्यक था, कि उन कामों को इन्हीं के कारखानों मे करावें। जमीन के क्रय विक्रय के समय मे उसकी कीमत का पाचवा हिस्सा ये बड़े जमींदार प्राप्त करते थे। शिकार इनका खास अधिकार था। इसके लिये बहुत सी जमीन सुरक्षित रखी जाती थी, ताकि जानवर सख्या मे खूब बढ़ सकें। नजदीक के किसान शिकार के इन जानवरों को किसी किस्म का नुकसान नहीं पहुँचा सकते थे, चाहे वे खेतों को तबाह ही क्यों न कर दे। जमींदारों के कबूतर खानो में पले हुए हजारों कबूतर किसानों के खेतों को उजाड़ते फिरते थे, पर किसी की क्या हिम्मत थी, जो उन्हें उड़ा भी दे। तरह तरह के जानवर—जिनका शिकार खेल कर जमींदार आनन्द प्राप्त करता था, खेतों की तबाही मचाते फिरते थे, पर कोई

किसान उन्हें मार न सकता था। जमींदारो के इन विशेषाधिकारो से लाग तग आ गये थे, पर वेवस थे।

फ्रास मे कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के लोगों की कुल आवादी दो या ढाई लाख से अधिक नही थी। शेष जनता—जिसकी आवादी ढाई करोड़ के लगभग थी, किस दशा मे थी? इस सर्व साधारण जनता को हम तीन भागों में वाट सकते हैं—मध्य श्रेणी के लोग, शहरों के मजदूरी पेशा लोग और देहातो के किसान लोग।

मध्य श्रेणी में वे लोग सम्मिलित हैं, जो कुलीन व पुरोहित श्रेणी के न थे और जो हाथ से मेहनत किये विना अन्य तरीकों से आमदनी प्राप्त करने मे समर्थ थे, जैसे वकील, चिकित्सक, साहित्यिक, लेखक व कवि, व्यापारी साहूकार, कलाविज्ञ, नट नर्तक, सरकारी नौकर और तरह तरह के कारखानों के मालिक। ऐसे लोगो की आवादी वीस लाख के लगभग थी। फ्रास की सम्पत्ति, दिमाग, विद्या और कारोवार इसी मध्य श्रेणी के लोगों पास थे। तरह तरह के कारोवार और तिजारत से ये लोग लगातार अमीर होते जाते थे। राजा और कुलीन श्रीमन्त लोग इनसे रुपया कर्ज लेते थे। महाजन के तौर पर इनकी शक्ति और प्रतिष्ठा निरन्तर वढ रही थी। इसी श्रेणी के लोगों मे वहुत से विचारक, दार्शनिक तथा लेखक उत्पन्न हुए थे, जो फ्रास मे पहली वार 'लोकमत' नाम की नई वस्तु को पैदा कर रहे थे। सासारिक दृष्टि से सव प्रकार उन्नत तथा सफल होते हुए भी इनके राजनीतिक अधिकार कोई न थे। राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से इनकी वही हैसियत थी, जो कि एक नगे भूखे किसान की थी। यही कारण है, कि इनमे असन्तोप निरन्तर वढ रहा था। ये लोग अपनी वर्तमान दशा मे असन्तोप अनुभव कर रहे थे। योग्यता और सम्पत्ति की दृष्टि से ये कुलीन श्रेणी की वरावरी के थे, पर अधिकारों की दृष्टि से इनकी कोई गिनती न थी। जव फ्रास मे राज्य-क्रान्ति हुई, तो इन्हीं लोगों ने उसका सव से अधिक साथ दिया। क्रान्ति

में इन्हें स्पष्ट रूप से अपनी इस दुरवस्था के अन्त होने की सम्भावना नजर आ रही थी।

शहरों के मजदूरीपेशा लोगों की सख्या २५ लाख के लगभग थी। शहरों का व्यावसायिक जीवन उस समय या तो आर्थिक श्रेणियों (Guilds) मे सगठित था, या छोटे छोटे कारखानों मे। जो मजदूर इन श्रेणियो के सदस्य थे, उनकी हालत बहुत बुरी न थी। पर श्रेणियों के कड़े कायदे उनकी स्वतन्त्रता के मार्ग मे सब से बड़ी रुकावट थे। जो मजदूर कारखानों मे काम करते थे, उनकी दशा बहुत खराब थी। उन्हें बहुत थोड़ा वेतन मिलता था। उन्हे बहुत अधिक समय तक काम करना पडता था। उनकी मेहनत बहुत ही थकाने वाली तथा कष्टप्रद होती थी। इन मजदूरों का किसी प्रकार सगठन नही था। ये अपनी हालत से बहुत असन्तुष्ट थे। जब राज्यक्रान्ति हुई, तो यही मजदूरी पेशा लोग थे—जो बड़े उत्साह के साथ सब तरह की अव्यवस्था और दगा मचाने के लिये उसमें शामिल हो गये। क्रान्ति मे इन्होने गवाना कुछ नही था। क्रान्ति मे इनकी मौज ही मौज थी। बिना पसीना बहाये कान्ति के समय ये उससे बहुत अधिक प्राप्त कर सकते थे, जितना कि इन्हें मजदूरी से मिलता था।

देहातों के किसानों की सख्या दो करोड़ के लगभग थी। ये कुल जनता के अस्सी फीसदी भाग थे। पर इनकी हालत सबसे अधिक खराब थी। ये ग्रामों मे कुलीन श्रेणी के जमीदारों की जागीरों मे निवास करते थे। आधे के करीब किसान अभी तक 'भूमिदास' व 'अर्धदास' थे, जो अपनी इच्छानुसार अपने मालिक की जमीन को छोड़कर कहीं बाहर नहीं जा सकते थे। इन्हें बाधित होकर अपने मालिक की जमीन को जोतना पड़ता था। पर शेष आधे किसान स्वतन्त्र थे। ये जहा चाहें आ जा सकते थे, और जमीनों पर अपने हक को बेच व खरीद सकते थे। जमीनों पर इनका हक मान लिया गया था, और बहुत से किसान अपनी

जमीन के मालिक भी बन गये थे। परन्तु किसान चाहे अभी भूमि-दास की दशा में हों, चाहे स्वतन्त्र हों और चाहे अपनी जमीन के स्वय मालिक हों, विविध किसम के टैक्सों से दबे हुए थे। ऐसे किसानों को ही लीजिये जो अपनी जमीन के आप मालिक थे। राजा उनसे टैक्स लेता था, जमींदार उनसे नजराने लेता था और चर्च उनसे आमदनी का दसवा हिस्सा वसूल करता था।

यह नहीं समझना चाहिये, कि फ्रास के किसानों की दशा इस समय मे असाधारणरूप से खराब थी। वास्तविकता तो यह है, कि उनकी दशा अन्य देशों के किसानों की दशा से बहुत काफी अच्छी थी। क्रान्ति के लिये यह जरूरी नहीं है, कि लोग बहुत पददलित हों, बहुत अत्याचार पीडित हों। जनता भयङ्कर से भयङ्कर अत्याचारों से सताई हुई रह सकती है, और हो सकता है कि उसको अपनी स्थिति से जरा भी असतोष न हो। हजारों साल तक मनुष्य जाति का अधिकाश भाग दास प्रथा का शिकार रहा है। दास की दशा मे लोग भयङ्कर से भयङ्कर अत्याचारों को दैवीय विधान समझकर सहन करते रहे हैं। क्रान्ति के लिये जन साधारण की दशा ऐसी होनी चाहिये, कि वे अत्याचारों को अनुभव कर सके, अपनी दुर्दशा को समझ सके। फ्रास मे क्रान्ति सफलता से हो सकी, इसका कारण ही यह था, कि सर्व साधारण लोगों की हालत इस हद तक उन्नत हो गई थी, कि वे अपने ऊपर किये गये अत्याचारों को—अपनी दुर्दशा को अनुभव कर सकते थे। ज्यों-ज्यों उनकी दशा सुधरती गई वे अपने जमींदारों को डाकू समझने लगे, चर्च के दशाश कर को लूट समझने लगे और राजा के अनुत्तरदायी शासन को अनुचित बताने लगे। यूरोपियन देशों मे फ्रास ही सब से पहले अत्याचारों के खिलाफ विद्रोह करने के लिये अग्रसर हुआ, इसका प्रधान कारण यही था, कि वहा के जनसाधारण की दशा पर्याप्त अच्छी थी।

यह सब होते हुए भी यह न भूलना चाहिये कि फ्रास के अधिकाश किसान भूखे, नगे और गरीब थे। जमीदारों के शिकार के विशेषाधिकार जहा एक तरफ उनके खेतों को उजाड़े बिना नहीं छोड़ते थे, वहा दुर्भिक्ष अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि आदि अप्राकृतिक विपत्तिया भी उनकी तबाही करने मे किसी प्रकार की कसर नहीं रहने देती थीं। फ्रास के किसानों पर विविध प्रकार के करों का बोझ इतना अधिक था, कि उनके पास यदि अपने गुजारे के लिये भी अनाज बच जावे, तो उसे वे बड़ी भारी गनीमत समझते थे।

व्यापार और व्यवसाय—फ्रास के व्यापार और व्यवसाय इस काल में धीरे-धीरे, परन्तु निरन्तर उन्नति कर रहे थे। व्यापारिक और व्यावसायिक क्रान्ति का प्रभाव यूरोप के सभी देशों मे दृष्टिगोचर होना शुरू होगया था। इन क्रान्तियों के सम्बन्ध मे हम पृथक् रूप से विस्तार से प्रकाश डालेंगे। परन्तु यहा इतना बता देना आवश्यक है, कि फ्रास मे ऐसे लोगो की सख्या निरन्तर बढती जा रही थी, जो आन्तरिक और बाह्य व्यापार द्वारा धनी होते जा रहे थे। उस समय मे यान्त्रिक शक्ति से चलने वाले यानों का आविष्कार नही हुआ था। इसी लिये पेरिस से मार्सेय्य तक जाने में ११ दिन लगते थे। जलमार्ग द्वारा पेरिस से रूआ (Rouen) तक १८ दिन लगते थे। पर इसमें सन्देह नहीं, कि जल और स्थल दोनों प्रकार के मार्गों को उन्नत करने का उस समय मे पर्याप्त प्रयत्न किया जा रहा था। सन् १७८८ मे ३६ हजार मील सड़क बन चुकी थी। करोड़ों रुपया सडकों और पुलों के लिये खर्च किया जा रहा था। इञ्जनीयरों को तैयार करने के लिये फ्रास मे एक विद्यालय की भी स्थापना हो चुकी थी। इन सब प्रयत्नों का परिणाम था, कि फ्रास का व्यापार काफी अच्छी गति से निरन्तर उन्नति कर रहा था। परन्तु इस व्यापारिक उन्नति में फ्रास का एक देश न होना सब से बड़ी बाधा थी। जगह जगह पर चुगी देना तथा माल को खोलना व्यापारी के लिये बहुत

कष्टप्रद होता है, और इससे आन्तरिक व्यापार की उन्नति मे बड़ी रुकावट होती है।

व्यावसायिक क्रान्ति के कारण पुराने जमाने की आर्थिक श्रेणियों (Guilds) का स्थान कारखाने ले रहे थे। इन कारखानों मे पूँजीपतियों की अधीनता मे बहुत से मजदूर काम करते थे। आर्थिक उत्पत्ति का सारा काम ये मजदूर करते थे, पर व्यवसाय पर इनका कोई हक नहीं था, ये मशीनों की तरह पूँजीपति के हित के लिये काम करते थे। बदले में इन्हें मजदूरी मिलती थी, जिसकी दर बहुत कम होती थी। इन कारखानों की वजह से एक इस प्रकार की श्रेणी उत्पन्न हो रही थी, जो शहरों में रहती हुई, नई लहरों से जानकारी रखती हुई और आर्थिक उत्पत्ति का सारा कार्य करती हुई भी सर्वथा असहाय थी। इस श्रेणी के लोगों को अभी अपनी शक्ति और महत्व का ज्ञान नहीं हुआ था। पर फिर भी वे अपने हितों को कुछ कुछ समझने लगे थे और इसी का परिणाम था, कि यद्यपि फ्रास की राज्यक्रान्ति राजनीतिक स्वाधीनता की स्थापना के लिये विशेष रूप से प्रयत्न कर रही थी, तथापि आर्थिक समस्या की कुछ झलक उसमे विद्यमान थी।

तीसरा अध्याय

क्रान्ति की भावना का प्रादुर्भाव

अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध मे यूरोप के सभी देशों की लगभग वही हालत थी, जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। इस पुराने जमाने के खिलाफ सब से पहले राज्यक्रान्ति फ्रास मे हुई, इसका कारण यह नहीं है, कि फ्रास की दशा अन्य देशों से अधिक खराब थी। वस्तुतः फ्रास की दशा अन्य देशों से कही अच्छी थी। क्राति सब से पहले फ्रास मे हुई, इसका प्रधान कारण वह क्राति की भावना है, जो अनेक विचारकों द्वारा फ्रास मे उत्पन्न की जा रही थी। इस समय तक यूरोप के दिमाग पुराने अन्ध विश्वासों की जकड़ से बहुत कुछ छुटकारा पा चुके थे। लोग अपने दिमागों से स्वच्छन्दता पूर्वक विचार करने लग गये थे। वे किसी बात पर इसीलिये विश्वास नहीं कर लेते थे क्योंकि बहुत सी सदियों से मनुष्य वैसे ही मानते आये हैं, या धार्मिक ग्रन्थ में वैसा लिखा है, अपितु अपनी बुद्धि की कसौटी पर कस कर सच या झूठ का फैसला करने की प्रवृत्ति उनमें पैदा हो चुकी थी। इसी का परिणाम था, कि अनेक विचारक ऐसे उत्पन्न हुए, जिन्होंने मनुष्य जाति के हजारों सालों से चले आ रहे विश्वासों के आगे प्रश्नात्मक चिन्ह लगाया और नये विचार जनता के सम्मुख पेश किये। फ्रास में भी इसी प्रकार के बहुत से विचारक थे, जो क्राति की भावना को जनता में उत्पन्न कर रहे थे। ये

विचारक कौन थे, और इनके क्या विचार थे, इस विषय पर हम सक्षेप से प्रकाश डालते हैं—

मान्टस्क—इसका काल सन् १६८६ से १७५५ तक है। यह स्वय कुलीन श्रेणी का था। इसने राजा के दैवीय अधिकार के सिद्धान्त के खिलाफ आवाज उठाई। मान्टस्क का कहना था कि राजा ईश्वरीय विधान की कृति नहीं है, वह इतिहास की रचना है, घटनाओं के विकास ने राजसस्था का प्रादुर्भाव किया है। मान्टस्क ने फ्रास के शासन विधान के मुकाबले मे इङ्गलैण्ड के शासन विधान की बहुत अधिक प्रशसा की। वह कहता था, कि इङ्गलैण्ड का शासन ससार में सर्वोत्तम है, क्योंकि उसमे नागरिकों की स्वतन्त्रता सुरक्षित है। मान्टस्क ने ही सब से पहले राज्य की विविध शक्तियों को पृथक् पृथक् रखने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। राजशक्ति को हम तीन भागों में बाट सकते हैं—शासन, व्यवस्थापन (कनून-निर्माण) और न्याय। मान्टस्क का सिद्धान्त था, कि ये तीनों शक्तिया एक ही व्यक्ति के हाथ मे न होकर पृथक् पृथक् हाथों मे रहनी चाहिये। यह सिद्धान्त राजशासन के प्रमुख सिद्धान्तों में से एक है, और वर्तमान काल में सब लोग इसे मानने लगे हैं। पर अठारहवीं सदी के लिये यह सिद्धान्त एक नई चीज थी। फ्रास के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन मे मान्टस्क का यह सिद्धान्त किसी भी तरह लागू नहीं हो सकता था।

वाल्टेयर—वाल्टेयर कुलीन श्रेणी का न होकर मध्य श्रेणी का था। अपने समय के अत्याचारों और अन्यायों का उसे प्रत्यक्ष अनुभव था। वह अच्छी तरह जानता था, कि जब कोई कुलीन सरदार गुस्से में आकर मारने पीटने लगता है, तो उसकी मार कितनी भयङ्कर होती है। वह अच्छी तरह समझता था, कि बास्तीय की जेल में एक वर्ष व्यतीत करना कितना कष्ट प्रद होता है। कुछ समय तक वाल्टेयर राजदरबार में रहा। पर वह देर तक वहा न रह सका। उसे फ्रास छोड़कर प्रशिया और इङ्ग-

लैण्ड भागना पड़ा। वाल्टेयर को पुराने जमाने के अन्याय और विषमता के खिलाफ प्रचण्ड घृणा थी। उसका विश्वास था, कि इस पुराने जमाने को जड से उखाड़ देने मे ही भला है। वह किसी किसम के समझौते को सहन नहीं कर सकता था। वह कहता था, हम नवीन युग की आधार शिला तभी स्थापित कर सकेंगे, जब कि पुराने जमाने के नाम को भी पृथिवी से मिटा दिया जावेगा। इसलिये पुराने जमाने के विरुद्ध प्रचार को ही उसने अपना मुख्य कार्य बनाया। उसने चर्च और राज्य दोनों की बुराइयों के ऊपर जबरदस्त हमले किए। उसकी शैली बहुत जोरदार थी। व्यङ्ग लिखने मे वह सिद्धहस्त था। वाल्टेयर लोकतन्त्र शासन का पक्षपाती नहीं था, वह कहा करता था कि सौ चूहो की बजाय एक शेर का शासन मुझे अधिक पसन्द है। यदि वह लोकतन्त्र शासन का पक्षपाती नहीं था, तो एकतन्त्र शासन का तो बड़ा भारी दुश्मन था। चर्च और राज्य के दोषों के विरुद्ध उसने जो पुस्तकें लिखी, उनके कारण लोगों का ध्यान इन बुराइयों की तरफ आकृष्ट हुआ, और लोग इन दोषों को नष्ट कर एक नवीन युग की कल्पना करने लगे।

रूसो—क्रान्ति की भावना को प्रादुर्भूत करने मे सबसे प्रधान स्थान रूसो का है। रूसो केवल दोष प्रदर्शन का ही कार्य नहीं करता था। वह नवीन युग की कल्पना का विधायक था, वह माननीय समाज का एक नवीन सगठन चाहता था। उसके विचार में मनुष्य जाति का भूतकाल बहुत ही उज्वल था। एक समय ऐसा था, जब सब लोग स्वतन्त्र थे, कोई किसी का दास न था. कोई पराधीन न था, सब एक दूसरे के बराबर थे। न उस समय मे लोगों को टैक्स देने पड़ते थे, न लड़ाइया होती थीं, न कोई राजा था, न कोई प्रजा थी। यह सुवर्णीय समय सदा के लिये स्थिर न रह सका। जिसे आजकल 'सभ्यता' कहा जाता है, उसके प्रादुर्भाव के साथ मनुष्यों मे वैयक्तिक सम्पत्ति की उत्पत्ति हुई, और इस वैयक्तिक सम्पत्ति के पैदा होते ही मनुष्यों में लोभ, मोह आदि प्रगट होने

लगे, वह सुवर्णीय युग समाप्त होगया और विषमता, अन्याचार व पराधीनता का युग आगया। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *सामाजिक समय* (SocialContract) का प्रारम्भ उसने इन शब्दों से किया है—

"मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होते हैं, पर वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़े हुए पाये जाते हैं। कुछ लोग अपने को दूसरों का मालिक समझते हैं,पर वस्तुतः वे दूसरोंकी अपेक्षा भी अधिक गुलाम होते हैं, यह परिवर्तन कैसे आगया? मैं नहीं जानता। इस परिवर्तन को किस प्रकार न्याय्य और समुचित कहा जा सकता है? मेरा विश्वास है कि इस प्रश्न का उत्तर मैं देसकता हूं।"

रूसो ने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया है, कि मानवीय समाज व राज्य में जनता की इच्छा ही सर्वोपरि है, सरकार की न्याय्यता इसी जनता की इच्छा पर आश्रित है। जनता शासन करने के लिये किसी एक आदमी को—जैसे राजा—नियत कर सकती है, पर उस आदमी की सत्ता जनता की इच्छा पर ही निर्भर है। जनता अपनी इच्छा को कानून की शक्ल मे प्रगट करती है, जिसके अनुसार राजा को शासन करना चाहिये।

यह विचार अठरहवीं सदी के लोगों के लिये 'भयानक क्रान्तिकारी विचार थे। जनता की इच्छा कानून है, राजा की इच्छा कानून नहीं है, यह भाव फ्रांस की राज्यक्रांति मे प्रधान रूप से काम कर रहा था। रूसो की विचार-सरणी के अनुसार राज्य का निर्माण जनता के आपस के समय (Contract-ठीका) द्वारा हुआ, अतः राज्य मे लोक मत ही सर्वोपरि होना चाहिये। वह शासन पद्धति सर्वोत्तम है, जिसमे बहुमत के अनुसार शासन होता है। रूसो के ये सिद्धान्त एक नये सन्देश के समान सम्पूर्ण यूरोप में व्याप्त होगये। फ्रांस के क्रान्तिकारियों के लिये रूसो के विचार 'धार्मिक सिद्धांतों' का सा महत्व रखते थे। रूसो ने केवल पुराने जमाने की आलोचना ही नहीं की, अपितु नवीन युग का चित्र भी लोगों के सम्मुख उपस्थित किया। जनता ने अनुभव किया, कि यह नवीन चित्र बहुत ही सुन्दर है। वे उसके अनुयायी हो गए।

दिदरो—क्रान्ति की भावना को जन्म देने वाले विचारकों में दिदरो भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। दिदरो ने एक विशाल विश्वकोश को प्रकाशित करने की योजना की और इसके लिये बहुत से वैज्ञानिकों और विद्वानों को अपने साथ एकत्रित किया। इस विश्व-कोश का उद्देश्य यह था, कि उस समय के सम्पूर्ण ज्ञान को सरल भाषा में उपस्थित किया जाय, ताकि पढे लिखे लोग सुगमता से उन सब विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें, जिन्हें जानने का उन्हें अन्यथा अवसर नहीं मिलता। दिदरो और उसके साथी किसी पर आक्षेप नहीं करना चाहते थे, उनका विचार था कि जहा तक भी हो सके, दूसरों के विरोध से बचा जाय। परन्तु ज्ञान को चाहे कितने ही सरल स्वरूप में पेश किया जावे, वह बहुत से लोगों के लिये आपत्ति जनक हो ही जाता है। राज्य क्या चीज है, चर्च का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ, जनता के क्या अधिकार हैं—इत्यादि विषयों पर यदि अच्छी तरह प्रकाश डाला जावे, तो एकतन्त्र राजाओं व विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहितों को यह सब किस प्रकार सह्य हो सकता है ? वस्तुत., सत्य ज्ञान को सरल रूप में पेश करना ही अन्धविश्वास और अज्ञान पर आश्रित लोगों के लिये सब से अधिक कष्टप्रद होता है। विश्वकोश के इन लेखकों ने ज्ञान को जिस प्रकार जनता के सम्मुख उपस्थित करना प्रारम्भ किया, वह राजा तथा तथा चर्च को सह्य न हो सका। इस विश्वकोश द्वारा जनता को विचार करने के लिये सामग्री मिल रही थी। वे इस ग्रन्थ को पढकर स्वय यह सोच सकते थे, कि किस सस्था के क्या गुण व दोष हैं ? इस प्रकार विश्वकोश की यह योजना क्रान्ति की भावना को प्रादुर्भूत करने में बहुत ही सहायक थी। १७५२ मे इस विश्वकोश के प्रथम दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए। प्रकाशित होते ही राजा के मन्त्रियों ने उद्घोषित किया कि, ये ग्रन्थ राजसत्ता तथा धर्म के खिलाफ हैं, अतः इन्हें नहीं पढना चाहिये। पर इस उद्घोषणा के बावजूद भी विश्वकोश के अन्य खण्ड

बड़ी तेजी से प्रकाशित होते गये। ग्राहकों की संख्या बढ़ने लगी और विश्वकोश का प्रचार तेजी से होना शुरू हुआ। पर साथ ही विरोध भी बढता गया। विरोधी कहने लगे, कि यह विश्वकोश माननीय समाज और धर्म की जड़ पर कुठाराघात करने वाला है। राजशक्ति ने फिर हस्ताक्षेप किया। विश्वकोश के अब तक सात खण्ड निकले थे, उनके विक्रय को रोक दिया गया और अगले खण्डों को प्रकाशित करने का लाइसेन्स वापिस ले लिया गया। पर दिदरो ने अपना काम बन्द नहीं किया। दस साल बाद उसने विश्वकोश के दस खण्ड और निकाले। और इस प्रकार अपने महान ग्रन्थ को पूर्णकर दिया। सरकारी विरोध के होने पर भी विश्वकोश की बिक्री बन्द नहीं हुई।

इस विश्वकोश में एकतन्त्र राजसत्ता, धार्मिक असहिष्णुता, दासप्रथा अन्याययुक्त टैक्स, सामन्तपद्धति, फौजदारी कानून आदि सभी विषयों पर विस्तार से विचार किया गया था और इस विचार का ढंग इस प्रकार का था, कि इन सब के दोष पाठकों के सम्मुख आ जाते थे। क्रान्ति की भावना के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी था।

क्वेसने—क्वेसने लुई १५ वे का राजवैद्य था। इसने उन बहुत से विद्वानों को अपने पास आश्रय दिया था, जिन्हें 'अर्थशास्त्री' कहा ज ता है। ये 'अर्थशास्त्री' व्यापार व्यवसाय और आय व्यय आदि आर्थिक विषयों पर विचार करते थे और अपने समय की आर्थिक बुराइयों का विरोध कर सुधार की योजनाये पेश करते थे। इनका प्रधान सिद्धान्त यह था, कि आर्थिक जगत में 'खुला छोड़ दो' की नीति का अनुसरण करना चाहिये। प्रकृति के अन्य क्षेत्रों की तरह आर्थिक क्षेत्र में भी बहुत से स्वाभाविक नियम काम करते हैं। मनुष्य को चाहिये, कि उन्हें पता लगाये और उन्हीं के अनुसार अपने कार्य को मर्यादित करे। यह स्पष्ट है, कि मनुष्यों के आर्थिक कार्यों में यदि राजा की तरफ से हस्ताक्षेप होगा, तो वह प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल होगा। अतः राजा को चाहिये कि

'खुला छोड़ दो' की नीति का अवलम्बन करे। उस समय का राजा आर्थिक क्षेत्र में अनेक प्रकार के हस्ताक्षेप करता था, उस समय में व्यापार के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाये थीं, श्रमियों के सगठनों के लिये अनेक प्रकार की रुकावटें थी। 'अर्थशास्त्री' लोग इन सब का जोरदार तरीके से विरोध कर रहे थे।

छपी हुई पुस्तिकायें—इन सुप्रसिद्ध लेखकों और विचारकों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से लोग थे, जो अपने समय के प्रश्नों और समस्याओं पर गम्भीरता के साथ विचार करने लगे थे। इस काल में समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं होते थे। वर्तमान काल में लोकमत को उत्पन्न करने तथा जनता को मार्ग प्रदर्शित करने का काम प्रधानतया समाचार पत्र करते हैं। उस समय तक समाचार-पत्रों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, पर छोटे छोटे ट्रैक्ट व पुस्तिकायें बड़े परिमाण में छपने व प्रकाशित होने लग गई थीं। छापाखाना यूरोप में प्रवेश कर चुका था, और हजारों की तादाद में छपे हुए पर्चे फ्रांस के बाजारों में दृष्टिगोचर होने लगे थे। ये पर्चे लोगों की आखें खोलने लग गये थे। लोग इन्हें शौक से पढ़ते थे, और इन पर बहस करते थे। उन सब बातों पर विचार होना अब प्रारम्भ हो गया था, जिन्हें अब से पहले विचार करने के लायक ही नहीं समझा जाता था। यह परिवर्तन क्रान्ति की भावना को उत्पन्न करने के लिये बड़ा भारी कार्य कर रहा था।

न्यायालयों के अधिकार—लोकमत इन छपे हुए पर्चों से केवल प्रगट ही नहीं होता था, अपितु शासन पर भी उसका प्रभाव पड़ना शुरू हो गया था। यद्यपि उस काल में कोई ऐसी लोक सभाये न थीं, जिनमें जनता के प्रतिनिधि लोकमत को प्रगट करने का अवसर प्राप्त कर सकें, पर ऐसे साधनों का सर्वथा अभाव भी न था, जिनसे राजा के स्वेच्छाचार को रोका जा सके। इस प्रकार के साधनों में सर्वप्रथम वे 'न्यायालय' थे,

जिन्हें 'पार्लमा' कहा जाता था। इनका नाम ही इङ्गलैण्ड की 'पार्लियामैण्ट' से मिलता है, स्वरूप नहीं। ये न्यायालय सख्या में १३ थे, जिनमे सर्वप्रथम पेरिस का न्यायालय था। इनमें केवल मुकदमों का निर्णय ही नहीं होता था। इनका यह भी दावा था, और यह दावा सर्वथा उपयुक्त था, कि राजा जब किसी नये कानून का निर्माण करे, तो उसे पहले इनके पास रजिस्टर्ड करने के लिये भेजे, क्योंकि जब तक कोई कानून इनके रजिस्टरों मे दर्ज न होगा, तब तक ये उसका प्रयोग ही किस प्रकार कर सकेगे ? यद्यपि कानून बनाने का एकमात्र हक राजा को ही था, पर यदि ये न्यायालय किसी कानून को पसन्द न करते हों, तो उसे अपने पास दर्ज करने के स्थान पर उसके विरुद्ध एक आवेदन राजा की सेवा में भेज देते थे। इन आवेदनों को वे केवल राजा की सेवा मे ही नहीं भेजते थे, अपितु, उसकी हजारों प्रतिया छपवा कर जनता मे वितीर्ण भी कर देते थे। इन छपी हुई प्रतियों से जनता को यह भली भाति ज्ञात हो जाता था कि पार्लमा ने राजा के किस कानून का और किन आधारों पर विरोध किया है।

जब राजा पार्लमा द्वारा भेजा हुआ इस प्रकार का आवेदन प्राप्त करता था, तब उसके सम्मुख तीन मार्ग होते थे। या तो वह पार्लमा के विरोध को स्वीकार कर अपने कानून को वापिस ले ले या, उसमें उचित परिवर्तन कर दे, या पार्लमा की बैठक को अपने सम्मुख बुला कर अपने ही श्रीमुख से उसे हुक्म दे कि उस कानून को रजिस्टर्ड कर ले। इस दशा मे पार्लमा के पास अन्य कोई मार्ग न था। उसे बाधित होकर उस कानून को अपने पास दर्ज करना होता था। अन्त में राजा की इच्छा ही विजयी होती थी।

पर धीरे धीरे पार्लमा ने अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू की। उसने यह भी दावा करना शुरू किया, कि उसकी इच्छा के विरुद्ध जो कानून दर्ज कराये जाते हैं वे वस्तुतः न्याय्य नहीं समझे जा सकते। न्याय करना तो

पार्लमा के हाथ में ही था, अतः वे मजे से किसी कानून की उपेक्षा कर सकती थीं।

पार्लमा की इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ, कि सर्व साधारण जनता राजकीय मामलों मे बहुत दिलचस्पी लेने लगी। लोकमत को विकसित करने में पार्लमा द्वारा प्रकाशित आवेदन-पत्रों ने बहुत बड़ा काम किया। लोग इस बात पर विचार और बहस करने लगे, कि राजा ने जो कानून जारी किये हैं, वे उचित हैं या नहीं, वे न्याय हैं या नहीं।

।९ *अमेरिकन क्रांति का प्रभाव*—फ्रास मे क्रांति की भावनाओं को उत्पन्न करने मे कुछ अन्य घटनाओं ने भी बहुत सहायता की। सन् १६७६ में अमेरिकन स्वाधीनता का सग्राम लड़ा गया था। अमेरिका ने इङ्गलिश आधिपत्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्त होकर अमेरिका ने अपने देश मे लोकतन्त्र शासन का विकास किया था। क्रान्ति की भावनाओं की इस स्थूल मूर्तिमान् विजय ने सब जगह क्रान्तिकारियों के हृदयों को उत्साह से भर दिया था। अमेरिकन स्वाधीनता सग्राम मे सहायता पहुँचाने के लिये हजारों की सख्या मे फ्रासीसी युवक स्वयसेवक बन कर गये थे। ये लोग अपनी आखों से अपने स्वप्नों को क्रिया मे परिणत होते देखकर अपने देश में वापिस आये थे। इनके हृदय स्फूर्ति से परिपूर्ण थे। पुराने जमाने का अन्त कर नवीन युग की स्थापना के लिये इन्हें बड़ा उत्साह था। अमेरिका की स्वाधीनता से फ्रास में भी नवीन भावनाये बड़ी तेजी से हिलोरें लेने लग गई थीं।

उस समय के राजा इन नई प्रवृत्तियों से सर्वथा बेफिक्र हों, यह बात नहीं थी। वे खुली हुई आखों से इन नवीन लहरों को देख रहे थे। पर इनके वास्तविक महत्व को समझने की क्षमता उनमें नहीं थी। उनका विचार था, कि कुछ मामूली से परिवर्तनों से काम चल जायगा। उन्होंने अनेक सुधार किये भी। कुलीन और पुरोहित-श्रेणियों के

अधिकारों मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किये भी गये। कानूनों का भी सशोधन हुआ। पर यह सब अपर्याप्त था। इन सब से तो क्रान्ति की भावना और भी बलवती होती गई। इन थोड़े से परिवर्तनों से जनता सन्तुष्ट कैसे हो सकती थी। इन्होंने तो उसकी हिम्मत को और भी आगे बढा दिया। क्रान्ति की जो भावना विचारकों द्वारा प्रारम्भ की गई थी, वह निरन्तर बढती ही गई और अन्त में राज्य क्रान्ति के रूप मे फूट पड़ी। जिस समय सुधार तथा परिवर्तन जनता की माग व आवश्यकताओं से बहुत पीछे रह जाते हैं, उस समय क्रान्ति के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं रहता।

चौथा अध्याय

सोलहवें लुई का शासन

सन् १७७४ में पन्द्रहवें लुई की मृत्यु हुई। उसके शासन काल में जो असफल युद्ध लड़े गए थे, उनका वर्णन करने की हमे आवश्यकता नहीं है। पर इतना ध्यान मे रखना चाहिए कि इनसे फ्रास को कोई लाभ तो हुआ नहीं था, अपितु बहुत से प्रदेश उसकी अधीनता से निकल गए थे। इतना ही नहीं, इन युद्धों मे खर्च इतना अधिक हुआ था, कि फ्रास का राजकोश सर्वथा दिवालिया हो गया था। लोगों पर टैक्सों का बोझ पहले ही इतना अधिक था कि नये टैक्स नहीं लगाये जा सकते थे। ऐसे समय म राज्य को दिवालिया होने से बचाने का केवल एक ही उपाय था, वह यह कि खर्च में कमी की जाय। पर फ्रास की सरकार का इस ओर जरा भी ध्यान नहीं था। उसे प्रति वर्ष सवा दो करोड़ के लगभग घाटा हो रहा था। राजकीय मामलों का सचालन दरबारी कर रहे थे, शासन मे वेश्याओं का बड़ा हाथ था। राजा के कृपापात्र खुले हाथ कोश को लुटा रहे थे। इस भयानक दशा में फ्रास को अनाथ छोड़कर १५ वा लुई इस लोक से सदा के लिये बिदा हो गया और उसकी जगह पर उसका लड़का सोलहवा लुई राजगद्दी पर बैठा।

राजा १६ वा लुई—राज सिंहासन पर बैठते समय १६ वे लुई की आयु केवल १६ वर्ष की थी। उसकी शिक्षा राज दरबार के विकृत

वातावरण में हुई थी। उसे शिकार खेलने तथा आमोद प्रमोद में मस्त रहने से बड़ा आनन्द मिलता था। अपनी कमजोरियों तथा अयोग्यताओं के बावजूद भी वह एक भलामानस युवक था। उसका दिल अच्छा था। यदि वह अधिक उद्योग शील तथा मजबूत होता, तो अवश्य ही अपनी प्रजा का कुछ भला कर सकता।

उसकी रानी—लुई का विवाह मेरी आतोआत नाम की राजकुमारी से हुआ था। उस समय में बहुत से विवाह राजनीतिक उद्देश्य से किए जाते थे। उस समय मे राजा और राजवंशों के विवाह का मतलब था, राज्यो का विवाह या सन्धि। इसी किसम की एक सन्धि को—१७५६ में हुई आष्ट्रिया और फ्रास की सन्धि—सुदृढ करने के लिये आष्ट्रियन राजकुमारी मेरी का विवाह १६ वें लुई से कर दिया गया था। यह मेरी आतोआत बहुत ही उथली तथा आराम पसन्द स्त्री थी। उसे आचार व्यवहार का कोई ख्याल न था। राजदरवार के रीति रिवाज तक उसकी दृष्टि मे कोई महत्व न रखते थे। उसके दिल मे जो आता, वही वह करती। राजा से उसे स्नेह नही था, वह उसके भारी तथा आलसी तन से घृणा करती थी। उसके बहुत से कृपापात्र तथा स्नेहपात्र थे। इन्हें सहायता देने के लिये वह जो चाहती थी, करती थी। उसे उचित अनुचित का कोई विचार न था।

टूर्जो (१७७४-१७७६)—राजगद्दी पर बैठते ही १६ वें लुई ने टूर्जो को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। यह टूर्जो फ्रास का सबसे योग्य अर्थशास्त्री था। वह केवल विद्वान ही नहीं था, उसे शासन का क्रियात्मक अनुभव भी था। अपने कार्य को सभालते ही टूर्जो ने सबसे पहले मितव्ययिता पर ध्यान दिया। वह अच्छी प्रकार अनुभव करता था कि फ्रास को दिवालिया होने से बचाने तथा टैक्स के बोझ को हलका करने का एकमात्र उपाय मितव्ययिता है। मितव्ययिता का सबसे उत्तम उपाय यही था, कि राज दरबार के महान् व्यय को कम किया जावे। वर्साय

के भोग विलास और शान शौकत पर जो भारी रकम खर्च होती थी, उसमे कमी की जावे। पर इस खर्च को कम करना कोई हसी खेल न था। राजदरबारी इसके लिये कब तैयार हो सकते थे? वे जो मौज उड़ा रहे थे, उसे छोड़ना उनके लिये कैसे सम्भव था? वे रात दिन राजा के आसपास रहते थे। उठते बैठते, खाते पीते हर समय वे राजा के साथ रहते थे। उन्हे ऐसे मौकों की कमी न थी, जब वे उस आदमी के खिलाफ—जिसे वे न चाहते हों, राजा के कान भर सके। टूर्जो तो केवल काम काज के समय ही राजा से मिलता था। उसका प्रभाव इन दरबारियों के मुकाबिले मे क्या हो सकता था? टूर्जो १७७४ मे अपने पद पर नियुक्त हुआ था। १७७६ मे उसे पृथक् होना पड़ा। बड़े बड़े अमीर उमरा उसके इतने विरुद्ध हो गये थे, कि उसके लिये कार्य करना असम्भव हो गया। टूर्जो के सामने बड़ी बड़ी योजनाये थी। वह राष्ट्रीय ऋण को सगठित करना चाहता था, वह बजट का निर्माण वैज्ञानिक ढग से करना चाहता थ। वह टैक्स की पद्धति में परिवर्तन करना चाहता था, वह व्यापार की विविध बाधाओं को हटाकर मुक्तद्वार वाणिज्य की नीति का अवलम्बन करना चाहता था। वह फ्रास में लोक सभाओं की स्थापना करना चाहता था। पर उसकी सब योजनायें यू ही धरी रह गई। दरबारियों की कृपा से उसे अपने पद से पृथक् होना पड़ा।

नैकर—टूर्जो के बाद नैकर को प्रधानमन्त्री बनाया गया। यह नैकर स्विटजरलैण्ड का रहने वाला था, और पेरिस मे महाजनी करता था। उसने बजट के आय और व्यय को समुत्तुलित करने के लिये टैक्स के तरीके में बहुत से सुधार प्रस्तावित किये और राष्ट्रीय ऋण लेने की योजना की। पर कुलीन और पुरोहित श्रेणियों को उसकी ये योजनाये पसन्द न आई। असली बात तो यह है, कि सुधार के लिये जो भी वास्तविक और सच्चे प्रयत्न उस समय में किये जा सकते थे, उनसे इन विशेपाधिकार प्राप्त श्रेणियों को कुछ न कुछ हानि अवश्य ही पहुँचती

थी, परन्तु ये ऐसे किसी भी प्रस्ताव का स्वागत करने के लिये उद्यत न थे, जिससे उन पर जरा भी आंच आती हो। इन लोगों ने सब तरह से नैकर का विरोध करना शुरू किया। उसे विदेशी कहकर बदनाम किया गया। उसे प्रोटेस्टेन्ट कहकर विधर्मी बताया गया। रानी ने उसको बर्खास्त करने के लिये बड़ा जोर दिया। परिणाम यह हुआ कि नैकर को भी उसी राह पर जाना पड़ा, जिस पर टूर्जो गया था। पर जाने से पहले वह एक महत्वपूर्ण कार्य कर गया। उसने राजा को एक आवेदन पत्र लिखा, जिसमे फ्रास की आर्थिक दशा का ठीक-ठीक विवरण दिया गया था। इस आवेदन पत्र की अस्सी हजार प्रतिया छपाई गई। जनता ने इसे बड़े उत्साह तथा शौक से पढा। पहली बार उन्हें प्रामाणिक रूप से यह जानने की अवसर मिला, कि आर्थिक दृष्टि से राज्य की कितनी दुर्दशा हो गई है।

कैलोन—नैकर के बाद उसके महत्वपूर्ण पद पर कैलोन को अधिष्ठित किया गया। कैलोन एक दरबारी था। आर्थिक क्षेत्र मे उसका एक ही असूल था, और वह यह कि राजकीय व्यय के लिये जितने धन की आवश्यकता हो, उसे ऋण लेकर प्राप्त कर लिया जावे। राजा और उसके दरबारियों को मौज उड़ाने के लिये रुपये की जरूरत थी। टैक्सों से इतना रुपया प्राप्त नहीं होता था, कि सब आवश्यकतायें पूर्ण की जा सके। एक उपाय और था, वह यह कि कर्ज लिया जाये। कैलोन ने इसी का आश्रय लिया। चार सालों मे उसने ९० करोड़ रुपये कर्ज लिये। पर कर्ज की भी कोई हद होती है। इससे अधिक कर्ज भी न मिल सका। लोग इतने बेवकूफ न थे, कि इस प्रकार कर्ज देते जावे। आखिर, कैलोन को भी सुधारों की सूझी। उसने राजा को सूचना दी कि फ्रास के दिवालिया होने मे अब अधिक विलम्ब नहीं है। यदि इस विकट परिस्थिति से फ्रास की रक्षा करनी हो, तो उसके लिये-बड़े महत्व पूर्ण सुधारों की आवश्यकता है। कैलोन की सम्मति में सबसे अधिक

महत्वपूर्ण सुधार यह था, कि कुलीन और पुरोहित श्रेणियों पर भी भूमिकर लगाया जावे। अब तक ये श्रेणिया इस कर से प्रायः मुक्त थीं। कैलोन चाहता था, कि सब लोगों पर भूमिकर एक समान रूप से लगाया जावे। इसलिये उसने राजा को सलाह दी, कि कुलीन श्रेणियों और चर्च के प्रमुख व्यक्तियों को बुलाया जावे और उनके सम्मुख ये सुधार विचार के लिये उपस्थित किये जावे।

प्रमुख लोगों की सभा (१७८६)—राज्य और चर्च के प्रमुख व्यक्तियों की सभा बुलाई गई। इस सभा में सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि नहीं बुलाये गये थे। केवल विशेषाधिकार प्राप्त लोग इसमे आये थे। इस सभा के सम्मुख कोलोन ने फ्रास की वास्तविक दशा का चित्र खीच कर अपने सुधार प्रस्तावित किये। कोलोन ने बताया कि फ्रास को १२ करोड़ रुपया वार्षिक घाटा हो रहा है। राष्ट्रीय ऋण की मात्रा २४ करोड़ बढ गई है। अधिक किफायत नहीं की जा सकती। कितनी भी किफायत की जाय, घाटा दूर नहीं हो सकता। नया कर्ज भी अब नहीं मिलता। अब क्या किया जाय? सर्वसाधारण जनता पहले ही टैक्सों के बोझ से लदी हुई है, उस पर नये टैक्स नहीं लगाये जा सकते। हा, एक उपाय है। टैक्स की पद्धति के दोषों को दूर किया जाय, तो समस्या हल हो सकती है। बहुत से लोग टैक्स से मुक्त हैं, बहुत से लोग विशेषाधिकार प्राप्त हैं। हा, यदि इनसे भी टैक्स वसूल किये जावे, यदि टैक्स का कानून सब प्रदेशों तथा सब लोगों पर एक समान रूप से लागू हो, तो आर्थिक पहेली सुलझाई जा सकती है। कोलोन ने बड़ी निर्भयता से अपने कार्यक्रम को—अपने सुधारों को पेश किया। पर प्रमुख लोगों की इस सभा को कोलोन पर विश्वास न था, वे उसके सुधारों को स्वीकृत करने के लिये तैयार न थे। कोलोन बर्खास्त कर दिया गया और उसके साथ ही प्रमुख लोगों की यह सभा भी बर्खास्त कर दी गई।

आर्थिक समस्या को हल करने के लिये राजा ने स्वय कुछ सुधार प्रस्तावित किये। इसके लिये राजा ने दो नये टैक्स लगाने का निश्चय किया था। सामान्य रीति से इन टैक्सों को दर्ज करने के लिये पेरिस के न्यायालय (पार्लमा) के पास भेजा गया। पर इस बार पेरिस के न्यायालय ने असाधारण मार्ग का अवलम्बन किया। उसने इन नये टैक्सों को दर्ज करने से ही इन्कार नहीं किया, पर साथ ही यह भी उद्घोषित किया कि किसी नये स्थिर टैक्स को लगाने की अनुमति के देने का अधिकार 'एस्टेट्स जनरल' में एकत्रित जनता को ही है, अन्य किसी को नहीं। इस उद्घोषणा के कुछ दिन बाद ही पेरिस के न्याया-लय ने राजा से प्रार्थना की, कि राज्य के 'एस्टेट्स जनरल' के अधिवेशन को बुलाया जाय।

राजा के लिये अब एक नई समस्या उपस्थित हो गई थी। न्याया-लय उसके नये टैक्सों को दर्ज नहीं करते थे। उन्होंने खुल्लम-खुल्ला राजा तथा उसके सहायकों के कार्य का विरोध करना शुरू कर दिया था। राजा ने पेरिस के न्यायालय को बर्खास्त कर दिया, और न्याय की नई पद्धति की स्थापना की। पर स्थिति अब उसके काबू से बाहर हो चुकी थी। क्रान्ति की भावना लोगों में गहरा स्थान प्राप्त कर गई थी। आखिर, उसे मजबूर होकर 'एस्टेट्स जनरल' के अधिवेशन को बुलाने के लिये सहमति देनी पड़ी।

पांचवां अध्याय

क्रान्ति का श्रीगणेश

एस्टेट्स जनरल—'एस्टेट्स जनरल' के अधिवेशन के साथ ही क्रान्ति का श्रीगणेश हो जाता है। राजा की यह प्रथम पराजय थी। उसे यह स्वीकार करना पड़ा था, कि वह अकेला अपनी इच्छा से—चाहे साक्षात् परमात्मा ने ही उसे राज्य करने के लिये नियुक्त किया हो—फ्रांस की आर्थिक समस्या का हल नहीं कर सकता। उसे जनता की सहायता की आवश्यकता को स्वीकार करना पडा था। क्रान्ति के सिद्धांत की यह भारी विजय थी।

एस्टेट्स जनरल क्या चीज थी, उसका निर्माण किस प्रकार होता था और उसके क्या नियम थे—इन बातों को जानने वाला उस समय कोई न था। इस सभा का १७५ सालों से कोई भी अधिवेशन नहीं हुआ था। सभी लोग इसकी चर्चा तो करते थे, पर इसका ठीक ठीक परिज्ञान किसी को न था। परिणाम यह हुआ, कि यह कार्य विद्वानों के सुपुर्द किया गया। आखिरकार, फ्रांस के विद्वानों ने बड़े अनुसन्धान के अनन्तर यह पता लगाया कि एस्टेट्स जनरल का क्या स्वरूप था।

जिन दिनों फ्रांस मे सामन्तपद्धति (Feudal system) प्रचलित थी, तब इस सभा के अधिवेशन हुआ करते थे। इसका निर्माण सामन्त-पद्धति की परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर हुआ था। यह सभा तीन विभागों

में विभक्त थीं और इन विभागों मे क्रमशः, पुरोहित, कुलीन तथा तृतीय (सर्वसाधारण जनता) श्रेणि के प्रतिनिधि सम्मिलित हुआ करते थे। तीनों श्रेणियो के सदस्यों की संख्या बराबर बराबर होती थी और प्रत्येक विभाग पृथक् पृथक् वोट देता था। एक विभाग का एक वोट समझा जाता था। किस विभाग की क्या सम्मति है, यह बहुमत से निर्णय किया जाता था। तीन विभागों में से कम से कम दो जिसके पक्ष में हों, वह स्वीकृत समझा जाता था। मध्यकाल की परिस्थितियों के अनुसार यह व्यवस्था सर्वथा उपयुक्त थी। उस समय राष्ट्रीय भावनाओं का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। पुरोहित और कुलीन श्रेणियों की महत्ता लोगों की दृष्टि में निर्विवाद थी। सर्वसाधारण जनता मे अपने महत्व का विचार ही उत्पन्न नहीं हुआ था। उस जमाने मे यह भी बहुत बड़ी बात थी, कि सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि इस सभा में सम्मिलित हों। उस समय में यह बिलकुल स्वाभाविक था कि कुलीन और पुरोहित श्रेणिया पृथक् विभागों में वोट करे और अपने को साधारण जनता से अलग रखे। पर अब १७८८ में जमाना बिलकुल बदल चुका था। अब सर्वसाधारण लोगों के प्रतिनिधि यह दावा करते थे, कि हम ९६ फीसदी से अधिक जनता के प्रतिनिधि हैं। पुरोहितों और कुलीनों को पृथक्-पृथक् जितने सदस्य प्राप्त हैं, उतने ही हमें भी प्राप्त हो—यह कहा का न्याय है।

प्रतिनिधियो की संख्या—इस समय राजा का प्रधानमन्त्री नैकर था। कैलोन के पतन के बाद उसे फिर अपने पुराने पद पर नियत किया गया था। नैकर ने स्वीकार किया, कि सर्वसाधारण जनता को दुगने प्रतिनिधि मिलने चाहियें। कुलीनों और पुरोहितों के तीन तीन सौ प्रतिनिधि होते थे, अत सर्वसाधारण जनता को ६०० प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

वोट का प्रकार—परन्तु इससे वास्तविक समस्या का हल नहीं हुआ। सर्वसाधारण जनता को दुगने प्रतिनिधि मिल गये—पर इससे

लाभ कुछ नही हुआ ? यदि तो तीनों विभागों ने एक सभा मे वोट देने होते, प्रत्येक सदस्य का एक वोट गिना जाता और सम्पूर्ण सदस्यों के बहुमत से निर्णय होता—तब तो अवश्य लाभ था। पर यदि इसके विपरीत अब भी पहले की ही तरह प्रत्येक विभाग का एक एक वोट गिना जावे और प्रत्येक विभाग अपना निर्णय पृथक् रूप से करे, तो इससे क्या लाभ हुआ ? अतः सर्वसाधारण जनता ने यह आन्दोलन शुरू किया कि वोट का ढग बदलना चाहिये। तीनों विभागों की पृथक् पृथक् सभा न होकर एक साथ सभा होनी चाहिये और उसमें बहुमत से निर्णय किया जाना चाहिये। पर नैकर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

शिकायत-पत्र—एस्टेट्स जनरल के लिये प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने के साथ ही पुराने रिवाज के अनुसार जनता को यह भी अवसर दिया गया था, कि सरकार और देश के शासन से उन्हें जो शिकायतें हों, उन्हें लिखकर भेजें। लोगों ने इस अवसर का पूर्णरूप से उपयोग किया। हजारों की सख्या में शिकायत-पत्र लिखकर भेजे गए। ६० हजार के लगभग इस प्रकार के शिकायत-पत्र सुरक्षित कर लिये गए हैं, और उनके अनुशीलन से भली भाति जाना जा सकता है, कि उस समय लोग क्या अनुभव करते थे और उन्हें क्या शिकायतें थी। इन शिकायत पत्रों से जिन्हे कि फ्रास मे काये (cahiers) कहा जाता था, ज्ञात होता है कि उस समय फ्रासीसी लोग रिपब्लिक नहीं चाहते थे, वे केवल राजा के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने के लिये इच्छुक थे। वे प्रत्येक मनुष्य को वोट का अधिकारी नहीं समझते थे, लोक तन्त्र शासन का यह प्रारम्भिक तत्व उनकी समझ में नहीं आया था। परतु साथ ही, उस समय के शासन के विविध दोषों की अनुभूति उनमे उत्पन्न हो चुकी थी और वे उन्हें दूर करने के लिये पूर्णतया उद्यत थे। एक भारी परिवर्तन के लिये लोग तैयार हो गए थे।

अधिवेशन का प्रारम्भ (५ मई १७८९)— ५ मई १७८९ के दिन एस्टेट्स जनरल की प्रथम बैठक हुई। सदस्यों को आज्ञा दी गई थी कि वे उसी पोशाक को पहन कर आवें, जो कि मध्यकाल मे इस सभा के सदस्य पहना करते थे। राजा अपनी आज्ञा से सदस्यों की पोशाक को पुराना बना सकता था, पर उन की भावनाओं और विचारों को पुराना बनाना उसकी सामर्थ्य से बाहर था। वर्साय के एक शानदार महल में एस्टेटस जनरल का प्रारम्भिक अधिवेशन शुरू हुआ। बीच मे ऊँचे राज-सिंहासन पर राजा विराजमान था। रानी उसके पार्श्व मे बैठी थीं। सबसे पहले राजा का प्रारम्भिक भाषण हुआ। राजा इस भाषण को रट कर लाया था, और पाठशाला में पढने वाले लड़के की तरह उसने उसे उगल दिया। नैकर के भाषण मे तीन घण्टे लगे। जब राजा और उसके प्रधान मन्त्री के भाषण हो चुके, तो जय जय कार की ध्वनि के बीच राजा और रानी ने सभाभवन से प्रस्थान किया।

एस्टेट्स जनरल के इस अधिवेशन के प्रारम्भ होते ही कुछ ऐसी घटनायें हो गई, जिनमे कि सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि चिढ़ गये। जब तक पुरोहित और कुलीन श्रेणियों के प्रतिनिधि बैठ नहीं गये, तब तक उन्हें खड़े रहना पड़ा। राजा जब अपना प्रारम्भिक भाषण दे रहा था, तब सब लोगों ने अपनी टोपिया उतारी हुई थीं। भाषण की समाप्ति के अनन्तर जब राजा अपने सिंहासन पर बैठा, तो उसने अपनी टोपी सिर पर रख ली। उसके बाद कुलीनों और पुरोहितों ने भी अपनी टोपिया सिर पर रखली। पर जब सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि भी यही करने लगे, तो उन्हें टोका गया। ये बातें मामूली थी, पर इन से शुरू मे ही सर्वसाधारण लोगों के मनों पर बहुत बुरा असर पड़ा।

वोट किस प्रकार से लिये जावें, इस बात का फैसला अभी नहीं हुआ था। यद्यपि प्रारम्भिक अधिवेशन मे सभाभवन से प्रस्थान करने से पूर्व राजा ने तीनों विभागों को पृथक् पृथक् जाकर अपना अपना अधि-

वेशन करने का आदेश दिया था, पर तृतीय श्रेणी के प्रतिनिधि इसको मानने के लिये उद्यत न थे। वे निरन्तर अन्य दोनों विभागो को इस बात के लिये निमन्त्रित कर रहे थे, कि वे उनके साथ मिलकर एक सभा के रूप मे राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करे। पर अन्य विभागों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। आखिर, जब तृतीय श्रेणी के लोग अन्य विभागों के व्यवहार से सर्वथा निराश हो गये, तो उन्होंने एक बड़े साहस का कार्य किया। १७ जून को तृतीय श्रेणी के विभाग के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया, कि क्योंकि वे ९५ फीसदी जनता के प्रतिनिधि हैं और क्योंकि वास्तविक शक्ति यह सर्व साधारण जनता ही है, अतः निश्चय किया जाता है, कि जनता के ये वास्तविक प्रतिनिधि राष्ट्रीय महासभा का रूप धारण करले। इस प्रस्ताव के पक्ष मे ४९१ वोट आये और विपक्ष मे ९०। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। 'एस्टेट्स जनरल' के तृतीय-श्रेणी के प्रतिनिधियों ने अपने को राष्ट्रीय महासभा के रूप मे परिवर्तित कर लिया। कुलीनों और पुरोहितों की सर्वथा उपेक्षा करदी गई।

जब राजा और उसके दरबारियों को यह समाचार मिला, तो उनको होश आई। राजा ने आज्ञा दी कि तीनो विभागों का अधिवेशन एक साथ किया जावे, वह स्वयं सभापति बनेगा। ऐसा ही किया गया। 'एस्टेट्स जनरल' के तीनों विभाग एक सभा के रूप मे एकत्रित हुए। राजा सभापति बना और उसने अपने श्रीमुख से अनेक सुधार प्रस्तुत किये। जब यह सब हो चुका, तो राजा ने बड़ी गम्भीरता से आज्ञा दी कि अब तीनों विभाग पृथक् पृथक् चले जावे और अपने-अपने अधिवेशन करे। पुरोहित और कुलीन श्रेणियों के अधिकाश सदस्य आज्ञा का पालन कर उठकर चले गये। शेष सदस्य चुपचाप बैठे रहे। वे देख रहे थे, कि अब क्या होता है। एक बार फिर राजकीय आज्ञा दोहराई गई। मिराबो ने इसका प्रतिवाद किया। उसने निधड़क होकर कहा कि वे तब तक वहा से नहीं उठेंगे, जब तक कि बन्दूक के कुन्दों से उन्हें बाहर

नहीं निकाल दिया जावेगा। यह मिराबो सर्व साधारण जनता का प्रमुख और प्रभावशाली नेता था।

जनता की विजय—अन्त मे राजा की पराजय हुई। उसे जनता की माग स्वीकार करनी पड़ी। उसने आज्ञा प्रकाशित की, कि तीनों विभागों का अधिवेशन एक साथ हो, कुलीन और पुरोहित-श्रेणियों के जो सदस्य अभी तक तृतीय-श्रेणी के साथ राष्ट्रीय महासभा मे सम्मिलित नहीं हुए हैं, वे सम्मिलित हो जावे। आखिर सर्व साधारण जनता अपने महत्व को प्रदर्शित करने मे सफल हुई। कुलीन और पुरोहित-श्रेणियों पर उसकी विजय हुई।

दरबार की साजिश—सर्व साधारण जनता जिस ढग से शक्ति प्राप्त करती जा रही थी, वह राजदरबार के लोगों को सह्य न था। वे अच्छी तरह जानते थे, कि उनकी भलाई इसी मे है, कि राजा का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन कायम रहे। ये लोग सुधार के जानी दुश्मन थे। वे अपने विशेषाधिकारों को किसी भी प्रकार छोड़ने के लिये तैयार न थे। वे यह भी सहन नहीं कर सकते थे कि राजा की स्थिति वैध शासक की हो जावे। फ्रास के शासन मे जनता का हाथ हो जाने पर उन्हें मौज उड़ाने का अवसर कैसे मिलेगा? रानी इन दरबारियों का हृदय से समर्थन कर रही थी। राजा का छोटा भाई आर्तोआ का काउन्ट भी उनका प्रबल पक्ष पोषक था। ये लोग सर्वसाधारण जनता की हरकतों को बहुत ही खतरनाक तथा शैतानियत से भरी हुई समझते थे, और उन्हे कुचलने के लिये सब प्रकार के उपाय का अवलम्बन करने के पक्ष मे थे। इन्होंने साजिश की, कि राष्ट्रीय महासभा को तोड दिया जावे। पर ये यह भी जानते थे, कि जनता इसे सहन न कर सकेगी, वह गदर के लिये तैयार हो जावेगी। इसलिये इसका प्रबन्ध वे पहले से ही कर देना चाहते थे। उन्होंने गदर को कुचलने के लिये विदेशी सैनिकों का प्रयोग करने का निश्चय किया। उस समय में वेतन की

खातिर बहुत से सैनिक दूसरे देशों में नौकरी किया करते थे। विशेषतया स्विडजरलैण्ड और जर्मनी के वीर योद्धा यूरोप के अनेक राजाओं के पास सैनिक की नौकरी करते थे। इन्हें केवल अपनी नौकरी से मतलब था। अपने मालिक के हुक्म से ये कुछ भी करने को तैयार हो जाते थे। दरबार का गुट चाहता था, कि इन सैनिकों की एक सेना को बुलाकर पेरिस में तैनात कर दिया जाय, ताकि यदि राष्ट्रीय महासभा के बर्खास्त करने पर जनता विद्रोह करे, तो उसे कुचल दिया जावे। उनकी यह भी इच्छा थी कि नैकर को—जो सर्वसाधारण जनता से सहानुभूति रखता था—पदच्युत कर दिया जावे।

राजा इस साजिश से सहमत हो गया। स्विस और जर्मन सैनिकों की सेनायें पेरिस मे तैनात करदी गई। जब पेरिस की जनता को ये समाचार मिले, तब वह भड़क उठी। एक उद्यान में बहुत से लोग एकत्रित थे और इस विषय पर बातचीत कर रहे थे। कैमिल देसमोला नाम का एक नवयुवक अखबारनवीस उनके बीच में पहुँचा और चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा कि शीघ्र ही स्विस सिपाही 'देशभक्तों' को कतल करते हुए दिखाई पड़ेंगे, अतः हमे चाहिये कि अपने को शस्त्रों से सुसज्जित कर सगठित करें, ताकि दरबारी गुट से अपनी रक्षा की जा सके। देसमोला का आन्दोलन काम कर गया। सारी रात लोग पेरिस की गलियों मे चक्कर लगाते फिरे। जितने भी हथियार मिल सके, एकत्रित किये गये। लूटमार मच गई।

बस्तीय्य का पतन—कुछ ही दिनों बाद पेरिस के लोग फिर इकट्ठे हुए। उन्हें हथियारों की खोज थी। वे देशभक्ति का कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते थे। लोगों की एक भीड बस्तीय्य की तरफ निकल गई। यह एक पुराना किला था, जो अब जेलखाने के तौर पर इस्तेमाल होता था। लोगों को इससे विशेष घृणा थी। उनका खयाल था कि फ्रास की सरकार के क्रूर अत्याचारों का यह एक महत्वपूर्ण केन्द्र है।

उन्हें पूर्ण आशा थी कि यहां बहुत से हथियार इकट्ठे ही मिल जावेंगे। वस्तीय्य का किलेदार लौनी नाम का एक महानुभाव था। उसने किले को खोलने से इकार कर दिया। बहुत सी भीड़ इकट्ठी हो गई। दोनों तरफ से कहा सुनी होने लगी। पता नहीं, किस प्रकार वस्तीय्य की सेना ने भीड़ पर गोली चलादी। सौ देशभक्त मर कर गिर पड़े। लोगों मे जोश फैल गया। हमला होने लगा। आखिर,लौनी को मजबूर होना पड़ा कि किले के दरवाजे खोल दे। कुछ जनता अन्दर घुस गई। कैदियों को बन्धन से मुक्त कर दिया गया। लौनी और उसके सम्पूर्ण सैनिकों के सिर धड़ से अलग कर दिये गये। इन सब सिरों को लाठियों और बरछों की नोक पर लटका कर सारे, पेरिस मे जलूस निकाला गया। वस्तीय्य को ध्वंस कर दिया गया। यह घटना १४ जुलाई सन् १७८९ के दिन हुई थी। इस घटना का बड़ा महत्व है। फ्रास मे आज भी १४ जुलाई का दिन प्रधान राष्ट्रीय त्यौहार के रूप मे मनाया जाता है। निस्सन्देह, पुराने युग के एकतन्त्र शासन पर यह प्रथम आघात था। इस घटना से भलीभाति स्पष्ट हो गया कि क्रान्ति अब हुए बिना न रहेगी। कुलीन श्रेणी के बहुत से लोग इसी समय से फ्रास छोड़कर और देशों मे जाने लग गये। सारे देश मे अव्यवस्था फैल गई।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना—स्थिति इतनी बिगड चुकी थी, कि उसे सम्भाल सकना राजा की शक्ति के बाहर था। जब किसी देश मे अव्यवस्था फैलने लगती है, शासनसूत्र ढीला पड़ता है, तो बदमाशों और लफङ्गों की बन आती है। पेरिस की भी अब यही दशा थी। सारे शहर मे हजारो की सख्या में भूखे, नगे लोग तबाही मचाते फिरते थे। वे जिस पर चाहते हमला कर देते, जिस दूकान को चाहते लूट लेते। इस अव्यवस्था मे पेरिस के लोगों की जान और माल की रक्षा करने के लिये राष्ट्रीय नेताओं ने एक 'राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना' का सगठन किया। लफायत इसका सेनापति बनाया गया। पेरिस मे शान्ति और व्यवस्था

कायम रखने मे राष्ट्रीय सेना को पूरी सफलता प्राप्त हुई। राजा को यह बहाना बनाने का अवसर नहीं दिया गया, कि इस अव्यवस्था की सम्भावना को दृष्टि मे रख कर ही उसने विदेशी सैनिकों की सेना को बुलाया था।

नागरिक सभा—इतना ही नहीं, पेरिस के नागरिक शासन को भी नये ढग से सगठित किया गया। राजा और उसकी सरकार की सर्वथा उपेक्षा कर जनता ने स्वय पेरिस की नगर सभा का निर्माण किया। राष्ट्रीय महासभा के एक सदस्य को ही इस नगर सभा का अध्यक्ष नियत किया गया। फ्रास के अन्य बड़े नगरों ने भी पेरिस का अनुसरण किया। सर्वत्र नवीन नगर-सभाओं की रचना की गई। राष्ट्रीय स्वयसेवक सेनाये सगठित की गई।

देहातों मे भी अव्यवस्था फैल गई। किसानो ने जमींदारों के मकानों पर हमले शुरू कर दिये। टैक्स वसूल कर सकना असम्भव हो गया। बस्तीय्य के ध्वंस के साथ जिस लहर का प्रादुर्भाव हुआ था, वह पेरिस तक ही सीमित नही रही, उसने बड़ी शीघ्रता से सम्पूर्ण फ्रास को व्याप्त कर लिया।

एक दिन राजा १६वा लुई दिन भर शिकार से थक कर जब साझ को अपने बिस्तर पर लेटने लगा, तो उसे ये समाचार दिये गये। समाचार सुन कर राजा ने चकित होकर पूछा—'हैं! क्या कोई दगा हो गया है!' खबर लाने वाले ने जवाब दिया—'नहीं मालिक! दगा नहीं क्रान्ति हो गई है।'

वस्तुतः, अब राज्यक्रान्ति का श्री गणेश हो चुका था।

छठा अध्याय

राज्यक्रान्ति की प्रगति

राजा का रुख—फ्रास में जिस प्रकार अव्यवस्था और अशाति फैल रही थी, उससे १६वा लुई वस्तुतः चिन्तित था। राजा अपने आप मे बुरा नहीं था। उसका दोष यही था कि वह कमजोर था, इरादे का पक्का न था। उसके सलाहकार उसके लिये सब से अधिक हानिकारक थे। यदि १६वा लुई इन सलाहकारों के प्रभाव से बच सकता, तो निस्सन्देह क्राति की दिशा कुछ और ही होती। जब उसे वस्तीय्य के ध्वंस का समाचार मिला, तब अगले ही दिन वह राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन मे उपस्थित हुआ। वहा उसने प्रतिज्ञा की कि विदेशी सैनिकों की सेनाओं को वापिस भेज दिया जायगा और नैकर को फिर प्रधानमन्त्री बनाया जायगा। इसके बाद वह २०० प्रतिनिधियों (राष्ट्रीय महासभा के सदस्यों) के साथ पेरिस गया, ताकि जनता को शान्त कर सके। पेरिस मे जाकर राजा ने क्रान्तिकारियों के तिरगे झण्डे को भी नमस्कार किया। फ्रास में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, राजा ने उनके सम्मुख सिर झुका देने मे ही अपना कल्याण समझा। निस्सन्देह, वह ठीक मार्ग पर चल रहा था। पर उसके सलाहकार ! उसके दरबारी ! वे उसे इन नई प्रवृत्तियों को कुचल देने के लिये उकसा रहे थे। आखिर, राजा ने रात दिन अपने आस पास रहने वाले इन दरबारियों के कहने को मान लिया। १६ वे

लुई की यही निर्बलता थी। माननीय स्वभाव की यह प्राकृतिक निर्बलता है।

सामाजिक क्रान्ति—राज्यक्रान्ति की जो प्रक्रिया अब प्रारम्भ हो चुकी थी, वह अपना प्रभाव प्रदर्शित कर रही थी। गाव गाव मे किसान लोग सभायें करके पुराने जमाने को कब्र मे गाड़ देने के प्रस्ताव पास कर रहे थे। केवल प्रस्ताव ही पास नहीं हो रहे थे, काम भी हो रहा था। टैक्स वसूल करने वाले पानी मे डुबाये जा रहे थे। जमीदारों के किले ध्वस किये जा रहे थे, गोदामों को आग लगाई जा रही थी। सर्वसाधारण जनता सामाजिक दृष्टि से अपनी हीन दशा के खिलाफ विद्रोह कर रही थी। जिन कुलीन लोगों ने उन्हें सदियों से दलित बनाया हुआ था, उनसे पूरा पूरा बदला लिया जा रहा था। सामाजिक भेदों पर कुठाराघात किया जा रहा था। राज्यक्रान्ति तो पेरिस मे हो रही थी, ये देहात के लोग तो सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की तरफ पग बढा रहे थे। मध्यकालकी सामन्त पद्धति के जो भी अवशेष इस काल मे विद्यमान थे, उन्हें चुन चुन कर नष्ट किया जा रहा था।

राष्ट्रीय महासभा की जो बैठक ४ अगस्त को हुई, वह बहुत महत्व-पूर्ण है। पेश किया गया, कि सामन्त पद्धति को नष्ट कर दिया जावे। प्रस्ताव पास हो गया। प्रस्ताव किया गया, कि चर्च को दशाश वसूल करने का जो अधिकार है, वह नष्ट कर दिया जावे। पास हो गया। प्रस्ताव किया गया, कि शिकार के कानून नष्ट कर दिये जावें। पास हो गया। कुलीन और पुरोहित श्रेणियों को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे, उन्हें नष्ट करने का प्रस्ताव किया गया। पास हो गया। इसी तरह के अन्य भी बहुत से प्रस्ताव उपस्थित किये गये, जिनका उद्देश्य मध्यकाल के अन्यायों को नष्ट करना था, वे सब स्वीकृत हो गये। इस बैठक मे मध्यकालीन सस्थाओं के बहुत से अवशेषों का अन्त कर दिया गया। यह बैठक बहुत ही महत्वपूर्ण थी।

इन चार महीनों में फ्रास मे दो महत्वपूर्ण क्रान्तिया हो गई थीं। राज्यक्रान्ति द्वारा फ्रास की जनता ने राजा के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त कर राजा को जनता की इच्छा को स्वीकृत करने के लिये बाधित किया था। सामाजिक क्रान्ति द्वारा फ्रास मे सामन्त-पद्धति तथा उससे सम्बद्ध सस्थाओं को नष्ट कर जनता की विविध श्रेणियों मे समानता स्थापित की गई थी।

कुलीन लोगों का फ्रास से भागना—चार अगस्त की बैठक मे राष्ट्रीय महासभा ने जो रुख अख्तियार किया था, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि फ्रास मे पुराने जमाने का अन्त होना अवश्यम्भावी है। इसलिये बहुत से उच्च पुरोहित तथा कुलीन लोग इस समय मे फ्रास छोड़ कर अन्य देशों मे चले गये। वस्तीय्य की जेल के ध्वस के बाद ही हजारों की सख्या में ये विशेषाधिकार-प्राप्त लोग फ्राम छोड़कर विदेशों मे जाने शुरू हो गये थे। अब इस प्रवृत्ति की गति और भी बढ गई। यूरोप के अन्य देशों मे अभी क्रान्ति की भावना उदित नहीं हुई थी। उन्हें आशा थी, कि वहा उन्हें आश्रय मिलेगा और वे दूसरे देशो के कुलीन लोगों तथा राजशक्ति की सहायता से फ्रास मे क्रान्ति को कुचल सकेंगे।

पेरिस की भीड का राजप्रासाद पर हमला—पर अभी बहुत से कुलीन लोग फ्रास में विद्यमान थे। राजा को उसके दरबारी पहले की ही तरह घेरे रहते थे। दरबार के इस गुट ने राजा को उकसाना शुरू किया कि ४ अगस्त को राष्ट्रीय महासभा ने जो प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं, उन पर अपनी स्वीकृति न दे। राजा अपने दरबारियों के प्रभाव मे आ गया। समय गुजरता गया, राजा ने उन प्रस्तावों पर हस्ताक्षर नही किये। तरह तरह की अफवाहें फैलने लगीं। लोग आपस मे बातचीत करने लगे, कि राजा क्रान्ति को कुचलने के लिये तैयारिया कर रहा है। इसके लिये उनने बाहर से फौज मगवाई है। पेरिस का वातावरण इमी

प्रकार की अफवाहों से गरम हो गया। ठीक वही हालत हो गई, जो कि वस्तीय्य के पतन से पहले दिन थी। इसी समय खबर आई कि फ्लान्डर्स से एक फौज वर्साय पहुँच गई है। राजा की अगरक्षक सेना ने उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया है। इस फौज को जब सहभोज दिया जा रहा था, तो रानी भी वहीं उपस्थित थी। यह भी सुना गया है, कि सेना के अफसरों ने जोश में भर कर क्रान्ति के तिरंगे झण्डे को पैरों से कुचला है। इस प्रकार की अफवाहों से जनता में जोश लहरें मारने लगा। पेरिस में भूखों नङ्गों की क्या कमी थी। गुण्डे और बदमाश भी ऐसे मौकों की प्रतीक्षा में रहते हैं। भूखे, गुण्डे, बदमाश, देशभक्त, क्रान्तिकारी—सब तरह के लोग कामकाज छोड़कर बाजारों में निकल आये। गपशप उड़ने लगी। जरा सी देर में लोगों का एक जुलूस बन गया। हजारों औरतें और हजारों मर्द पेरिस की गलियों में जुलूस बना कर फिरने लगे। जिधर भी ये गये, लोग साथ होते गये। पेरिस में चक्कर काट कर इस जुलूस ने वर्साय की तरफ—जहां राजा रहता था—प्रस्थान किया। लफायत अपनी राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना को लेकर जुलूस के पीछे पीछे हो लिया। उसे फिकर थी कि कहीं दङ्गा न हो जाय। स्थिति को काबू में रखने के लिये वह पेरिस की इस भीड़ के साथ साथ वर्साय गया था। यह घटना ५ अक्टूबर को हुई।

पेरिस की इस भीड़ ने राजप्रासाद को घेर लिया। जब तक जुलूस वर्साय पहुँचा, शाम हो गई थी। लोगों ने राजप्रासाद के आसपास खुले आसमान के नीचे रात व्यतीत की। सुबह होने पर लोग फिर हल्ला गुल्ला करने लगे। कुछ लोगों ने प्रासाद के सन्तरियों से छेड़छाड़ की। झगड़ा हो गया। अनेक सन्तरी मार गये। कुछ लोग प्रासाद में घुस गये। ईंट और पत्थर फेंके जाने लगे। कुछ समझदार लोग राजा के पास पहुँचे और निवेदन किया कि महाराज, भीड़ तब तक शान्त न होगी, जब तक आप उसे दर्शन न दे देंगे। राजा ने स्वीकार कर

लिया। राजप्रासाद के एक झरोखे पर खड़े होकर राजा, रानी और राजकुमार ने जनता को दर्शन दिया। पर लोग इतने से भी सतुष्ट न हुए। वे आग्रह करने लगे कि राजा को उनके साथ पेरिस चलना पड़ेगा। उन्हें विश्वास था कि राजा ही सब सुख समृद्धि का मूल है। उसे पेरिस मे अपने साथ रखकर वे समझते थे कि उनकी सब समस्याओं का हल हो जावेगा। फ्रास की जनता अब तक भी हृदयसे राजभक्त थी। रिपब्लिक की कल्पना अब तक भी उत्पन्न नहीं हुई थी।

पुराने जमाने का मातमी जुलूस—६ अक्टूबर को दिन के एक बजे जुलूस ने वर्साय से पेरिस के लिये प्रस्थान किया। पुराने जमाने का यह मातमी जुलूस था। मरे हुए सन्तरियों के कटे सिर बर्छियों पर टाग लिये गये थे और लोग उन्हें हाथ मे लेकर आगे आगे चल रहे थे। राष्ट्रीय महासभा के सदस्यों को भी साथ ले लिया गया था। राजा रानी और राजकुमार बाधित होकर जुलूस के साथ साथ जा रहे थे। भूखी नगी जनता आनन्द के आवेश मे चिल्लाती जाती थी—'रोटी वाला, रोटी वाली और रोटी वालों का लड़का'। ये लोग समझ रहे थे, कि राजा हमारे साथ है, उसके पास रोटियों का अक्षय भण्डार है, अब उन्हें रोटियों की कमी नहीं रहेगी।

राजा और राष्ट्रीय महासभा को वर्साय से पेरिस ले आया गया। यह घटना फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति के इतिहास में बहुत महत्व रखती है। अब राज्यक्रान्ति की प्रगति पर पेरिस की जनता का प्रभाव बहुत अधिक बढ गया। पेरिस के लोगों की इच्छा क्रान्ति के स्वरूप को परिवर्तित करने लगी। पेरिस के आम लोग सुसगठित न थे। वहा भूखों, नङ्गों, गुण्डों और बदमाशों की प्रचुरता थी। इनके अतिरिक्त गैरजिम्मेवार, बढ़ बढकर बात बनाने वाले लोग पेरिस में बड़ी सख्या में मौजूद थे। इन सब लोगों की सम्मतिया—सम्मतिया नहीं, क्षणिक मानसिक आवेश राष्ट्रीय महासभा

के निर्णयों पर असर करने लगे। फ्रांस की राजक्रान्ति जनता की इच्छा को सर्वोपरि करना चाहती थी। यह तो हो गया। पर जनता की इच्छा अनेक बार ऐसे विकृत रूप में प्रगट हुई, कि उसकी उपादेयता मे ही लोगों को सन्देह होने लगा। राजा को टुइलरी के राजप्रासाद मे रखा गया। वहा उस पर जनता का कड़ा निरीक्षण था। उसकी स्थिति कैदी से बहुत अच्छी नहीं रह गई थी।

मनुष्यों के आधारभूत अधिकार—जिस समय ये सब घटनाये हो रही थी, राष्ट्रीय महासभा देश के लिये नवीन शासन विधान का निर्माण करने मे लगी थी। उसकी एक उपसमिति शासन विधान का खाका तैयार कर रही थी। उसने अपना कार्य समाप्त कर दिया। जो नया शासनविधान बनाया गया, उसमे सब से पहले जनता के आधारभूत अधिकारों की उद्घोषणा की गई। इन अधिकारों मे से मुख्य मुख्य निम्नलिखित थे—(१) सब मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न होते हैं, और उनके अधिकार एकसमान हैं। सामाजिक भेद का आधार सार्वजनिक उपयोगिता के सिवा अन्य कुछ नहीं है। (२) राज्य की स्वामित्वशक्ति जनता मे निहित है। (३) स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है, कि प्रत्येक मनुष्य को वह सब कुछ करने का अधिकार है, जिससे कि किसी दूसरे को हानि पहुँचने की सम्भावना न हो। (४) सरकार का प्रयोजन मनुष्यों के आधारभूत अधिकारियों को सुरक्षित रखना है। (५) जनता की सार्वजनिक इच्छा ही कानून है। प्रत्येक नागरिक को अधिकार है, कि स्वय या अपने प्रतिनिधि द्वारा कानून का निर्माण करने म हाथ बटावे। (६) प्रत्येक मनुष्य के लिये कानून एक ही होना चाहिये। (७) प्रत्येक मनुष्य तब तक निरपराधी समझा जायगा, जब तक कि कानून के अनुसार बने हुए न्यायालय उसे अपराधी साबित नहीं कर देंगे। कानून के प्रतिकूल किसी मनुष्य को न कैद किया जा सकता है, न अपराधी कहा जा सकता है, और न सजा दी जा सकती है। (८)

किसी भी मनुष्य को अपनी सम्मतियों के कारण—चाहे वे सम्मतिया धार्मिक मामलों के सम्बन्ध में भी हों, सजा नहीं दी जावेगी, बशर्ते कि वे सम्मतिया सार्वजनिक व्यवस्था मे बाधा डालने वाली न हों। (९) अपने विचारों और सम्मतियों को स्वतन्त्रता पूर्वक प्रकट कर सकना मनुष्यों के सबसे अधिक बहुमूल्य अधिकारों मे से एक है। अतः प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है, कि वह स्वतन्त्रता के साथ भाषण कर सके, लिख सके और मुद्रण कर सके। परन्तु यदि वह इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करेगा - दुरुपयोग किस प्रकार होता है यह कानून स्पष्ट करेगा—तो जिम्मेवारी उसी की होगी। (१०) प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है, कि वह स्वय या अपने प्रतिनिधि द्वारा इस बात का निश्चय करने मे हाथ बटावे कि सार्वजनिक कोष के लिये कितने धन की आवश्यकता है, इस धन का खर्च किस प्रकार किया जावे, और इस धन को प्राप्त करने के लिये कौन-कौन से टैक्स लगाये जावे, ये टैक्स किस प्रकार से वसूल किए जावे और कितने समय के लिए कायम रहे। (११) जनता को हक है, कि प्रत्येक राजकर्मचारी से उसके कार्य का व्यौरा लेसके। (१२) सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार एक पवित्र तथा अनुलङ्घनीय अधिकार है।

इन आधारभूत अधिकारों को जनता के सम्मुख प्रकाशित करते हुए राष्ट्रीय महासभा ने निस्सन्देह यह ठीक दावा किया था, कि सदियों से मनुष्यों के इन अधिकारो का अपमान किया जाता रहा है। अब हम फिर इनअधिकारों की स्थापना करते हैं, और हमारी यह विज्ञप्ति अत्याचारियों के विरुद्ध एक शाश्वत युद्ध घोषणा का कार्य करती रहेगी।

शासन विधान—आधारभूत अधिकारों की यह उद्घोषणा शासन विधान की प्रस्तावना मात्र थी। शासन विधान का निर्माण प्रधानतया दो सिद्धान्तों को दृष्टि में रख कर किया गया था—(१) राज्य में जनता ही है. जिसमे कि स्वामित्व-शक्ति निहित रहती है। (२) सरकार के शासन, कानून-निर्माण तथा न्याय—ये तीनों विभाग पृथक पृथक् रहने

चाहिये। इन सिद्धान्तों को आधार मे रखकर जो शासन विधान बनाया गया था, उसका ढाचा निम्न लिखित है—

राजा को इस शासन विधान में स्थान दिया गया था। पर उसकी स्थिति को एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजा से परिवर्तित कर वैध तथा शासन विधान का अङ्गभूत बना दिया गया था। अब वह केवल परमेश्वर की कृपा से ही राज्य नहीं करता था, पर उसकी सत्ता जनता की इच्छा पर भी आश्रित थी। राज्य के कानूनों के अन्दर और अधीन रहना उसके लिये आवश्यक था। वह मन्त्रियों को नियुक्त और बर्खास्त कर सकता था, पर यह मन्त्री व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी थे। व्यवस्थापिका सभा मे जो प्रस्ताव व विधान स्वीकृत होते थे, उनके प्रयोग मे आने से पूर्व राजा की स्वीकृति भी आवश्यक थी। पर यदि राजा किसी प्रस्ताव को स्वीकृत न करे, और व्यवस्थापिका सभा उसे तीन बार निरन्तर पास करती जावे, तो राजा की स्वीकृत के बिना भी वह लागू हो जाता था। इस प्रकार राजा किसी प्रस्ताव का निषेध नहीं कर सकता था, वह केवल स्थगित ही कर सकता था। पर राष्ट्रीय विषयों का सचालन उसी के हाथ में रखा गया था, सेना का प्रधान अध्यक्ष भी उसे ही बनाया गया था। पर वह न सन्धि के अधिकार रखता था और न विग्रह के। वह जनता की इच्छा का दास था, पर जनता की इस इच्छा के निर्माण मे उसका कोई हाथ न था। जनता राजा की इच्छा की सर्वथा उपेक्षा कर सकती थी, पर राजा जनता की इच्छा की किसी भी दशा मे उपेक्षा नहीं कर सकता था।

' कानून निर्माण का कार्य एक व्यवस्थापिका सभा को दिया गया था। इस सभा के ७४५ सदस्य होते थे। इस सभा का निर्वाचन दो साल के लिये होता था। प्रत्येक पुरुष (स्त्री नहीं) नागरिक, जो अपनी तीन दिन की आमदनी के बराबर धनराशि राजा को कर के रूप में दे, इस सभा के निर्वाचन के लिये वोट देने का अधिकार रखता

था। इस व्यवस्थापिका सभा की शक्ति बहुत विस्तृत थी। कानून निर्माण करना इस सभा का ही कार्य था।

मध्य काल में सामन्त पद्धति के समय में फ्रांस जिन विभागों मे विभक्त था—जिनका आधार मध्य कालीन सामन्तों के छोटे बड़े और अस्वाभाविक राज्य थे—उन्हें अब उड़ा दिया गया था और उनके स्थान पर कुल ८३ प्रान्त बनाये गये थे। इन प्रान्तों को जिलों, ताल्लुकों और परगनों में बांटा गया था। इन विविध विभागों मे स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था की गई थी और राज कर्मचारियों की नियुक्ति निर्वाचन द्वारा करने का तरीका जारी किया गया था।

चर्च में परिवर्तन—राष्ट्रीय महासभा ने चर्च के सम्बन्ध मे भी बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। इनसे चर्च के संगठन और स्वरूप में बड़ी भारी क्रान्ति होगई। चर्च के पुराने दशांश कर को तो ४ अगस्त के दिन ही उड़ा दिया गया था और आधारभूत अधिकारों की घोषणा करते हुए धार्मिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को भी स्वीकृत कर लिया गया था। अब राष्ट्रीय महासभा ने और आगे कदम बढाया। २ नवम्बर सन् १७८९ के अधिवेशन मे चर्च की सारी जायदाद जब्त करली गई। जब्त की हुई चर्च की जागीरों को बेच दिया गया और उसकी कीमत को राष्ट्रीय आय मे शामिल कर लिया गया। इससे पहले फ्रांस मे ११७ मठ थे, अब ८३ मठ कर दिये गये। प्रत्येक प्रान्त मे एक मठ रखा गया। इन मठों के पादरियों के बारे में यह तय किया गया, कि राजकर्मचारियों की तरह उनका भी निर्वाचन किया जावे। इस निर्वाचन में न केवल रोमन कैथोलिक लोग ही भाग लें, पर प्रोटेस्टेण्ट, ज्यू, और नास्तिकों तक को इसके निर्वाचन मे वोट देने का अधिकार दिया गया। अपने पद पर नियत किये जाने से पूर्व प्रत्येक पादरी से यह शपथ ली जाती थी, कि वह राष्ट्रीय शासन विधान का भक्त बना रहेगा। नाम मात्र को रोमन पोप का चर्च पर स्वामित्व स्वीकृत किया गया, पर वस्तुतः चर्च राज्य के आधीन हो

गया। यह सर्वथा स्वभाविक ही था, कि पोप, बिशप तथा अन्य पुरोहित श्रेणी के लोग इन सुधारों का विरोध करें। जिस समय राष्ट्रीय शासन विधान के प्रति भक्ति की शपथ लेने का प्रश्न उत्पन्न हुआ, तो दो तिहाई पादरियों ने यह शपथ लेने से इन्कार कर दिया। जिन लोगों ने शपथ लेने से इन्कार किया, उन्हें सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था का घातक समझा गया। उन्हें अपने पदों से पृथक् कर दिया गया। परिणाम यह हुआ, कि उच्च पुरोहित श्रेणी के अधिकाश लोग असन्तुष्ट कुलीन जमीदारों के साथ मिल गये। ये लोग भी क्रान्ति को कुचलने के लिये भरसक कोशिश करने लगे। केवल यही नहीं, सर्वसाधारण जनता, जो कि क्रान्ति के अन्य सब कार्यों को सहानुभूति की दृष्टि से देख रही थी, चर्च के प्रति इस व्यवहार से बहुत असन्तुष्ट होगई। सर्वसाधारण जनता मे धर्म, चर्च तथा पुरोहित श्रेणी के प्रति श्रद्धा की भावना बहुत गहरी रही है। उसके प्रति इस व्यवहार को इन सर्वसाधारण लोगों ने सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखा।

पत्रमुद्रा—राज्य के पास धन की जो कमी थी उसे पूर्ण करने के लिये राष्ट्रीय महासभा ने पत्रमुद्रा (Assignat) प्रकाशित करने का निश्चय किया। महासभा को यह विश्वास था, कि चर्च की जागीरों से राज्य को जो आमदनी होगी, वह इस पत्रमुद्रा के लिये अमानत का काम करेगी और इसके मूल्य को गिरने न देगी। इसी आशा से बहुत बड़े परिमाण में पत्रमुद्रायें प्रकाशित की गई, जो कि 'एसिञा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर शीघ्र ही इनका मूल्य गिरना शुरू होगया। राजक्रान्ति के आगामी वर्षों मे इनकी कोई भी कीमत नहीं रह गई थी।

सातवां अध्याय

राजसत्ता का अन्त

क्रान्ति की विरोधी शक्तिया—राष्ट्रीय महासभा अपना कार्य समाप्त कर रही थी। फ्रास के स्वरूप में बड़ा भारी परिवर्तन आ गया था। सामन्त पद्धति का अन्त हो गया था, श्रेणि भेद नष्ट कर दिया गया था, चर्च के विशेषाधिकार उड़ा दिये गये थे। राजा की स्वेच्छाचारिता को हटा कर उसकी वैध सत्ता स्थापित कर दी गई थी। फ्रास की राज्य-क्रान्ति अपना कार्य कर चुकी थी। पर पुराने जमाने की शक्तिया इतनी आसानी से दब जाने वाली नही थीं। वे क्रान्ति को कुचलने के लिये चुपचाप कोशिश मे लगी हुई थीं। जो कुलीन लोग क्रान्ति के प्रारम्भ होते ही फ्रास छोड़ कर विदेशों में भाग गये थे, वे शान्त नहीं बैठे थे। वहा जाकर वहा के एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजाओं तथा कुलीनों की सहायता प्राप्त करना तथा अपनी शक्ति को सगठित करना उनका एक-मात्र लक्ष्य था। उस जमाने में राष्ट्रीयता का तत्व विकसित नहीं हुआ था। फ्रास का कुलीन जमींदार अपने देश के किसान व मजदूर से कोई भी समता व एकता अनुभव नहीं करता था। जर्मनी के कुलीन जमींदार के साथ उसे अधिक सादृश्य नजर आता था। फ्रास के ये कुलीन लोग विदेशी राजाओं के दरबार मे आश्रय पाकर बदला लेने की तैयारी में लगे हुए थे। इनकी आकाक्षा थी, कि फ्रास की नई सरकार के विरुद्ध युद्ध

उद्घोषित कर दिया जावे। इस कार्य में यूरोप के अन्य राजाओं तथा कुलीनों की सहायता का इन्हें पूरा भरोसा था। केवल फ्रास के बाहर ही नहीं, अपितु अन्दर भी ये कुलीन लोग अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये कोशिश मे लगे हुए थे। राजा को बहुत से कुलीन लोग हर समय घेरे रहते थे। राजा पूरी तरह उनके प्रभाव में था। ये लोग वैध राजसत्ता को सहन करना तो दूर रहा, उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इनकी समझ में ही नहीं आता था, कि राजा भी कानून के अधीन रह सकता है। राजा की यह नवीन कल्पना इनके विचार से कोसो दूर थी। ये लोग राजा को निरन्तर उकसाते रहते थे। फ्रास से बाहर भागे हुए कुलीन लोग भी उसे हमेशा सन्देश भेजते रहते थे। एक पूरा षडयन्त्र तैयार हो रहा था। इन लोगों ने साजिश की, कि राजा अपने परिवार के साथ चुपचाप पेरिस से भाग निकले। फ्रास की उत्तर पूर्वीय सीमा पर एक सेना तैयार कर दी गई थी, जो कि राजा के वहा पहुँचते ही उसका स्वागत करे। इन कुलीनों का यह खयाल था कि यदि राजा किसी तरह क्रान्तिकारियों के प्रभाव तथा कब्जे से निकल कर बाहर चला आवे, तो यूरोप के अन्य राजाओं से सहायता प्राप्त करना और भी अधिक सुगम हो जायेगा। विशेपतया, १६ वे लुई की रानी मेरी आतोआत के भाई लियोपोल्ड द्वितीय से,जो कि इस समय जर्मन सम्राट् था, उन्हें बहुत आशाये थीं। निश्चय यह किया गया था कि राजा के फ्रास से चले आने पर एक शक्ति शाली सेना फ्रास पर आक्रमण करेगी और क्रान्ति को कुचल कर फिर यथापूर्व एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता की स्थापना कर देगी।

राजा का भागने का प्रयत्न—साजिश पूर्णरूप से तैयार हो गई। १७९१ का साल था और जून का महीना। एक रात राजा, रानी,राजकुमार और उनके दो एक साथी चुपचाप टुलरी के राजमहल से बाहर निकले। ग्यारह बज चुके थे। पेरिस की गलियों में शान्ति थी। सब तरफ अंधियारा

छाया हुआ था। अपनी जिन्दगी मे शायद पहली बार राजा और रानी चुपचाप पेरिस की गलियों मे पैदल चलने लगे। उनके हृदय धड़क रहे थे। अपने ही राज्य मे वे चोरों और खन्दग लगाने वालों की तरह डरते डरते चले जा रहे थे। एक अन्धेरे मोड़ पर एक घोड़ागाड़ी तैयार खडी थी। बिना कुछ बोले वे उस पर बैठ गये। गाड़ी चल पडी। गाड़ी मे बैठे हुए राजा और रानी के दिल मे क्या खयाल आ रहे थे? बस कुछ दूर और। उस पहाड़ी के पार—सब ठीक है। वहा पहुँचने की देर है, सैनिक सलाम करेगे। अफसर पैर चूमेगे। राजभक्ति कितनी मधुर चीज है, कम से कम उस आदमी के लिये जो राजा हो, या अगर राजा न हो, तो कम से कम दरबारी तो हो। कुछ देर वहा खूब धूमधाम होगी। बहुत दिनों बाद पुराने नजारे देखने को मिलेंगे। और उसके बाद? इस राजभक्त फौज के साथ पेरिस की तरफ प्रस्थान होगा। थोड़ी बहुत गोलाबारी हो जायगी। कुछ लोग फासी पर चढ़ा दिये जावेगे, कुछ गोली से उड़ा दिये जावेगे। बस, सब शान्त हो जायगा। फिर कैलोन प्रधानमन्त्री बनेगा, रुपया जुटाने में उसकी अकल खूब चलती है। बाकी कुलीन लोग भी वापिस चले आवेंगे। वर्साय की वे बहारें, वे नाचरङ्ग—बस दो चार दिन की ही तो बात है।

सुबह हो चुकी थी। राजा और रानी उसी प्रकार सुमधुर कल्पनायें करते हुए चले जा रहे थे, कि वारेन नाम के नगर मे पुल पर खड़े हुए कुछ सन्तरियों ने अकस्मात् पूछ लिया—"आपके पासपोर्ट?" सुखद कल्पनाओ का सारा महल मिट्टी मे मिल गया। राजा पकड़ लिया गया। उसे दलबल सहित पेरिस वापिस ले आया गया। लोगों ने चुपचाप बिना एक भी शब्द कहे, राजा और रानी को इस प्रकार वापिस आते हुए देखा। टुइलरी के महल पर कड़ा पहरा बिठा दिया गया। राजा पहले तो केवल नजरबन्द था, अब बिलकुल कैद ही हो गया।

रिपब्लिक के पक्षपातियों का अभ्युदय—राज्य क्रान्ति के इतिहास मे इस घटना का बहुत महत्व है। इसने क्रान्ति के रुख को बिलकुल बदल दिया। अब तक फ्रास के क्रान्तिकारी राजसत्ता का अन्त नहीं करना चाहते थे। कोई भी महत्वपूर्ण दल इस प्रकार का नही था, जो राजा को हटाकर रिपब्लिक की स्थापना करने को तैयार हो। पर इस घटना के बाद से लोगों की प्रवृत्ति बदलनी शुरू हुई। अनेक लोग साफ साफ यह कहने लगे कि राजा की क्या आवश्यकता है ? रिपब्लिक क्यों न कायम की जाय ? एक ऐसा दल उत्पन्न हो गया, जो कि राजसत्ता का विरोधी और रिपब्लिक का पक्षपाती था। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि अब भी इस दल की शक्ति बहुत कम थी। राष्ट्रीय महासभा ने राजा के भागने की बात को दबाने की कोशिश की। उसकी तरफ से यह प्रकाशित कर दिया गया कि राजा भागा नहीं था। पर कुछ लोग राजा को पेरिस से बाहर ले गये थे। राजा के भागने की घटना के कुछ ही दिन बाद जुलाई के महीने में ही पेरिस मे एक सभा की जा रही थी, जिसमे कि राजा को च्युत कर देने के लिये प्रार्थना पत्र पेश कर देने का विषय उपस्थित था। इस सभा को बर्खास्त होने का हुक्म दिया गया। गोली चलाई गई और बहुत से आदमी गोली खाकर गिर गये। अभी तक भी फ्रास की जनता मे रिपब्लिक का भाव प्रबल नहीं हुआ था। लोग राजसत्ता को ही कायम रखना चाहते थे। पर इसमें भी सन्देह नहीं, कि ऐसा दल निरन्तर शक्ति प्राप्त करता जा रहा था, जो राजसत्ता को नष्ट कर देने के पक्ष मे था। इस दल के प्रबल होने का मुख्य श्रेय राजा, उसके दरबारी तथा बाहर भागे हुए कुलीन लोगों के कारनामों को ही प्राप्त है। इनके कृत्यों के कारण ही जनता की सहानुभूति रिपब्लिक के पक्षपातियों की तरफ बढ़ती गई। राजसत्ता को कायम रखने वाला पक्ष निर्बल होता गया।

रिपब्लिकन दल के नेता—इस नये रिपब्लिकन दल के नेता कौन थे ? राजसत्ता के विरोधी दल का सर्व प्रधान नेता डा० मरट था। डा० मरट बहुत ही विद्वान् व्यक्ति था। इङ्गलिश, स्पेनिश, जर्मन और इटालियन भाषाओं का उसे अच्छा ज्ञान था। उसने अनेक वर्ष इङ्गलैंड मे व्यतीत किये थे। इङ्गलैंड के एक शिक्षणालय ने उसके सम्मान के लिये उसे एम० डी० की उपाधि प्रधान की थी। उसने वैज्ञानिक विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे। विशेषतया, चिकित्सा शास्त्र का वह बड़ा पण्डित था। बैन्जमिन फ्रैंकलिन तथा गैटे जैसे विद्वान् उसके भौतिकशास्त्र विषयक ग्रन्थ को बड़े शौक से पढते थे। डा० मरट ने अपने साहित्यिक और वैज्ञानिक जीवन का परित्याग कर राजनीतिक क्षेत्र मे प्रवेश किया था। इन दिनों मे वह "लोक-मित्र" नाम के एक समाचार पत्र का सञ्चालन कर रहा था। इस समाचार-पत्र द्वारा वह कुलीनों तथा उच्च मध्य श्रेणी के लोगों पर भयङ्कर रूप से आक्षेप कर रहा था और साधारण जनता का शासन स्थापित करने के लिये जोर दे रहा था।

रिपब्लिक के दल का दूसरा नेता केमिय देसमोला था। यह भी एक समाचारपत्र का सम्पादक था। इसी देसमोला ने पेरिस की जनता को विदेशी सैनिकों से अपनी रक्षा करने के लिये तैयार होने को भड़काया था, जिसके कारण लोग हथियारों की खोज मे निकल पड़े थे और वस्तीय्य के ध्वंस की घटना हुई थी। एक अन्य नेता डेन्टन था, जो अपने जोशीले व्याख्यानों के कारण प्रसिद्ध था। यह वकालत का पेशा करता था और पेरिस की जनता का बहुत प्रिय था। ये तथा अन्य बहुत से नेता इस समय राजसत्ता के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। इनकी राय में राजसत्ता इतनी विकृत हो चुकी थी, कि उसके साथ किसी भी प्रकार का समझौता सम्भव न था। ये पूर्ण लोकतन्त्र रिपब्लिक के पक्षपाती थे।

वैध राजसत्ता का पक्षपाती दल और उसके नेता—वैध राजसत्ता के पक्षपातियों के प्रधान नेता लफायत तथा मिराबो थे। लफायत स्वयं कुलीन

श्रेणी का था, पर उसमें स्वतन्त्रता की भावनाये विद्यमान थीं। अमेरिकन स्वाधीनता के युद्ध में वह स्वयसेवक के रूप मे सम्मिलित हुआ था। फ्रास की राज्यक्रान्ति मे उसका शुरू से ही प्रधान भाग था। राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना का सगठन उसी के द्वारा हुआ था। मिराबो भी कुलीन श्रेणी का था। राज्यक्रान्ति का वास्तविक नेता वही था। एस्टेट्स जनरल के तीनों विभागों की बैठक एक साथ होनी चाहिये और प्रत्येक विभाग का एक वोट न होकर सदस्यों के बहुमत से निर्णय किया जाना चाहिये—इस आन्दोलन का प्रधान नेता मिराबो ही था। जिस समय राजा ने तीनों विभागों को पृथक् पृथक् बैठक करने का आदेश दिया, तब मिराबो ही था जिसने कि निर्भय होकर इसका विरोध किया था। मिराबो बहुत ऊँचे किसम का राजनीतिज्ञ था। वह बहुत दूरदर्शी तथा साफ दिमाग का आदमी था। राष्ट्रीय महासभा का सारा कार्य उसी के नेतृत्व मे हुआ था। फ्रास के लिये जो नया शासनविधान बना था, वह बहुत अशों मे उसी की कृति थी। राजा तथा रानी पर भी उसका बहुत प्रभाव था। वे उसे बहुत मानते थे। खेद यही है, कि मिराबो देर तक न जी सका। राजा के फ्रास से भागने के लिये प्रयत्न करने से पूर्व ही २ अप्रैल १७९१ के दिन उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु वैध राजसत्ता के पक्षपातियों के लिये एक भारी क्षति थी। यदि वह जीवित रहता, तो शायद राजा को अनेक भयकर भूलों से बचाये रखने में समर्थ होता। पर उसकी मृत्यु ने राजसत्ता के पक्ष को बहुत कमजोर कर दिया।

व्यवस्थापिका सभा—राष्ट्रीय महासभा ने ३० सितम्बर १७९१ को अपना कार्य समाप्त कर दिया। इसने कुल मिलाकर २५०० कानून पास किये। इसमे सन्देह नही कि राष्ट्रीय महासभा ने बड़ा महत्व पूर्ण कार्य किया था। इसके नवीन विधानो ने फ्रास के स्वरूप को सर्वथा परिवर्तित कर दिया था। फ्रास का नवीन शासन विधान तैयार हो चुका था।

अब उसके अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ। नये शासन विधान में मुख्य शक्ति व्यवस्थापिका सभा को दी गई थी। इसका निर्वाचन हो गया था और अब इसकी प्रथम बैठक १ अगस्त १७९१ के दिन हुई। व्यवस्थापिका सभा के कुल सदस्यों की सख्या ७४५ थी। इनमें प्रधानतया दो दल थे। (१)वैध राजसत्तावादी—इसकी सख्या बहुत अधिक थी। बहुमत इन्हीं का था। इनका विचार था कि राज्यक्रान्ति का कार्य अब समाप्त हो चुका है। राजा की एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सत्ता का अन्त हो गया है, और उसके स्थान पर जनता का अधिकार स्थापित हो गया है। यह पर्याप्त है। अब फ्रास का भला इसी मे है, कि १७९१ के शासन विधान के अनुसार कार्य हो और नवीन युग के सुख का उपभोग किया जाय। (२) रिपब्लिक के पक्षपाती—इनकी सख्या २४० थी। इस प्रकार व्यवस्थापिका सभा में ये अल्प सख्या मे थे। इनका खयाल था कि राज्यक्रान्ति अभी पूर्ण नही हुई, अभी कुछ और आगे बढ़ने की जरूरत है। राजसत्ता का सर्वथा अन्त होना चाहिये। राजसत्ता को उड़ा कर रिपब्लिक की स्थापना इनका प्रधान लक्ष्य था।

जेकोबिन क्लब—यह रिपब्लिकन दल दो भागों मे विभक्त था, जेकोबिन और जिरोंदिस्ट। इन दोनों विभागों मे क्या भेद था और इन के मुख्य विचार क्या थे—इस बात पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है। जिस समय राजा को वर्साय से पेरिस लाया गया, तब राष्ट्रीय-महासभा भी पेरिस ही चली आई थी। इसके अधिवेशन पेरिस मे ही होने लगे थे। इस राष्ट्रीय महासभा के कुछ सदस्यों ने—जिनके विचार आपस मे मिलते जुलते थे, महासभा के मकान के नजदीक ही एक बड़ा मकान किराये पर लिया हुआ था। ये सदस्य इस मकान मे अपनी सभा किया करते थे और आपस मे विचार के अनन्तर यह निश्चय किया करते थे, कि राष्ट्रीय महासभा मे उन्हें किस नीति का अनुसरण करना चाहिये। शुरू शुरू में इन सदस्यों की सख्या एक सौ थी, पर धीरे धीरे

और सदस्य इस सभा में शामिल होने लगे और इसे बहुत महत्त्व प्राप्त हो गया। किसी वक्त में यह मकान जेकाब का गिरजा था, अतः इस मकान में इन सदस्यों के क्लब को जेकोबिन क्लब कहने लगे। धीरे धीरे यह क्लब अधिक अधिक महत्त्व पकड़ता गया। पहले इसकी बैठकें गुप्त होती थीं, जनता शामिल नहीं हो सकती थी। पर अक्टूबर सन् १७९१ में जनता को भी यह अवसर दिया गया, कि वह क्लब की बहस में शामिल हो सके। परिणाम यह हुआ कि लोगों की दिलचस्पी इस क्लब में बहुत बढ गई। यह क्लब परिस के राजनीतिज्ञों का अखाडा बन गई। इसमें खूब गरमागरम बहसे होने लगीं। जो लोग सब से आगे बढ़े होते थे, जो कोई नई बात कहते थे, जो कोई नया परिवर्तन प्रस्तावित करते थे, वे इस क्लब मे ऊंचा स्थान प्राप्त करते थे। डा० मरट, डैन्टन और रोबसपियर, देममोला इसके प्रमुख सदस्य थे। जब अभी वैध राजसत्ता के विरुद्ध भावना उत्पन्न नहीं हुई थी, तब भी इस क्लब में रिपब्लिक की गूज सुनाई दे जाती थी। पर जब कि वैध राजसत्ता का पक्ष कमजोर पड़ रहा था, तब तो यह क्लब बहुत ही आगे बढ़ गई थी। पुराने जमाने का सर्वनाश कर संसार का नये सिरे से निर्माण करना इस का आदर्श बन गया था। पेरिस के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी इस क्लब की शाखायें खुली हुई थीं। जून १७९१ मे इसकी शाखाओं की सख्या ४०६ तक पहुँच गई थी। व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन में जेकोबिन क्लब तथा उसकी शाखाओं ने बड़ा हिस्सा लिया। इनके प्रयत्नों का ही परिणाम था, कि २०० के लगभग प्रतिनिधि इस दल के निर्वाचित होगए।

जिरोंदिस्ट दल—जिरोंद एक प्रदेश का नाम है, जो कि फ्रास के दक्षिण पूर्वीय भाग मे स्थित है। इसके प्रधान नगर का नाम है, बोर्डियो। यहा से जो प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभा में निर्वाचित हुए थे, वे भी राजसत्ता का अन्त कर रिपब्लिक की स्थापना करना चाहते थे। इनके प्रधान नेता का नाम वर्जनियो था। यह एक होशियार वकील

था और इसके बहुत से साथी भी वकालत का पेशा करने वाले थे। ये लोग भी पेरिस मे एक साथ मिलते रहते थे और अपनी क्लब रखते थे। जिरोंद के अतिरिक्त फ्रास के देहातों के अनेक अन्य सदस्य भी इस क्लब में सम्मिलित हुआ करते थे। रिपब्लिक के पक्षपाती होते हुए भी ये लोग बहुत गरम नहीं थे। ये जेकोबिन दल की जल्दबाजी तथा गरम मनोवृत्ति को नापसन्द करते थे और राजसत्ता को नष्ट करने के तरीकों के सम्बन्ध मे मतभेद रखते थे। जेकोबिन क्लब पेरिस की मनोवृत्ति का प्रतिनिधि था और जिरोंदिस्ट दल देहातों का ।

व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख विद्यमान समस्यायें—व्यवस्थापिका सभा ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसका कार्य सुगम न था। फ्रास के विशद आकाश मे विपत्ति के डरावने बादल मंडरा रहे थे। भागे हुए कुलीन लोग अपना कार्य जोर शोर से कर रहे थे। फ्रास के अन्दर भी समस्याये कम न थीं। पादरी लोगों की बहुसंख्या चर्च की नई व्यवस्था को मानने के लिये तैयार नहीं थी, वे लोग अपने सम्पूर्ण प्रभाव को—और उस समय में फ्रासीसी लोगों पर धर्म का आतङ्क कम नहीं था, क्रान्ति के विरुद्ध प्रयुक्त कर रहे थे। राजा और उसके दरबारी चुपचाप गुप्त तरीके से विदेशी राजाओं से पत्र-व्यवहार कर रहे थे। इस विकट परिस्थिति का व्यवस्थापिका सभा ने सामना करना था। फ्रास में राज्य क्रान्ति का समाचार सुनते ही यूरोप के अन्य राजाओं को खतरा लग गया था। उन्हें भय था कि कहीं उनकी प्रजा भी फ्रास का अनुसरण न करे। इसलिये वे अपना भला इसी मे समझते थे, कि फ्रास में क्रान्ति को कुचल दिया जावे। क्रान्ति भी छूत का रोग है। इसे फैलते हुए देर नहीं लगती। जब जर्मन सम्राट् लिओपोल्ड द्वितीय ने सुना कि फ्रास का राजा १६ वा लुई अपनी रानी सहित वारेन के नगर मे पकड़ लिया गया, तो उसके क्रोध की कोई सीमा न रही। उसने कहा कि सम्पूर्ण राजाओं का सम्मान और सारी सरकारों की सुरक्षितता

खतरे मे पड़ गई है । उसने यूरोप के अन्य राजाओं से अपील की, कि इस क्रांति की भावना को समूल नष्ट कर देना और फ्रांस के अत्यन्त पवित्र धर्मप्राण राजा और उसके परिवार को क्रान्तिकारियों के चंगुल से बचाकर फिर अपनी पूर्व स्थिति मे स्थापित कर देना सब राजाओ का परम कर्तव्य है । इसी अपील का परिणाम हुआ, कि २७ अगस्त के दिन पिलनिट्ष की प्रसिद्ध उद्घोषणा प्रकाशित की गई । यह उद्घोषणा जर्मन सम्राट् लिओपोल्ड द्वितीय तथा प्रशिया के राजा द्वारा प्रकाशित की गई थी ।

पिलनिट्ष की उद्घोषणा—इसमें कहा गया था, कि फ्रांस के राजा के बन्धु-बान्धवों (भागे हुए कुलीन लोगों) की इच्छानुसार वे इस बात के लिये तैयार हैं, कि यूरोप के अन्य राजाओं के साथ मिलकर १६ वें लुई को अपनी पूर्व स्थिति मे स्थापित किया जाय । फ्रांस मे एक ऐसा शासन कायम होना चाहिये, जो कि राजाओं के पवित्र अधिकारों के अनुसार हो । उन्होंने केवल उद्घोषणा ही नहीं की, अपितु उसके अनुसार तैयारी भी प्रारम्भ करदी । सेनायें संगठित की जाने लगी और क्रान्ति की विरोधी सेनायें फ्रांस की तरफ बढने लगीं ।

इस उद्घोषणा का परिणाम—पिलनिट्ष की इस उद्घोषणा से फ्रेञ्च लोगो मे बड़ी सनसनी फैल गई । वे लोग इस बात को सहन न कर सके, कि फ्रांस के आन्तरिक मामलो मे विदेशी लोग इस तरह हस्तक्षेप करें । यूरोप के दो शक्तिशाली राजा फ्रांस मे क्रान्ति की भावनाओं को कुचलने तथा फिर से पुराने जमाने को स्थापित करने के लिये हमला करने को तैयार हैं, तथा अन्य राजाओ से इसके लिये अपील कर रहे हैं, यह बात जनता से नहीं सही गई । फ्रांस के भागे हुए कुलीन लोग अपनी साजिशों में इस प्रकार सफल हो रहे हैं, यह जानकर जनता के रोष की कोई सीमा न रही । इस बीच मे १६ वे लुई के भाई आर्तोआ के काउण्ट ने, जो कि स्वयं फ्रांस से भागा हुआ था, उद्घोषित

किया, कि क्योंकि फ्रास का असली राजा १६ वा लुई जनता द्वारा कैद कर लिया गया है, अत. वह स्थानापन्न राजा के तौर पर कार्य करेगा। क्रान्ति के विरुद्ध प्रवृत्तिया वस्तुतः चाहे बहुत बलवती न हों, पर इन समाचारो से लोग सावधान हो गये। समाचार पत्रों मे जोश से भरे हुए तथा भड़कीले लेख निकलने लगे। १७८९ के बाद फ्रास मे बाकायदा अखबार निकलने लगे थे। अनेक क्रान्तिकारी अखबार इन समाचारों का पूरा फायदा उठाकर लोगों को राजसत्ता के विरुद्ध भड़का रहे थे। जेकोबिन क्लब मे इसकी बडी चर्चा रहती थी। महीनों तक यही हालत रही। जनता मे भयङ्कर उत्तेजना फैली हुई थी। लोग स्वतन्त्रता की लाल टोपिया पहनने मे शान समझते थे। मजदूरो के से लम्बे पाजामे पहनने का लोगों को शौक हो गया था, समझा जाता था कि यह स्वतन्त्रता और भ्रातृभाव की निशानी है।

आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की उद्घोषणा—यह परिस्थिति थी, जब कि २० एप्रिल १७९२ के दिन व्यवस्थापिका सभा मे आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर देने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। सदस्यों मे युद्ध के लिये बड़ा उत्साह था। कुल सात आदमी थे, जिन्होंने युद्ध के खिलाफ वोट दिया। जिन लोगों ने युद्ध के खिलाफ आवाज उठाई थी, उनमे रोबस्पियर प्रमुख था। रोबस्पियर कट्टर रिपब्लिकन था, वह जेकोबिन क्लब का प्रमुख सदस्य था, पर इस युद्ध के विषय मे उसका खयाल था, कि इससे गरीबों को सरासर नुकसान होगा। इससे फायदा पहुँचेगा, तो केवल अमीर लोगों को। जो लोग शान्ति के पक्ष मे थे, उन्हें कहा गया कि यह युद्ध आत्मरक्षा के लिये है, विजय करने के लिये नहीं। यह युद्ध अत्याचारी एकतन्त्र राजाओं के खिलाफ है, जनता के खिलाफ नहीं। यह युद्ध एक स्वतन्त्र राष्ट्र के अधिकारो की रक्षा के लिये है। निस्सन्देह यह युद्ध फ्रास के नये युग और यूरोप के पुराने जमाने के बीच में था। इसमे स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की प्रवृत्तियां

स्वेच्छाचारी शासन, विशेषाधिकार और अन्याययुक्त विषमता के साथ सघर्ष कर रही थीं। इसी युद्ध का परिणाम हुआ, कि फ्रास के क्रान्तिकारी विचार यूरोप के अन्य देशों मे भी फैल गये। क्रान्ति केवल फ्रास तक ही सीमित नहीं रही, वह यूरोप भर मे फैल गई।

राजा व्यवस्थापिका सभा के इस निश्चय को स्वीकृत करने के लिये तैयार न था, पर उसे बाधित होकर इस पर हस्ताक्षर करने पड़े। परन्तु फ्रास की सेना युद्ध के लिये सुसज्जित न थी। सेना के सब अफसर पहले कुलीन लोग हुआ करते थे, उन्हें ही सैन्य सञ्चालन का अनुभव था। पर प्रायः सभी कुलीन सैनिक अफसर इस समय फ्रास छोड़ कर विदेशों मे भाग चुके थे। राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना आन्तरिक अव्यवस्था को दबाने मे तो काम आ सकती थी, पर विदेशों की अनुभवी तथा सुसज्जित सेनाओं का मुकाबिला करने का सामर्थ्य उसमें नहीं था। यही कारण है, कि जब आस्ट्रिया की सेना का मुकाबिला करने के लिये पहले पहल फ्रेंच सेना भेजी गई, तब वह सामना नही कर सकी।

व्यवस्थापिका सभा के प्रस्ताव और राजा द्वारा उन्हें वीटो किया जाना—जिस समय मे फ्रास की सेनाये विदेशी शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये सीमा की तरफ प्रस्थान कर रही थीं, उसी समय व्यवस्थापिका सभा देश मे व्यवस्था कायम रखने तथा युद्ध के लिये साधन जुटाने की फिकर मे लगी थी, इसीलिये उसने यह कानून पास किया, कि जो पादरी लोग चर्च की नई व्यवस्था मानने को तैयार न हों, वे एक महीने के अन्दर अन्दर फ्रास छोड़ कर चले जावें। जब यह कानून राजा के पास स्वीकृति के लिये भेजा गया, तो उसने इस पर अपनी सहमति देने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार व्यवस्थापिका सभा मे एक प्रस्ताव पास किया गया, कि राजधानी की रक्षा करने के लिये २० हजार स्वयसेवकों की एक छावनी पेरिस के समीप ही डाली जावे। राजा ने इस प्रस्ताव को भी वीटो कर दिया।

राज प्रासाद पर आक्रमण—राजा की इस कार्रवाई का यह परिणाम हुआ, कि उसके विरुद्ध भावनायें और भी अधिक प्रबल हो गईं। लोगों मे राजा और रानी की बहुत बदनामी होने लगी। रानी को घृणा के साथ 'आस्ट्रियन औरत' और 'श्रीमती वीटो' कहा जाने लगा। लोगों का खयाल था, कि रानी फ्रास के दुश्मनों से मिली हुई है और उसने आस्ट्रिया के पास फ्रास पर आक्रमण करने की एक योजना तैयार करके भेजी है। इन अफवाहों को सुन कर जनता के जोश की कोई सीमा नही रही। लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई, जुलूस तैयार हो गया। पेरिस की गलियों मे चक्कर लगा कर इस जुलूस ने टुईलरी के राज प्रासाद की तरफ प्रस्थान किया। अनेक 'देशभक्त' राज प्रसाद मे घुस गये। ईंट और पत्थर फेंके जाने लगे। भीड़ काबू से बाहर हो गई। ऐसे समय मे राजा ने बड़ी बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की। उसने क्रान्तिकारियों की लाल टोपी को सिर पर पहन तथा छोटे से तिरगे झण्डे को छाती पर लगाकर एक झरोखे से जनता को दर्शन दिये। राजा को इस प्रकार क्रान्ति के चिह्नों से युक्त देखकर लोगो का जोश कुछ ठण्डा पड़ गया। राजप्रासाद के इस आक्रमण का कोई विशेष असर नहीं हुआ।

ब्रुन्स्विक के ड्यूक की उद्घोषणा—पर जिस समय इस घटना का समाचार यूरोप के अन्य राजाओं ने सुना, तो उन्हें इस बात मे जरा भी सन्देह नहीं रहा, कि फ्रास के क्रान्तिकारी अराजकता चाहते हैं। प्रशिया के राजा फ्रेडरिक ने उद्घोषित किया, कि वह भी फ्रास के विरुद्ध लड़ाई में आष्ट्रिया का साथ देगा। प्रशिया की सधी हुई और शक्तिशाली सेना ने ब्रुन्स्विक के ड्यूक के सेनापतित्व मे फ्रास की तरफ प्रस्थान किया। फ्रास की सीमा पर पहुँच कर ब्रुन्स्विक के ड्यूक ने एक उद्घोषणा प्रकाशित की। इसमे कहा गया कि आस्ट्रिया और प्रशिया फ्रास पर इस लिये हमला कर रहे हैं, ताकि वहा पर अराजकता का अन्त कर फिर से राजा के न्याय्य अधिकारों की स्थापना की जावे। फ्रास के जो कोई

आदमी आस्ट्रिया और प्रशिया की सेनाओं का सामना करने का प्रयत्न करेंगे, उन्हें युद्ध के कठोरतम नियमों द्वारा भयंकर से भयंकर सजा दी जावेगी और उनके घरों को अग्नि से भस्म कर दिया जावेगा। यदि पेरिस के लोगों ने राजा व रानी का जरा भी अपमान किया और फिर टुइलरी के राजप्रासाद पर हमला किया, तो सारे पेरिस नगर को पूर्णतया तबाह कर दिया जावेगा।

इस उद्घोषणा का परिणाम—इस उद्घोषणा से लोगों में उत्तेजना और भी अधिक बढ़ गई। यह विश्वास बढ़ गया कि राजा और रानी फ्रांस के दुश्मनों से हार्दिक सहानुभूति रखते हैं। रिपब्लिक के पक्षपातियों ने राजसत्ता का अन्त करने का निश्चय कर लिया। पेरिस की एक भीड़ ने फिर टुइलरी के राजप्रासाद पर हमला किया। यह हमला १० अगस्त १७९२ को हुआ था। राजा, रानी और राजकुमार बड़ी कठिनता से जान बचाकर निकल सके। उन्होंने व्यवस्थापिका सभा के भवन में आश्रय लिया। संवाददाताओं की गेलरी में उन्हें स्थान दिया गया। आज राजा को अपनी रक्षा के लिये व्यवस्थापिका सभा का आश्रय लेने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न था।

राजा की पदच्युति—अगले ही दिन व्यवस्थापिका सभा में प्रस्ताव पेश किया गया कि राजा को राज्यच्युत कर फ्रांस में रिपब्लिक की स्थापना की जावे। यह प्रस्ताव पास हो गया। १६ वां लुई अब फ्रांस का राजा नहीं रहा। परन्तु अब देश का शासन किस प्रकार हो? अब तक जो शासन विधान विद्यमान था, वह वैध राजसत्ता के सिद्धान्त पर आश्रित था। अतः निश्चय किया कि नया शासन विधान तैयार करने के लिये एक कान्वेन्शन किया जावे। कान्वेन्शन के लिये व्यवस्था कर व्यवस्थापिका सभा की समाप्ति कर दी गई। देश का शासन करने के लिये सामयिक रूप से जिस सरकार का निर्माण किया गया, उसका मुखिया डेन्टन बना।

आठवां अध्याय

क्रान्ति के विरुद्ध जिहाद्

पेरिस की नागरिक सभा—सोलहवें लुई के शासन-च्युत किये जाने के अनन्तर फ्रास का शासन करने के लिये कोई व्यवस्थित सरकार नहीं थी। राजा के बिना शासन विधान का स्वरूप तैयार करने के लिये जो कान्वेन्शन बुलाया गया था, उसने अभी अपना कार्य प्रारम्भ ही किया था। इसमे सन्देह नहीं कि एक सामयिक सरकार का सगठन कर दिया गया था, जिसका मुखिया डैन्टन था, परन्तु शासन की वास्तविक शक्ति पेरिस की नागरिक सभा के हाथ मे आगई थी। यह नागरिक सभा बहुत व्यवस्थित तथा सगठित थी और स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव बहुत अधिक था। पेरिस का शासन इसके हाथ में था और क्यों कि राज्यक्रान्ति का नेतृत्व पेरिस द्वारा हो रहा था, अतः पेरिस की नागरिक सभा ही सम्पूर्ण देश में राज्यक्रान्ति का संचालन कर रही थी।

कान्वेन्शन का अधिवेशन—२१ सितम्बर सन् १७९२ के दिन कान्वेन्शन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। कुल सदस्यों की सख्या ७८२ थी। कान्वेन्शन मे अधिक संख्या उन लोगों की थी, जो राजसत्ता के विरोधी और रिपब्लिक के पक्षपाती थे। जिरोंदिस्ट दल के सदस्य सब से अधिक थे। इस दल का विचार था, कि क्रान्ति का संचालन कानून और व्यवस्था के अनुसार करना चाहिये। यह दल खून खराबी के

खिलाफ था और शान्ति पूर्वक राज्य परिवर्तन चाहता था। जिरोंदिस्ट दल के शक्तिशाली होते हुए भी उसमे कोई प्रभावशाली नेता नहीं था। इसके विपरीत जेकोबिन दल मे डेन्टन, मरट और राबस्पियर जैसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली नेता थे, इनके कारण इस दल का प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। जेकोबिन दल क्रान्ति के सञ्चालन मे व्यवस्था और कानून का आख मींचकर अनुसरण करने के पक्ष मे नहीं था। मौके के अनुसार सब प्रकार के उपायों से सफलता प्राप्त करना ही उसका मूलमन्त्र था। कान्वेन्शन मे पहले जिरोंदिस्ट दल का प्राधान्य था, परन्तु कुछ समय बाद ही जेकोबिन दल प्रबल हो गया और सम्पूर्ण शक्ति उसके प्रभावशालो नेताओं के हाथ में चली गई।

अपनी पहली ही बैठक मे कान्वेन्शन ने यह प्रस्ताव पास किया कि फ्रास से राजसत्ता का अन्त किया जाता है, और रिपब्लिक की स्थापना की जाती है। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था। तीन साल पहले फ्रास मे एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता विद्यमान थी, परन्तु अब इतने थोड़े से समय में वहा एक शक्तिशाली रिपब्लिक की स्थापना करदी गई थी। फ्रास की जनता ने रिपब्लिक की उद्घोषणा का बड़े उत्साह से स्वागत किया। लोगों का खयाल था कि अब एक नवीन युग का प्रारम्भ हो रहा है। स्वेच्छाचारिता का जमाना समाप्त हो गया है, और उसके स्थान पर स्वतन्त्रता का युग शुरू हुआ है। १७९२ के सितम्बर मास के २२ वे दिन से एक नवीन सवत् का प्रारम्भ किया गया।

नवीन संवत्—यह फ्रेञ्च स्वतन्त्रता के सवत् का प्रथम वर्ष था। कान्वेन्शन की एक उपसमिति पञ्चाङ्ग का सुधार करने के लिये बनाई गई। इसने प्रस्ताव किया कि प्रत्येक मास मे ३० दिन रखे जावें और प्रत्येक मास को दस दस दिन के तीन 'दशाहों' में विभक्त किया जावे। साल मे ३६५ दिन होते हैं, तीस-तीस दिन के १२ महीने होने से साल में ५ दिन शेप रह जावेंगे। ये ५ दिन छुट्टी मनाने के लिये रखे

जावे। दिनो के नाम नक्षत्रों और पुराने सन्तों के नामों पर रखने के बजाय पालतू पशुओ, वनस्पतिओं और कृपि के उपकरणों के नामों पर रखने का प्रस्ताव किया गया। यह क्रान्ति की भावना थी, जो सब क्षेत्रों मे अपने को प्रगट कर रही थी।

क्रान्ति के विरुद्ध जिहाद—इधर जिस समय कान्वेन्शन देश के लिये नवीन शासन विधान तैयार करने के कार्य पर लगा था, उधर यूरोप के विविध राजा क्रान्ति के विरुद्ध जिहाद कर रहे थे। अगस्त के समाप्त होने से पूर्व ही प्रशियन सेना फ्रास मे प्रवेश कर चुकी थी। २ सितम्बर को वेर्डून का किला जीत लिया गया था। ऐसा प्रतीत होता था, कि शीघ्र ही पेरिस को घेर लिया जायगा। ऐसे विकट समय में फ्रेञ्च सेनापति डूमरे ने वाल्मी नामक स्थान पर प्रशियन सेना से मोरचा लिया। यहा पर फ्रास की सेना को बहुत सफलता हुई। प्रशियन सेना का आक्रमण रुक गया, और सेनापति डूमरे इन आक्रान्ताओं को फ्रास से बाहर खदेड़ने मे समर्थ हुआ। इतना ही नहीं, फ्रेञ्च सेनाओ ने जर्मनी के प्रदेश पर आक्रमण किया और र्‌हाइन नदी के प्रदेश के अनेक दुर्गों को जीतकर अपने आधीन कर लिया। डूमरे के सैनिक नगे पैर थे, उनके पास सैनिक वर्दिया और शानदार हथियार नही थे। वे नये भर्ती किये हुए रगरूट थे, पर उनमे क्रान्ति की भावना थी, वे किसी उद्देश्य से—किसी भावना से युद्ध कर रहे थे। लड़ना उनका पेशा नहीं था। इन सैनिकों ने नीदरलैण्ड पर आक्रमण किया। यह प्रदेश उस समय में आस्ट्रिया के आधीन था। आस्ट्रिया की सेनाये परास्त हो गई और नीदरलैण्ड पर फ्रास का कब्जा हो गया। यह सैन्य सञ्चालन व समरनीति की विजय नही थी, यह क्रान्ति की भावना की विजय थी।

२, ३ सितम्बर के बीभत्स कत्ल—इन युद्धों के प्रारम्भ होने के समय पेरिस की क्रान्तिकारी सरकार ने बहुत से लोगों को सन्देह में

गिरफ्तार कर लिया था। इसमें सन्देह नहीं, कि उस समय फ्रांस में ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो क्रान्ति के विरोधी थे और जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति क्रान्ति को कुचलने के लिये लगा रहे थे। क्रान्तिकारियों ने बहुत से आदमियों को इस सन्देह मे कैद किया हुआ था। इनकी सख्या तीन हजार के लगभग थी। युद्ध के शुरू होने पर २ और ३ सितम्बर को इन सब कैदियों को कतल कर दिया गया। इसके लिये जो कारण पेश किया गया था, वह यह था कि हम लोग बेफिकर होकर शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये कैसे प्रस्थान कर सकते हैं, जब कि तीन हजार शत्रु हमारी अपनी जेलों में बन्द हैं, और जो किसी भी क्षण जेल तोड़कर बाहर निकल सकते हैं, और हमारी स्त्रियों और बच्चों का सहार कर सकते हैं। निस्सन्देह, यह एक बड़ा ही वीभत्स और क्रूर कतल था। एक साथ तीन हजार आदमियों का कतल—वह भी सन्देह के कारण न्याय का उपहास करके —कितनी वीभत्स घटना है! स्वतन्त्रता और न्याय के नाम पर पुरानी राजसत्ता का अन्त किया गया था। परन्तु नये युग का यह श्रीगणेश कितना अन्यायपूर्ण, अत्याचार मय और वीभत्स था! रिपब्लिक और क्रान्ति को रक्षा के नाम पर, स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव की स्थापना के लिये इन तीन हजार आदमियों की बलि दी गई थी।

कान्वेन्शन की क्रान्तिकारी उद्घोषणा—फ्रांस ने आक्रान्ताओं को परास्त कर जर्मनी और आस्ट्रिया के अनेक प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अब कान्वेन्शन ने निश्चय किया कि सम्पूर्ण यूरोप मे क्रान्ति की भावनाओं का प्रसार किया जावे। फ्रांस के क्रान्तिकारी नेता इस बात को खूब अच्छी तरह समझते थे कि उनके अपने देश में क्रान्ति तब तक सफल नही हो सकती, जब तक कि उनके चारों ओर सम्पूर्ण यूरोप मे एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सरकारें कायम हैं। अतः वे सर्वत्र क्रान्ति का प्रसार करने के लिये उत्सुक थे। कान्वेन्शन ने

१५ दिसम्बर १७९२ के दिन उन प्रदेशों की जनता के नाम, जिनपर कि फ्रांस ने कब्जा कर लिया था, एक उद्घोषणा प्रकाशित की। इसमें कहा गया था कि "हमने तुम्हारे अत्याचारी शासकों को खदेड़ दिया है। तुम अपने को स्वतन्त्र मनुष्य प्रदर्शित करो और हम तुम्हारी उन अत्याचारियों के बदले से रक्षा करेंगे।" इस उद्घोषणा में यह भी कहा गया था, कि फ्रांस का उद्देश्य सर्वत्र समानता और स्वाधीनता की स्थापना करना है, जो लोग इसका विरोध करेंगे, उन्हें अपना शत्रु समझा जायेगा और उनके साथ शत्रु के समान ही व्यवहार किया जायेगा।

राजा को प्राण दण्ड—इस बीच में कान्वेन्शन के सम्मुख यह प्रश्न भी विद्यमान था, कि पदच्युत राजा का क्या किया जावे? बहुत से लोगों का खयाल था कि उसने देश के विरुद्ध विद्रोह किया है। इस लिये उसके खिलाफ मुकदमा चलाया गया। डेन्टन ने अपने भाषण मे बड़ी जोर से गरज करकहा—यूरोप के राजाओं ने हमको चेलेन्ज दिया है। हम उसके जवाब में राजा का सिर उनके पैरों मे फेंक देंगे। मुकदमे के सिलसिले में कान्वेन्शन के सम्मुख एक सन्दूकची पेश की गई, जिसमे कि वह गुप्त पत्र व्यवहार बन्द था, जो कि राजा और उसके परिवार ने विदेशी राजाओं तथा फ्रांस से भागे हुए कुलीन लोगों से किया था। राजा को प्राणदण्ड दिया जाय या नहीं, इस विषय पर जब वोट लिये गये, तो ७२१ वोटों मे मे ३८७ वोट प्राणदण्ड के पक्ष में आये। राजा का फैसला हो गया। उसे प्राणदण्ड मिलना निश्चित हुआ। २१ जनवरी सन् १७९३ के दिन राजा का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। मरने से पूर्व राजा के अन्तिम वाक्य ये थे—'मेरा खून फ्रांस की समृद्धि का कारण बने।' इस प्रकार १६ वें लुई का अन्त हुआ। फ्रांस की जनता लुई की दुश्मन नहीं थी। क्रान्तिकारियों का उद्देश्य राजसत्ता का अन्त करना नहीं था। वे एकतन्त्र स्वेच्छाचारी

शासन का अन्त कर वैध राजसत्ता की स्थापना करना चाहते थे। यदि १६ वा लुई चाहता, तो क्रान्ति के बाद भी इङ्गलैण्ड के राजाओं की तरह अपनी शानदार और सम्मानास्पद स्थिति रख सकता। पर १६ वा लुई बहुत कमजोर व्यक्ति था। वह अपने अदूरदर्शी दरबारियों के प्रभाव से कभी ऊपर नहीं उठा सका। उसका अन्त इस प्रकार दुरवस्था के साथ हुआ, इसमें उसकी अपनी गल्तिया प्रधान हेतु हैं।

राजा के कतल का प्रभाव—१६ वें लुई का कतल यूरोप के स्वेच्छाचारी राजाओ को खुला चैलेञ्ज था। उन्होंने इस चैलेञ्ज को स्वीकार करने में जरा भी देर नहीं की। इङ्गलैण्ड के राजा ज्यार्ज तृतीय ने फ्रास के राजदूत को अपने देश से निकल जाने का हुकम दिया। प्रधानमन्त्री पिट ने पार्लमैण्ट मे भाषण देते हुए कहा, कि सम्पूर्ण मानवीय इतिहास मे १६ वे लुई के कतल समान बीभत्स और अमानुषिक कार्य अन्य कोई नही हुआ है। शायद, पिट इङ्गलिश राज्यक्रान्ति में चार्ल्स के कतल को भूल गया था। फ्रास और इङ्गलैण्ड मे सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा विद्यमान थी ही, इङ्गलैण्ड ने समझा कि अपने प्रतिस्पर्धी को कुचलने का यह सुवर्णीय अवसर उपलब्ध हुआ है, इसको हाथ से न जाने देना चाहिये। पिट ने पार्लमैण्ट मे प्रस्ताव किया, कि इङ्गलैण्ड को भी फ्रास के खिलाफ आस्ट्रिया और प्रशिया की सहायता करनी चाहिये।

फ्रास के विरुद्ध जिहाद—उधर फ्रास मे कान्वेन्शन के सम्मुख भी यह विषय पेश हुआ। इङ्गलैण्ड का राज्यक्रान्ति के प्रति जो रुख था, उसे दृष्टि मे रखते हुए कान्वेन्शन ने उचित समझा कि इङ्गलैण्ड के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया जावे। एक फरवरी सन १७९३ के दिन इङ्गलैण्ड और फ्रास मे लड़ाई घोषित कर दी गई।

आस्ट्रियन नीदरलैण्ड की विजय के बाद फ्रास की सीमा हालैण्ड से जा लगी थी। हालैण्ड फ्रास की इस समृद्धि तथा सफलता को नहीं सह सकता था। इतने शक्तिशाली राज्य का अपनी सीमा तक

आ पहुँचना उसे सह्य नहीं था। परिणाम यह हुआ कि हालैण्ड ने भी फ्रास के विरोधियों का साथ दिया।

फ्रेंच राज्यक्रान्ति के शत्रुओं की संख्या निरन्तर बढ रही थी। आस्ट्रिया, प्रशिया, इङ्गलैण्ड और हालैण्ड उसके विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर चुके थे। अब मार्च १७९३ में स्पेन और पवित्र रोमन साम्राज्य भी फ्रास के विरुद्ध लड़ने को तैयार हो गये। फ्रास अपने सारे पड़ौसियों से अकेला लड़ाई लड़ रहा था। उसे विकट परिस्थिति का सामना करना था। यूरोपियन राज्यों की सदियों की सधी हुई सेनायें उसके विरोध मे थीं। उसके अपने कुलीन तथा उच्च पुरोहित श्रेणियों के लोग उसके विरुद्ध सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार थे। फ्रास की क्रान्तिकारी सेनायें युद्ध नीति में निष्णात नहीं थीं। यही कारण है, कि १८ मार्च के दिन नीर विन्डन नामक स्थान पर आस्ट्रियन सेना ने फ्रेंच सेनापति डूमरे को बुरी तरह परास्त किया और नीदरलैण्ड फ्रास के हाथ से निकल गया। इस पराजय के बाद सेनापति डूमरे फ्रास का पक्ष छोड़ कर शत्रुओं से जा मिला। लफायत इससे कुछ दिन पहले ही शत्रुओं से मिल गया था। ये दोनों महानुभाव राज्यक्रान्ति के प्रमुख नेता थे। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता का नष्ट करने में इनका कर्तृत्व बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पर राजा को प्राणदण्ड मिलना इनकी दृष्टि में अक्षम्य अपराध था। ये क्रान्ति के पथ पर इतनी दूर नहीं जाना चाहते थे। क्रान्ति को अपने काबू से बाहर जाते देख इन्होंने यही उचित समझा, कि शत्रुओं से मिल कर क्रान्ति को कुचला जाय। राष्ट्रीयता की भावना उस समय तक उत्पन्न नहीं हुई थी। राष्ट्रीयता के इस युग में इन्हें देशद्रोही कहा जावेगा, पर उस जमाने में देश या राष्ट्र ने मनुष्यों के विचारों में वह स्थान प्राप्त नहीं किया था, जो अब कर लिया है। राष्ट्रीयता की भावना भी, इसी प्रकार की अन्य अनेक भावनाओं की तरह, इतिहास की उपज है!

शत्रुओं का सुख-स्वप्न—नीदरलैण्ड फ्रांस के कब्जे से निकल गया, इस बात से क्रान्ति के विरोधियों की हिम्मत बहुत बढ़ गई। उन्होंने आपस में सलाह करनी शुरू की, कि फ्रांस को जीत कर परस्पर बांट लिया जावे। अब से कुछ दिन पहले सन १७९३ मे ही पोलेण्ड को जीत कर रशिया, आस्ट्रिया और प्रशिया ने आपस में विभक्त कर लिया था। अब फ्रांस को भी इसी प्रकार बांट खाने का स्वप्न लिया जाने लगा। आस्ट्रिया की 'आख फ्रांस के उत्तरीय प्रदेशों पर थी। इङ्गलैण्ड उपनिवेशों को हड़पने की सोच रहा था। स्पेन पिरेनीज की पर्वतमाला को पार कर दक्षिणीय फ्रांस में अपना हिस्सा लेने की फिकर में था। इस प्रकार राज्यक्रान्ति के सब विरोधी फ्रांस को लूट खाने का सुख-स्वप्न ले रहे थे। निस्सन्देह, फ्रांस के लिये यह विकट परिस्थिति थी। उसने जिस हिम्मत और बहादुरी से इसका मुकाबिला किया, वह इतिहास में वस्तुतः अद्वितीय है।

नवां अध्याय

आतङ्क का राज्य

शक्ति शाली सरकार का संगठन—फ्रांस के लिये नवीन शासन-विधान बनाने का कार्य कान्वेन्शन कर रहा था। पर इस समय देश की मुख्य आवश्यकता शासन विधान का निर्माण नहीं थी। इस समय बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओं से रक्षा करना ही प्रधान कार्य था। इसी बात को दृष्टि में रखकर ४ जनवरी १७९३ के दिन कान्वेन्शन ने एक 'सामान्य रक्षा-समिति' का निर्माण किया था। इस समिति का कार्य फ्रांस में शान्ति और, व्यवस्था कायम रखना था। पर इस समय स्थिति इतनी गम्भीर और विकट होती जाती थी, कि एक अत्यन्त मजबूत और शक्ति शाली सरकार की जरूरत थी। युद्ध या विद्रोह के समय लोकतन्त्र शासन के सिद्धान्तों को क्रिया में परिणित कर सकना सम्भव नहीं रहता। उस समय आवश्यकता होती है, कि किसी व्यक्ति व व्यक्ति समूह को सारे अधिकार दे दिये जावे। फ्रांस मे विद्रोह भी हो रहे थे और युद्ध भी जारी थे। इस दशा में कान्वेन्शन के लिए यह सम्भव नहीं था, कि वह एक लोकतन्त्र रिपब्लिक को स्थापित कर सके। कान्वेन्शन शासन विधान निर्माण करने का अपना मुख्य कार्य करता गया, पर उसने सामयिक रूप से शासन करने के लिये एक ऐसी समिति का निर्माण कर दिया, जिसे कि शासन और व्यवस्थापन सम्बन्धी सब अधिकार प्राप्त थे। इस

समिति का नाम 'सार्वजनिक व्यवस्था समिति' था, और इसका निर्माण ६ एप्रिल के दिन हुआ था। एक क्रान्तिकारी के अनुसार "राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने के लिये स्वतन्त्रता का स्वेच्छा-चारी शासन स्थापित करना आवश्यक है", और इसीलिये इस समिति का निर्माण किया गया था। इसके अतिरिक्त एक 'क्रान्तिकारी न्याया-लय' की भी स्थापना की गई थी। क्रान्ति के विरोधियों को इस न्यायालय के सम्मुख पेश किया जाता था, और वहा उन्हे कठोर दण्ड दिये जाते थे। यह शक्तिशाली और सब राजकीय अधिकारों से युक्त सरकार अपने शासन मे जनता के वोटों की परवाह नहीं करती थी। उस समय यह सम्भव भी नहीं था। इस सरकार ने विदेशी आक्रमणों से फ्रास की रक्षा करने के लिये भारी कोशिश की। सब लोगों के लिये सैनिक सेवा करना आवश्यक कर दिया गया। लाखो की सख्या मे सिपाही भर्ती किये गए। यूरोप और अमेरिका के विविध देशो से सहायता प्राप्त करने की कोशिश की गई, पर इसमे कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। उस समय के लोग फ्रास की राज्यक्रान्ति को बड़े आतङ्क और घृणा की दृष्टि से देख रहे थे। उनकी सम्मति में फ्रास मे ऐसी घटनाये हो रही थीं, जो न्याय और औचित्य से सर्वथा शून्य थी। किसी भी नई लहर को लोग पहले पहल इसी दृष्टि से देखते हैं। फ्रास को कहीं से भी सहायता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु अकेले फ्रास ने इन विकट परिस्थितियों मे जो कार्य कर दिखाया, वह वस्तुतः आश्चर्य जनक था। इसका प्रधान कारण फ्रास के लोगों मे क्रान्ति की भावना थी। उन्हें अपने सिद्धान्तों पर अटल विश्वास था। उनमे वह जोश था, जो कि किसी नये धर्म के प्रचारकों में होता है। वे क्रान्ति के लिये मर मिटने को तैयार थे।

जिरोंदिस्ट दल का पतन—कान्वेन्शन मे पहले जिरोंदिस्ट दल का बहुमत था। यह दल रिपब्लिक तथा क्रान्ति का प्रवल पक्षपाती होते हुए भी इस समय की विकट परिस्थिति का सामना करने के लिये

उपयुक्त न था। इस दल के लोग कानून और व्यवस्था को बहुत महत्व देते थे। पर शायद इस समय फ्रास मे कानून और व्यवस्था की अपेक्षा ताकत और प्रत्युत्पन्नमतिता की अधिक आवश्यकता थी। फ्रास एक अत्यन्त भयङ्कर परिस्थिति मे फसा हुआ था और इसका मुकाबला करने के लिये जिस हिम्मत और अदीर्घसूत्रता की आवश्यकता थी, वह जिरोंदिस्ट लोगों मे मौजूद न थी। परिणाम यह हुआ, कि उनका विरोध बढ़ता गया। जैकोबिन दल प्रवल होता गया। जेकोबिन दल का क्या स्वरूप था, और उसमे किस प्रकार क्रान्ति के अत्यन्त गरम नेता सम्मिलित थे, इस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। पेरिस की नगर सभा —जो फ्रास के शासन सूत्र का अनेक अशों मे सञ्चालन कर रही थी, जेकोबिन क्लब के साथ थी। जिरोंदिस्ट दल पेरिस की नगर सभा के सख्त खिलाफ था। वह समझता था, कि इस नगर सभा ने फ्रास के शासन में अनुचित रूप से बहुत अधिक स्थान प्राप्त किया हुआ है। इसलिये उनकी तरफ से कान्वेन्शन मे प्रस्ताव उपस्थित किया गया, कि पेरिस की नगर सभा को तोड़ दिया जावे और कान्वेन्शन के अधिवेशन पेरिस के स्थान पर किसी अन्य नगर मे किये जावे, ताकि पेरिस की जनता का अनुचित प्रभाव कान्वेन्शन पर न रहे। जेकोबिन दल ने इन प्रस्तावों का घोर विरोध किया। उनका कहना था, कि पेरिस का प्रभुत्व निर्विवाद है, अन्य प्रदेशों को राजधानी का अनुसरण करना ही चाहिये। इस समय फ्रास और विशेषतया पेरिस की जो मनोवृत्ति थी, उसमे कानून और कायदों का बाकायदा अनुसरण करना सम्भव नहीं था। चाहिये तो यह था, कि इन प्रस्तावों पर बाकायदा वोट लिये जाते और बहुमत से जो फैसला होता, उसे क्रिया मे परिणत किया जाता। पर कानून कायदों को तोड कर अपनी ताकत से काम करने की प्रवृत्ति जब एक बार उत्पन्न हो जाती है, तो उसका प्रयोग वहीं तक सीमित रहे, यह नहीं होता। पेरिस के

लोग जिरोंदिस्ट दल के खिलाफ उठ खड़े हुए। २ जून १७९३ के दिन कान्वेन्शन को घेर लिया गया। जिरोंदिस्ट दल के सब नेता कैद कर लिये गये। यह सब कार्य पेरिस की सर्व शक्तिमान नगर सभा के आदेश से हुआ था।

अब कान्वेन्शन मे जैकोबिन दल का प्रभुत्व निर्विवाद हो गया। जेकोबिन दल पेरिस के लोगों पर आश्रित था। अतः यू कहना चाहिये कि पेरिस के लोग ही अब कठपुतली की तरह कान्वेन्शन को नचाने लगे। पेरिस की नगर सभा जो चाहती, वही करा लेती। उसका विरोध करने वाला अब कोई नही रहा था।

विद्रोह की अग्नि भड़क उठी—जिरोंदिस्ट दल को कान्वेन्शन से बहिस्कृत कर दिया गया, इस बात का परिणाम अच्छा नहीं हुआ। इस दल मे फ्रास के दक्षिणीय प्रदेशों के बहुत से प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इन्होंने विद्रोह करने का निश्चय किया। सब से पूर्व जिरोंद—जहा के प्रतिनिधियों के कारण ही इस दल का नाम जिरोंदिस्ट पड़ा था—के प्रमुख नगर बोर्डियो मे विद्रोह हुआ। बोर्डियो का अनुसरण मार्सेल्य ने किया और धीरे धीरे यह विद्रोहाग्नि दक्षिणीय फ्रास के बहुत से प्रदेशों मे व्याप्त होगई। लायन्स नामक नगर रेशम तथा इसी प्रकार की अनेक विध भोगविलास की वस्तुवे बनाने का बड़ा भारी केन्द्र था। इनकी वस्तुओं की खपत सर्वसाधारण जनता मे नहीं हो सकती थी। इनके खरीदार कुलीन वा उच्च श्रेणी के लोग ही होते थे। पर अब राज्यक्रान्ति के कारण फ्रास के वे उच्च श्रेणी के लोग विदेशों मे भाग गये थे और लायन्स के सारे व्यवसाय और व्यापार तबाह हो गये थे। यहा के लोगों को क्रान्ति से बड़ी घृणा थी। इन्होंने भी विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। इसी प्रकार ब्रिटेनी के निवासी क्रान्ति के विरुद्ध इस विद्रोह मे सम्मिलित हुए। यहा के निवासी और विशेषतया किसान लोग राज सत्ता के कट्टर पक्षपाती थे। देहात के

लोगों में परिवर्तन बहुत धीरे धीरे आता है, वे जमाने से बहुत पीछे पड़ जाते हैं। ब्रिटेनी के निवासी अभी तक क्रान्ति की भावना से प्रायः अपरिचित थे। वे अब तक भी राजसत्ता को पसन्द करते थे, पुरोहितों को पूजते थे और कुलीन जमींदारों का रोब मानते थे। जिरोन्द, ब्रिटेनी, लायन्स और मार्सेय्य के इन विद्रोहों ने फ्रास की सामयिक सरकार का कार्य बहुत कठिन बना दिया। उसने केवल विदेशी आक्रान्ताओं का ही मुकाबला नहीं करना था, अपितु इन आन्तरिक विद्रोहों की भी व्यवस्था करनी थी। क्रान्ति के लिये यह अग्निपरीक्षा का अवसर था।

शत्रुओं के आक्रमण—विदेशी आक्रान्ता अपने आक्रमणों मे निरन्तर सफलता प्राप्त कर रहे थे। आष्ट्रियन और इङ्गलिश सेनाये फ्रास की भूमि पर पदार्पण कर चुकी थीं, और एक के बाद एक दुर्ग को जीतती जाती थीं। शत्रुओं की सेना पेरिस से कुल १०० मील दूर रह गई थी। साफ दिखाई दे रहा था, कि शीघ्र ही पेरिस पर हमला कर दिया जायगा और ब्रुन्स्विक के ड्यूक की उद्घोषणा क्रिया मे परिणत हो जावेगी।

नवीन सरकार—ऐसी विकट परिस्थिति में स्थिति को सभालने का एक ही उपाय था। वह यह कि सरकार को और भी मजबूत किया जाय। लोकतन्त्र रिपब्लिक के उदात्त सिद्धान्तों को कुछ समय के लिये ताक मे रख कर, स्वेच्छाचारी मजबूत सरकार की स्थापना की जाय। नेशनल कान्वेन्शन ने रिपब्लिक के सिद्धान्त का अनुसरण कर जो नया शासन विधान बनाया था, वह यू ही रखा रह गया। १७९३ मे फ्रास के लिये जो शासन विधान तैयार किया गया था, वह क्रिया मे नही आ सका। उस समय की परिस्थिति उसके लायक नहीं थी। उस समय शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता थी, और सामयिक आवश्यकता ने उसे धीरे धीरे स्वय उत्पन्न कर दिया था। इस सरकार का स्वरूप क्या था ? यह शासन के लिये स्वेच्छाचारिता और आतङ्क का प्रयोग करती थी। इसके

तरीके वही थे, जो पुराने स्वेच्छाचारी एकतन्त्र राजाओं के होते थे। तरीके पुराने थे, पर उद्देश्य नवीन था। इस नई सरकार के स्वरूप को संक्षेप से इस बात को इस प्रकार प्रगट किया जा सकता है—

(१) *सार्वजनिक व्यवस्था समिति*—सार्वजनिक व्यवस्था समिति के कुल १२ सदस्य होते थे। इन्हें राज्य के सब शासन और व्यवस्थापन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। इस समिति का निवास-स्थान राजा का पुराना प्रासाद था। राज्य क्रान्ति का वास्तविक सञ्चालन इसी के हाथ मे था। आतङ्क के विविध साधनों का उपयोग भी मुख्यतया इसी के द्वारा होता था। यही समिति राजकीय आज्ञायें प्रकाशित किया करती थी। इसी के हुक्म से हजारो आदमियो को प्राणदण्ड दिया जाता था। जनता मे क्रान्ति की भावना को निरन्तर ताजा तथा गरम बनाये रखना इसी समिति का काम था। यह समिति स्वतन्त्रता के नाम पर काम करती थी, पर इसके हथियार जुल्म, अन्याय, अत्याचार और आतङ्क के बने हुए थे।

(२) *सामान्य रक्षा समिति*—सामान्य रक्षा समिति का प्रमुख कार्य फ्रास मे शान्ति और व्यवस्था कायम रखना था। इसके सदस्यो की सख्या २१ थी। यह शान्ति और व्यवस्था के नाम पर जिस आदमी को चाहती गिरफ्तार करती, जेल मे डालती या न्यायालय के सम्मुख पेश कर सकती थी।

(३) *क्रान्तिकारी न्यायालय*—क्रान्तिकारी न्यायालय का निर्माण देशद्रोहियों तथा क्रान्ति के खिलाफ साजिश करने वालो के मामलों का फैसला करने के लिये हुआ था। इसके न्यायधीशो की नियुक्ति सार्वजनिक व्यवस्था समिति की तरफ से होती थी। इसके पास कार्य की बहुत अधिकता थी। क्रान्ति के दुश्मनों के सब अभियोग इसी के सम्मुख पेश होते थे और इसके निर्णयों के खिलाफ अपील नहीं की जा सकती थी। कार्य की अधिकता के कारण इस न्यायालय को चार भागों मे बाट दिया

गया था। फिर भी कार्य का बोझ कम नहीं हुआ और यही कारण है कि इसके फैसले बहुत जल्दबाजी के साथ किये जाते रहे।

(४) *विशेष प्रतिनिधि*—इस समय फ्रास मे जो विकट परिस्थिति थी, उसमे यह जरूरी था, कि विशेष विशेष कार्यों के लिये ऐसे कर्मचारी नियत किये जावे, जिन्हे अपनी सम्मति के अनुसार कार्य करने के पूरे अधिकार प्राप्त हों। इनकी नियुक्ति सार्वजनिक व्यवस्था समिति द्वारा की जाती थी, और नेशनल कान्वेन्शन के सदस्यो को ही इस महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया जाता था। ये लोग कानून की परवाह बहुत कम करते थे। ये एक प्रकार के स्वेच्छाचारी राजा होते थे, जोकि अपनी शक्ति का निरकुशरूप से प्रयोग करने मे जरा भी सकोच नहीं करते थे।

(५) *जैकोविन क्लब*—जैकोबिन क्लब की शाखाये फ्रास भर मे व्याप्त थी। इनका सगठन बहुत विस्तृत तथा व्यापक था। उस अव्यवस्थित तथा अनिश्चित दशा के समय मे इस देशव्यापी सगठन का प्रयोग बहुत उत्तम रीति से किया जा सकता था। सार्वजनिक व्यवस्था समिति ने इन जेकोबिन क्लबो का पूर्णरीति से उपयोग किया और इनसे वे बहुत से काम लिये, जो किसी सरकारी महकमे से लिये जाने चाहिये थे।

विद्रोहों का दमन—इस शक्तिशाली सरकार ने बड़ी योग्यता और क्षमता से क्रान्ति के बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के शत्रुओं का मुकाबला किया। आन्तरिक विद्रोहों को बुरी तरह कुचला गया। लायन्स के विद्रोह को शान्त करने के लिये बाकायदा फौज भेजी गई। शहर का घेरा डाल दिया गया। गोलाबारी की गई, और लायन्स को आत्मसमर्पण करने के लिये विवश किया गया। लायन्स के लोगो के साथ बडा भयंकर बर्ताव हुआ। दो हजार के लगभग आदमी कतल किये गये। सार्वजनिक व्यवस्था समिति का यह खयाल था, कि इस

नगर को पूर्णतया भस्मसात् कर दिया जाय, पर सौभाग्यवश यह निश्चय क्रिया मे परिणित नहीं हो सका। पर इसमे सन्देह नही कि लायन्स के इस पराजय ने फ्रास की जनता के सम्मुख यह भली भाति स्पष्ट कर दिया कि क्रान्ति के विरुद्ध विद्रोह करना हसी मजाक नहीं है। क्रान्तिकारी विद्रोहियों से भयकर बदला लेते हैं। बोर्डियो और मार्सेल्स के विद्रोही लायन्स की दुर्दशा देखकर घबरा गये। उन्हें विश्वास हो गया, कि वे क्रान्ति का मुकाबला सफलतापूर्वक नहीं कर सकेंगे। इसलिये उन्हे परास्त करने मे विशेष कठिनता नहीं हुई। दोनों नगरों मे चार चार सौ के लगभग विद्रोहियों को कतल किया गया और दक्षिणीय फ्रास का विद्रोह सुगमता के साथ शान्त हो गया।

ब्रिटेनी प्रदेश मे विद्रोह ने बहुत व्यापक और प्रचण्ड रूप धारण किया हुआ था। विशेषतया वेन्डी के लोग क्रान्ति का सर्वनाश करने के लिये तुले हुए थे। विदेशी लोग भी इन्हें गुप्त रूप से सहायता पहुँचा रहे थे। क्रान्ति की सेनाओं को इनके साथ बाकायदा युद्ध लड़ने पड़े। सार्वजनिक व्यवस्था समिति ने इस विद्रोह को शान्त करने के लिये जो विशेष प्रतिनिधि नियत किया था, उसने अपना कार्य बड़ी निर्दयता से किया। यहा पर भी दो हजार के लगभग विद्रोहियों का क्रूरतापूर्वक घात किया गया।

विद्रोहों को कुचलने मे सार्वजनिक व्यवस्था समिति को पूर्ण सफलता हुई। पर विद्रोह की भावना अभी नष्ट नहीं हुई थी। क्रान्तिकारी नेताओ को हमेशा भय बना रहता था, कि क्रान्ति के विरोधी लोग कहीं विद्रोह न कर बैठे। फ्रास में क्रान्ति के विरोधियों की कमी नही थी। बहुत से लोग क्रान्ति के खुल्लमखुल्ला विरोधी थे, पर अधिक सख्या उन लोगों की थी, जो क्रान्ति की प्रगति को पसन्द नहीं करते थे। क्रान्ति के विरोध में जो कुछ भी सम्भव हो, उसे ये गुप्त रूप से करने को तैयार रहते थे। जनता की सहानुभूति या लोकमत भी एक महत्वपूर्ण शक्तिया

हैं। यदि लोगों की सम्मति किसी बात के खिलाफ हो, यदि लोगों की सहानुभूति किसी बात के विरोध में हो—तो वह स्वयं एक महत्वपूर्ण ताकत होती है। फ्रांस के क्रान्तिकारी नेता इस बात को खूब समझते थे। इसीलिये वे क्रान्ति की विरोधी भावनाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये तुले हुए थे। उनका खयाल था, कि क्रान्ति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है, कि जिन पर क्रान्ति का विरोधी होने का सन्देह हो, उन्हें भी क्षमा नहीं करना चाहिये। कोई आदमी क्रान्ति का पक्षपाती है, या कम से कम विरोधी नहीं है, यह जानने के लिये इतनी बात काफी नहीं है, कि उसने क्रान्ति के विरोध में कोई काम नहीं किया है। इसके लिये यह भी जरूरी है, कि उसने क्रान्ति के पक्ष में कोई कोशिश की है। यदि कोई आदमी आज उदासीन है. क्रान्ति का जोरदार तरीके से पक्षपाती नहीं है, तो क्या भरोसा है, कि कल वह विरोधी न बन जायगा? जब क्रान्ति के नेता ही शत्रुओं से मिल जाते हैं, तो उदासीनों का तो भरोसा ही क्या? इन सब दृष्टियों से कान्वेन्शन ने निश्चय किया, कि विरोधियों के हृदयों पर आतङ्क जमा दिया जाय, क्रान्ति का सिक्का बैठा दिया जाय, ताकि कोई आदमी क्रान्ति का विरोध करने की हिम्मत न कर सके। इसी नीति का परिणाम हुआ, कि फ्रेंच राज्यक्रान्ति के इतिहास में वह काल प्रारम्भ हुआ, जिसे 'आतङ्क का राज्य' कहा जाता है। यह काल कब से कब तक रहा, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। पर मोटे तौर पर हम कह सकते हैं, कि सितम्बर १७९३ से जुलाई १७९४ तक—दस मास के लगभग फ्रांस में 'आतङ्क का राज्य' रहा।

आतङ्क का राज्य—क्रान्ति के विरोधियों को प्राणदण्ड या अन्य भयङ्कर दण्ड देने के लिये व्यवस्था पहले भी विद्यमान थी, 'क्रान्तिकारी न्यायालय' पहले भी कार्य कर रहा था। पर १७ सितम्बर १७९३ के दिन एक भयङ्कर कानून पास किया गया। इस कानून द्वारा यह व्यवस्था

की गई, कि जो लोग अपने व्यवहार व क्रिया द्वारा, अपनी सम्मति व विचारों के प्रगट करने से अथवा अन्य किसी प्रकार से क्रान्ति का विरोध करें, उन सब को प्राणदण्ड दिया जाय। यह कानून अत्यन्त व्यापक था। क्रान्ति के विरुद्ध या क्रान्ति के किसी भी कार्य के विरुद्ध सम्मति प्रकाशित करना भी अपराध था और उसके लिये प्राणदण्ड की व्यवस्था की गई थी। प्राणदण्ड के लिये इस काल में एक नवीन उपकरण का आविष्कार किया गया था, जिसे गुलेटिन कहते हैं। इसका आविष्कारक डा० गुलेटिन नाम का आदमी था और उसी के नाम के कारण इसे गुलेटिन कहते हैं। इस उपकरण मे दो स्तम्भों के बीच में एक बहुत बड़ा फलका लटक रहा होता था, जिसे रस्सी द्वारा ऊपर वा नीचे ले जाया जा सकता था। अपराधी को इन दो स्तम्भों के बीच में लेटा कर फलके की रस्सी ढीली कर दी जाती थी और वह भारी फलका बड़े वेग और शब्द के साथ नीचे गिर कर अपराधी के सिर को धड़ से अलग कर देता था। इस उपकरण को दो पहिये वाली गाड़ी पर रखकर जहां चाहें, ले जा सकते थे। इस काल में पेरिस की गलियों में ये गुलेटिन सर्वत्र नजर आते थे। प्रातःकाल उठने पर इनका शब्द सुनाई पड़ता था। एक बड़े पैमाने पर क्रान्ति के विरोधियो का घात किया जा रहा था। इस बीभत्स और भयङ्कर कतल के कारण ही इस काल का नाम 'आतङ्क राज्य' रखा गया है।

रानी मेरी का कतल—अक्टूबर १७९३ में १६ वें लुई की रानी मेरी आतोआन्त पर मुकदमा चलाया गया। उसे क्रान्ति का विरोधी पाया गया। गुलेटिन ने रानी का—जिसका सारा जीवन भोग-विलास और आमोद प्रमोद मे व्यतीत हुआ था. सिर धड़ से अलग कर दिया। गुलेटिन की दृष्टि में राजा व रंक सब बराबर थे। फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने अपने कतल की प्रक्रिया में कुल या जाति किसी बात की परवाह नहीं की थी। रानी के साथ ही बहुत से कुलीन तथा उच्च पुरोहित श्रेणी

के लोग कतल किये गये । जिरोंदिस्ट दल के बहुत से नेता जिन्हें पेरिस की नगर सभा ने कान्वेन्शन की बैठक मे गिरफ्तार कर लिया था— अब तक जेलों मे पड़े थे । उन सब को भी कतल कर दिया गया । मैडम रोला नाम की एक कुलीन महिला को जिस समय गुलेटिन पर कतल के लिये ले जाया गया, तो उसने चिल्ला कर कहा—'स्वाधीनते, तेरे नाम पर क्या क्या अनर्थ किये जा रहे हैं !' रोला का यह कहना सर्वथा ठीक था । मनुष्य धर्म, राष्ट्रीयता, स्वाधीनता और देशभक्ति आदि उच्च भावों के आवरण से कैसे कैसे वीभत्स कार्य करता है, फ्रांस के क्रान्तिकारी निसन्देह एक विकट परिस्थिति का सामना कर रहे थे, उन्हें बाह्य और आभ्यन्तर—दोनों प्रकार के अनगिनत शत्रुओं का मुकाबला करना पड़ रहा था । इसलिये कुछ हद तक सख्ती की जरूरत थी । पर इसमे सन्देह नहीं, कि क्रान्तिकारी लोग औचित्य, न्याय और आवश्यकता की सीमा का उल्लघन कर रहे थे ।

जैकोबिन दल में विरोध—शीघ्र ही जेकोबिन दल में भी मतभेद शुरू हो गये । डैन्टन का खयाल था, कि अधिक खूनखराबी नहीं होनी चाहिये । वह कतलो और गुलेटिन से थक गया था । दूसरी तरफ पेरिस की नागरिक सभा के नेता हेबर्ट की राय थी, कि क्रान्ति को शीघ्र ही पूर्ण करना चाहिये और क्रान्ति को पूर्ण करने के एकमात्र उपाय आतङ्क और कतल हैं । हैबर्ट ने यह भी प्रस्ताव किया, कि हमें ईश्वर को उडा देना चाहिये । ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है । ईश्वरी के स्थान पर 'बुद्धि' की उपासना प्रारम्भ होनी चाहिये । एक सुन्दर नटी के रूप में 'बुद्धि' की प्रतिमा भी बनाई गई और उसको मन्दिर में प्रतिष्ठापित भी किया गया । रोबस्पियर और सेन्टजस्ट न डेन्टन से सहमत थे और न हैबर्ट से । ये दोनों नेता रूसों के कट्टर अनुयायी थे । क्रान्ति के सम्बन्ध में इनके निश्चित विचार थे । ये एक ऐसी रिपब्लिक की कल्पना करते थे, जिसमें न कोई अमीर हो, न कोई गरीब हो । बच्चों को पाच साल

की उमर मे राज्य के सुपुर्द कर दिया जावे और स्पार्टन तरीके से उन का शिक्षण किया जावे। रोबस्पियर परमेश्वर को मानता था, वह बुद्धि की उपासना के खिलाफ था। उसका सिद्धान्त था—'यदि परमेश्वर की कोई सत्ता नहीं है, तो हमे उसका आविष्कार करना चाहिये।' जेकोबिन दल के विविध नेताओं मे रोबस्पियर का प्रभुत्व था। डेन्टन तथा उसके अनुयायियों को इसलिये कतल किया गया, क्योंकि वे खून-खराबी से थक गये थे। हेबर्ट को इसलिये कतल किया गया, क्योंकि वह परमेश्वर को नहीं मानता था। इस काल में फ्रास के क्रान्तिकारियों के पास एक ही उपाय था, अपने विरोधी के साथ व्यवहार करने का एक ही तरीका उन्हें मालूम था—कतल। जो हम से मतभेद रखता है, वह क्रान्ति का दुश्मन है। उसकी एक ही सजा है—गुलेटिन। इसी मनोवृत्ति से फ्रास के क्रान्तिकारी नेता अपने पुराने सहयोगियों को बेधड़क होकर कतल करते रहे। डेन्टन और हैबर्ट की कतल के बाद रोबस्पियर का कुछ समय के लिये एकाधिपत्य हो गया।

नवीन युग की सृष्टि—यह ध्यान रखना चाहिये, कि रोबस्पियर पूरी तरह ईमानदार था। वह वस्तुतः समझ रहा था कि वह जो कुछ कर रहा है, क्रान्ति के, फ्रास के कल्याण के लिये कर रहा है। रोबस्पियर के नेतृत्व मे 'सार्वजनिक व्यवस्था समिति' ने जो कार्य किया, वह वस्तुत अद्भुत है। जिन समस्याओं को हल करना आज भी मनुष्य जाति को बहुत कठिन प्रतीत हो रहा है, जिनको हल करने के लिये बड़े बड़े विद्वान आज तक परेशान हो रहे हैं, उनके लिये इस सार्वजनिक व्यवस्था समिति के पास अत्यन्त सुगम हल विद्यमान थे। क्रान्ति के जोश में, नये युग की सृष्टि करने के आवेश मे क्रान्तिकारियों ने फ्रास मे बड़े बड़े परिवर्तन किये। सम्पत्ति को एक बराबर करने की कोशिश की गई। अमीरों की सम्पत्ति पर भारी टैक्स लगाये गये। बहुत से सम्पत्तिशाली लोगों की जायदादे इसलिये जब्त करली गई, ताकि

गरीबों को उनसे फायदा पहुँच सके। यह व्यवस्था की गई, कि प्रत्येक आदमी अपनी स्त्री और बच्चों के साथ आराम से अपने घर में रह सके। मुनाफे को उडाने की कोशिश की गई। अर्थशास्त्रियों के लिये मुनाफा एक जटिल पहेली है। व्यापार और व्यवसाय के लिये मेहनत करने का उत्साह इससे उत्पन्न होता है। पर साथ ही इससे बहुत से लोगों को दूसरों का हिस्सा छीनकर अपने को अनुचित रूप से समृद्ध बनाने का भी अवसर मिलता है। १७९३ के फ्रास में मुनाफे को मर्यादित करने के लिए कानून बनाये गए। सामाजिक-क्षेत्र में भी बड़े परिवर्तन किये गये। तलाक को उतना ही आसान कर दिया गया, जितना कि विवाह। जायज और नाजायज बच्चों का भेद सर्वथा नष्ट कर दिया गया। एक नये पञ्चाङ्ग का निर्माण किया गया। साल को तीस तीस दिन के १२ महीनों में बाटा गया। महीनों के नाम कुहरा, वर्षा, बर्फ, ग्रीष्म, फूल, मर्ग, फल आदि रक्खे गये। महीनों मे चार के स्थान पर तीन सप्ताह (या दशाह) रक्खे गए। दिन को २४ घण्टों के स्थान पर दस घण्टों में विभक्त किया गया। मुद्रापद्धति का नवीन प्रकार से निर्माण किया गया। चर्च के घण्टे घण्टियों को पिछला कर मुद्रा बनाने के काम में लाया गया। धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना की गई। कुछ लोगों की कोशिश थी, कि क्रिश्चियन धर्म को ही उड़ा दिया जावे। परमेश्वर को नष्ट कर देने का प्रस्ताव तो क्रिया में भी आचुका था, पर रोबस्पियर के विरोध से यह बात देर तक नहीं हो सकी। तोल और भार मापने के लिये नये माप चलाये गये। दशमलव की पद्धति पर तोल और भार के जिन परिमाणों को आज सारा ससार स्वीकृत करता जा रहा है, उनका आविष्कार इस 'आतङ्क के राज्य' के समय में ही हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए एक उत्तम योजना तैयार की गई। ये सब महत्वपूर्ण कार्य उस समय में किये गये, जब कि फ्रास की राष्ट्रीय स्वयसेवक सेना विदेशी आक्रान्ताओं से घनघोर युद्ध कर रही थी,

और क्रान्तिकारी नेता क्रान्ति के विरोधियो का सर्वनाश करने के लिये गुलेटिन का बड़े पैमाने पर प्रयोग कर रहे थे। निस्सन्देह, फ्रास के लोगों की क्षमता और कार्य शक्ति इस समय मे असाधारण रूप से बढ़ गई थी। वे लोग न केवल नाश के कार्य में लगे थे, पर बड़ी गम्भीर तथा ईमानदारी से नये युग की सृष्टि में भी दत्तचित्त थे।

रोबस्पियर का पतन—रोबस्पियर का यह एकाधिपत्य देर तक कायम नहीं रहा। जिस प्रकार उसने डेन्टन तथा हैबर्ट को कतल किया था, उसी प्रकार वह भी कतल किया गया। उसके खिलाफ एक साजिश तैयार की गई। २७ जुलाई १७९४ के दिन जब वह कान्वेन्शन में भाषण करने के लिये खड़ा हुआ, तब इन षड़यन्त्रकारियों ने चिल्लाना शुरू किया—'अत्याचारी हाय हाय !' रोबस्पियर हैरान रह गया। हैरानी और डर के मारे उसके मुख से आवाज नही निकली। एक आदमी ने चिल्ला कर कहा—'डैन्टन का खून इसका गला घूट रहा है।' रोबस्पियर समझ गया, उसका अन्त भी समीप था। उस पर मुकदमा चलाया गया, उसे दोषी पाया गया। विरोधियों ने उस पर हमला किया, और गिरफ्तार कर लिया। पेरिस की नगर सभा तथा जैकोबिन क्लब अब भी उसकी पक्षपोषिका थी। जेकोबिन क्लब ने कान्वेन्शन के खिलाफ विद्रोह किया। दोनो पक्षों में खुल्लमखुल्ला लड़ाई होने लगी। आखिर जेकोबिन क्लब ने रोबस्पियर को छुड़वा लिया। रोबस्पियर ने अपनी क्लब के सुरक्षित विशाल भवन में आश्रय लिया। सारे शहर मे सनसनी फैल गई। सब तरह के जुलूस निकलने लगे। सुबह ३ बजे कान्वेन्शन की सेनाओं ने जेकोबिन क्लब पर हमला किया। खुल्लमखुल्ला लड़ाई होने लगी। पर जेकोबिन सेनापति हेन्रियट शराब पीकर मस्त पड़ा था। पेरिस की नगर सभा के सिपाही कान्वेन्शन से मिल गये। जेकोबिन क्लब अकेला रह गया। लड़ाई मे रोबस्पियर के जबाड़ पर गोली लगी। वह बुरी तरह घायल होकर गिर पड़ा। रोबस्पियर के अगले १७ घण्टे बड़ी तकलीफ से गुजरे। इस

बीच मे वह एक शब्द भी न बोल सका । उसका फटा हुआ जबाड़ा एक मैले कपड़े से बाध दिया गया था । आखिर, रोबस्पियर को गुलेटिन के नीचे कतल करने के लिये ले जाया गया । कतल करने से पहले उसकी पट्टी उतार दी गई थी । गुलेटिन का फलका आया और उसके सब कष्टों का अन्त कर गया ।

विवेचना—अनेक ऐतिहासिकों ने इस आतङ्क के राज्य का बड़े बीभत्स रूप से वर्णन किया है । फ्रेञ्च राज्य क्राति को बदनाम करने के लिये इस काल को इस रूप मे पेश किया गया है, मानों इससे अधिक भयङ्कर और बीभत्स काल इतिहास मे पहले कभी हुआ ही नहीं । राजसत्ता के पक्षपातियों ने इस काल का वर्णन करके यह परिणाम निकाला है, कि मानवीय प्रवृत्तियों में जो सबसे अधिक घृणास्पद तथा रौद्र प्रवृत्तिया हैं, राज्यक्रान्ति मे उनका प्रकाशन हो रहा था । पर वास्तविकता क्या है, यह हमें अपनी दृष्टि मे रखना चाहिये । सम्पूर्ण आतङ्क के राज्य में कुल मिलाकर ४ हजार के लगभग आदमी कतल किये गये थे । यदि हम इसकी तुलना पुराने राजसत्ता के जमाने के कारनामों से करें, तो इसकी भयङ्करता बहुत कुछ कम हो जायगी । चार्ल्स ५ म के शासन काल मे नीदरलैण्ड जैसे छोटे से देश मे ५० हजार के लगभग आदमियों को जीते जी आग में जला दिया गया था । सेण्टबार्थोलोमियो के दिन साल मे दो हजार से अधिक निरपराध लोगों को तलवार के घाट उतार दिया गया था । राज्यसत्ता के जमाने मे राजा तथा उसके अमीर उमरा मानवीय जीवन को जिस प्रकार तुच्छ और अगरय समझ कर अपनी स्वेच्छा से नष्ट करते थे—यह कौन नहीं जानता । इस आतङ्क के राज्य मे तो एक विशेष सिद्धात को दृष्टि मे रख कर कुछ खास विकट परिस्थितियों मे ये कतल हुए थे, पर इसी काल मे इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशों के मनुष्य समाज और मानवीय जीवन की क्या दशा थी । इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका मे इसी काल मे तुच्छ तुच्छ

अपराधों पर जितने आदमी कतल किये जा रहे थे, या जन्म भरके लिये जेलों में सड़ाये जा रहे थे। उतने फ्रास में देश द्रोह के अपराध में कतल नहीं किये गए। फर्क इतना ही है कि फ्रास में जिन लोगों को मारा गया, वे राज घराने के थे, कुलीन और उच्च श्रेणियों के थे। पर अन्य देशों मे जो आदमी कुत्ते की मौत मर रहे थे वे गरीब थे, नीची श्रेणियों के थे। उनका रोना रोने के लिये उस जमाने में कोई न था। पर एक कुलीन को गुलेटिन से मारने पर सारा यूरोप काप उठता था। यही कारण है, जिससे फ्रास के इस आतङ्क के राज्य को इतना वदनाम किया गया है, परन्तु यह ध्रुव सत्य है, कि कतलों के इस काल मे भी फ्रास की सर्वसाधारण जनता का जीवन अधिक सुरक्षित, अधिक सम्मानास्पद तथा अधिक सुखी था—उस समय के मुकावले में जब कि बोर्वो राज्यवश के स्वेच्छाचारी राजा अपने कृपापात्रों के साथ वर्साय के राजप्रासादों में भोग विलास मे मस्त रहते थे।

दसवां अध्याय

डाइरेक्टरी का शासन

आतङ्क के राज्य का अन्त—रोबस्पियर की मृत्यु के बाद 'आतङ्क का राज्य' समाप्त होगया। लोगों पर अत्याचार करने के लिये, निधड़क होकर अपने स्वेच्छाचारी कृत्यों से भयानक किसम का आतंक फैलाने के लिये भी असाधारण हिम्मत, प्रभाव और व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। रोबस्पियर की मृत्यु के बाद क्रान्तिकारी नेताओं में कोई ऐसा नहीं था, जो उसके समान साहसी और प्रभावशाली हो। इसके अतिरिक्त जनता खूनखराबी से थक चुकी थी। आतंकमय शासन को न्याय और समुचित समझ सकने के जो भी कारण पहले विद्यमान थे, वे भी अब धीरे धीरे हटते जा रहे थे। आन्तरिक विद्रोह बहुत कुछ शान्त किये जा चुके थे। विदेशी आक्रान्ताओं को पराजय किया जा चुका था। १६ वें लुई के कतल के बाद विदेशी राजाओं ने भयकरता के साथ फ्रांस पर हमला किया था, पर अब इन आक्रमणों का जोर घट चुका था। कार्नो नाम के क्रान्तिकारी सेनापति ने शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये बड़ी भारी सेना का सगठन किया था। इसमें साढ़े सात लाख सैनिक थे। इन्हें १३ भागों में विभक्त कर विविध रणक्षेत्रों में शत्रुओं को परास्त कर फ्रांस से बाहर खदेड़ देने के लिये भेज दिया गया था। प्रत्येक सेना के सेनापति के साथ दो दो 'विशेष प्रतिनिधि' रहते थे। इसका उद्देश्य यह

था, कि कहीं सेनापति विद्रोह करके शत्रुओं से न मिल जावें। डूमरे और लफायत के उदाहरण ने फ्रास के क्रान्तिकारियों में सन्देह और अविश्वास की भावनाओं को बहुत प्रबल कर दिया था। जेकोबिन दल के ये 'विशेष प्रतिनिधि' न केवल सेनापतियों को विश्वासघात से रोकते थे, पर साथ ही सैनिकों मे क्रान्ति के लिये असाधारण उत्साह और जोश को भी जागृत करते रहते थे। इन सैनिक प्रयत्नो का यह परिणाम हुआ था, कि फ्रास के आक्रान्ता परास्त होगये थे और क्रान्तिकारी सेनायें फ्रास की सीमाओं से आगे बढ कर जर्मनी और आस्ट्रिया पर आक्रमण कर रही थीं। इस स्थिति मे न आन्तरिक विद्रोह और न विदेशी आक्रमण इस आतक के राज्य को—जो कि विशेष परिस्थितियों मे आवश्यक हो गया था, न्याय्य और समुचित बना सकते थे। परिणाम यह हुआ, कि रोबस्पियर कीमृत्यु के साथ ही अपने आप इसकी समाप्ति हो गई और फ्रास में लोकतन्त्र सिद्धान्तों के अनुसार रिपब्लिक स्थापित की गई।

नवीन शासन विधान—यह नवीन शासन विधान नेशनल कान्वेन्शन ने तैयार किया था, यद्यपि कान्वेन्शन ने विशेष परिस्थितियों को दृष्टि मे रख कर देश के शासन का कार्य सार्वजनिक व्यवस्था समिति के सुपुर्द कर दिया था, पर स्थिर शासन विधान बनाने का विचार छोड़ नही दिया गया था। १७९५ मे यह नवीन शासन विधान तैयार हो गया। इसमें भी सब से पूर्व नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों की उद्घोषणा की गई। व्यवस्थापन विभाग दो सभाओं द्वारा बनाया गया—पान्च सौ की सभा और बड़ों की परिषद् बड़ों की परिषद् का सदस्य होने के लिये आवश्यक था, कि उमर ४० साल से बड़ी हो। इस परिषद के सदस्य के लिये विवाहित व विधुर होना भी आवश्यक था। कोई अविवाहित आदमी इसका सदस्य नही बन सकता था। दोनों सभाओं के लिये सदस्य चुनने का अधिकार सम्पूर्ण नागरिकों को नहीं दिया गया

था। पहली बार जो शासन विधान बना था, उसमे वोट का अधिकार सब लोगों को दे दिया गया था, पर इस बार इसके लिये टैक्स देने की शर्त लगाई गई थी। जो लोग राज्य को किसी किस्म का टैक्स नही देते थे, उन्हें वोट देने का अधिकार भी नहीं दिया गया था। शासन का कार्य एक समिति को दिया गया, जिसके सदस्यों की सख्या पाच नियत की गई। इनका निर्वाचन व्यवस्थापन विभाग द्वारा किया जाता था। इस समिति को 'डाइरेक्टरी' कहते थे। पाचों सदस्य क्रमशः तीन तीन महीने के लिये 'डाइरेक्टरी' के अध्यक्ष होते थे। जिस की अध्यक्ष होने की बारी होती थी, वही तीन महीने के लिये फ्रास का राष्ट्रपति समझा जाता था। इस नये शासन विधान से सब लोग सन्तुष्ट नहीं थे। विशेषतया, राजसत्ता के पक्षपाती और पूर्णतया लोकतन्त्र की स्थापना चाहने वाले क्रान्तिकारी लोग इसे नापसन्द कर रहे थे। राजसत्ता के पक्षपाती तो इससे सन्तुष्ट ही कब हो सकते थे ! लोकतन्त्र दल भी इसे अपूर्ण तथा असन्तोषजनक समझता था। कान्वेन्शन को भय था, कि नये चुने हुए सदस्य कहीं इस शासन विधान को अस्वीकृत न करदे, अतः उन्होंने व्यवस्था की, कि व्यवस्थापन विभाग की दोनों सभाओं के दो तिहाई सदस्य अवश्य ही कान्वेन्शन के सदस्यों मे से चुने जावें। परिणाम यह हुआ, कि कान्वेन्शन के इस हुकुम के बर्खिलाफ, नये शासन विधान से असन्तुष्ट लोगों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह को शान्त करने का कार्य एक पतले सुकड़े नौजवान सिपाही के सुपुर्द किया गया था। इसने बड़ी योग्यता और चातुर्य से इस विद्रोह को शान्त किया। इस सिपाही का नाम नैपोलियन बोनापार्ट था। २६ अक्टूबर १७९५ के दिन कान्वेन्शन बर्खास्त होगया और फ्रास का शासन सूत्र डाइरेक्टरी के हाथ मे चला गया।

डाइरेक्टरी की नई सरकार के सम्मुख सब से बड़ा प्रश्न विदेशी युद्धों का था। विदेशी आक्रान्ताओं के हमले का पहला जोर तो अब

घट चुका था। १७९५ के शुरू में प्रशिया, स्पेन और हालैंड ने फ्रास से सन्धि कर ली थी। परन्तु इङ्गलैंड, आस्ट्रिया, पीडमौण्ट और विविध जर्मन राज्य अब तक भी फ्रास के साथ युद्ध मे जुटे हुए थे। सेना और युद्ध की दृष्टि से फ्रास इस समय बहुत अच्छी दशा मे था। वे स्वयसेवक लोग, जो नंगे पैर और फटे कपड़े पहने हुए फ्रास के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को सारी दुनिया मे फैला देने के लिये सेना मे भर्ती हुए थे, अब अच्छे कुशल सैनिक बन चुके थे। उनमे केवल सैनिक क्षमता ही नहीं थी, साथ ही असाधारण उत्साह और जोश भी था। इन सेनाओं के सेनापति भी पुराने कुलीन लोग नहीं थे। कोई भी आदमी सेनापति बन सकता था, बशर्ते कि वह अपनी क्षमता साबित कर सके। इतिहास मे यह एक नई बात थी। पुराने जमाने मे राजा और राजकर्मचारियों की तरह सेनापति पद भी ऊचे कुलीन लोगों के लिये ही सुरक्षित रहते थे। पर फ्रास के सभी क्रान्तिकारी सेनापति बहुत साधारण स्थिति के आदमी थे। मूरो एक वकील था। जोर्डन कपड़े बेचने का काम करता था। मुरट अर्दली रह चुका था। नैपोलियन बोनापार्ट एक गरीब वकील का लड़का था। राज्य की तरह सेना भी सर्वसाधारण जनता की चीज बन चुकी थी। यह क्रान्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम था।

नये आक्रमणों की योजना—नई भावनाओं और उमङ्गों से भरी हुई यह जन-साधारण की सेना विदेशी युद्धों में असाधारण सफलता प्राप्त कर रही थी। डाइरेक्टरी का शासन शुरू होने से पहले ही आस्ट्रियन नीदरलैण्ड (बेल्जियम) को जीता जा चुका था। र्‌हाइन नदी के पश्चिमीय तट तक जर्मनी में विजय प्राप्त की जा चुकी थी। नीस और सेवाय पर फ्रास का कब्जा था। ऐसी स्थिति में डाइरेक्टरी के सम्मुख प्रधान कार्य यही था, कि अन्य शत्रुओं को भी परास्त कर क्रान्ति के सिद्धान्तों की विजय निरपवाद रूप से स्थापित कर दी जाय। क्रान्ति का सब से बड़ा दुश्मन आस्ट्रिया था। इसलिये डाइरेक्टरी ने

योजना की कि आस्ट्रिया पर दो मार्गों से आक्रमण किया जाय। एक सेना जोर्डन और मूरो के सेनापतित्व मे दक्षिणीय जर्मनी के मार्ग से आस्ट्रिया पर हमला करे और दूसरी सेना नैपोलियन बोनापार्ट की अध्यक्षता मे उत्तरीय इटली को जीतती हुई दक्षिण की तरफ से आस्ट्रिया पर आक्रमण करे।

नैपोलियन का सैनिक गौरव वास्तविक रूप से इसी आक्रमण से प्रारम्भ हुआ। इन आक्रमणों में नैपोलियन ने जिस असाधारण वीरता और युद्ध की क्षमता का परिचय दिया, उससे सम्पूर्ण यूरोप आश्चर्य-चकित रह गया। इन्हीं शानदार विजयों का परिणाम था, कि नैपोलियन फ्रास का न केवल सबसे बड़ा सेनापति तथा राज्याधिकारी बन गया, पर कुछ ही समय में सम्राट पद तक पहुँच गया।

नैपोलियन के आक्रमण—उत्तरीय इटली के मार्ग से आस्ट्रिया पर आक्रमण करते हुए नैपोलियन ने सबसे पूर्व पीडमौन्ट के राजा पर हमला किया। पीडमौन्ट सुगमता से परास्त हो गया। नीस और सेवाय पर फ्रास के अधिकार को स्वीकृत करने के लिये पीडमोन्ट के राजा को बाधित किया गया। पीडमौन्ट के राजा ने इन दोनों प्रदेशों पर अपना अधिकार छोड़ना स्वीकृत कर सन्धि करली। इसके बाद नैपोलियन ने उत्तरीय इटली के दो राज्य—लोम्बार्डी और मिलन पर हमला किया। दोनों प्रदेश फ्रास के आधीन हो गये। १५ मई १७९६ को नैपोलियन ने बड़ी धूमधाम के साथ मिलन की वैभवशाली नगरी मे प्रवेश किया।

कैम्पोफोर्मियो की सन्धि—अब आस्ट्रिया पर आक्रमण करने का द्वार खुल गया था। मेन्दुआ और आर्कोल के रणक्षेत्रों मे आस्ट्रियन और फ्रेञ्च सेनाओं में लड़ाइया लड़ी गईं। आस्ट्रिया की पराजय हुई। अक्टूबर १७९७ मे कैम्पोफोर्मियो नाम के स्थान पर दोनों देशों मे सन्धि हो गई, जो कि 'कैम्पोफोर्मियो की सन्धि' के नाम से इतिहास मे प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रियन नीदरलैण्ड (बैल्जियम)

पर फ्रास के अधिकार को स्वीकृत किया गया। उत्तरीय इटली के जिन प्रदेशों पर नैपोलियन ने विजय प्राप्त की थी, उन्हें सगठित कर एक रिपब्लिक के रूप मे परिवर्तित किया गया। इस नई रिपब्लिक का नाम किसल्पाइन रिपब्लिक (आल्प्स पर्वत माला की दक्षिणवर्त्ती रिपब्लिक) रखा गया। यह नई रिपब्लिक फ्रास की सरक्षा मे उसी के नमूने पर बनाई गई थी। आस्ट्रिया ने इस रिपब्लिक को भी स्वीकृत किया। इसके अतिरिक्त, र्‌हाइन नदी के पश्चिमीय तट पर फ्रास के अधिकार मे किसी किसम की बाधा न डालने का वचन आस्ट्रिया की तरफ से दिया गया इन सब बातों के बदले मे वेनिस की प्राचीन रिपब्लिक आस्ट्रिया के सुपुर्द करदी गई। वेनिस की रिपब्लिक को भी नैपोलियन ने जीत कर अपने आधीन कर लिया था। कैम्पोफोर्मियो की यह सन्धि मध्यकालीन राजनीतिक सन्धियों का एक अच्छा नमूना है। जनता और देश की जरा भी परवाह किये बिना बिक्री के मामूली माल की तरह राज्यों का भी उस जमाने में सौदा होता था। कैम्पोफोर्मियो में भी नैपोलियन ने आस्ट्रिया के साथ इसी ढग का सौदा किया गया था।

इधर तो नैपोलियन को यह शानदार विजय प्राप्त हुई थी, उधर जोर्डन और मूरो—जिन्होंने कि दक्षिणीय जर्मनी होकर आस्ट्रिया पर हमला करना था, र्‌हाइन नदी के तट पर परास्त होकर वापिस लौट गये थे। एक साल के अन्दर-अन्दर ही नैपोलियन ने १८ बड़े और ५० छोटे युद्ध लड़े। इन युद्धो के परिणाम स्वरूप उसने पीडमौन्ट और आस्ट्रिया को परास्त कर फ्रास से सन्धि करने के लिये बाधित किया। इन लड़ाइयो का सारा खर्च नैपोलियन ने पराजित प्रदेशों से वसूल किया। इतना ही नहीं, अपना सारा खर्च निकाल कर नैपोलियन ने १ करोड़ ८० लाख रुपया फ्रास को भी भेजा। पेरिस के अद्‌भुतालय (म्यूजियम) को विभूषित करने के लिये वह बहुत सी कृतिया इटली से ले गया। जब वह फ्रास लौटा, तो लोगों ने एक भारी विजेता के रूप

में उसका स्वागत किया। निस्सन्देह, इन विजयों के कारण फ्रांस की जनता उसे एक महान् वीर के रूप में पूजने लग गई।

पेरिस लौटकर नैपोलियन ने कोशिश की, कि वह डाइरेक्टरी का सदस्य चुन लिया जावे। अपनी गत विजयों से उसे भरोसा हो गया था, कि वह इस महत्वपूर्ण पद को सुगमता से प्राप्त कर सकेगा। पर उसे निराशा हुई। उसने अनुभव किया कि अभी समय नहीं आया है। अपनी महत्त्वाकाङ्क्षा को पूर्ण करने के लिये अभी और अधिक आश्चर्यजनक कृत्यों की आवश्यकता है। अभी मैदान भली भाति तैयार नहीं हुआ है। इसलिये उसने एक अन्य विजय की योजना तैयार की।

विजय की नई योजना—पीडमौन्ट और आस्ट्रिया के साथ सन्धि हो जाने के कारण अब फ्रांस की लँड़ाई केवल इगलैण्ड से जारी थी। इङ्गलैण्ड और फ्रांस में लड़ाई का कारण केवल क्रान्ति के सिद्धान्त ही नहीं थे। इन दोनों देशों मे सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा सत्रहवीं सदी से प्रारम्भ हो चुकी थी। इङ्गलैण्ड और फ्रांस—दोनों ही अपना-अपना सामुद्रिक साम्राज्य स्थापित करने के प्रयत्न में थे। अतः इनमें संघर्ष का होना स्वाभाविक था। नैपोलियन का विचार था कि यदि ईजिप्ट को अपने आधीन कर लिया जावे, तो इङ्गलैंड के पूर्वीय देशों मे निरन्तर बढते हुए सामुद्रिक व्यापार तथा राजनीतिक शक्ति को सुगमता से नष्ट किया जा सकता है। यूरोप और एशिया के पारस्परिक सम्बन्ध का मार्ग ईजिप्ट से उत्तर होकर जाता है। ईजिप्ट पर जिसका अधिकार होगा, वह सुगमता से इस मार्ग का नियन्त्रण करेगा। नैपोलियन स्वप्न ले रहा था कि ईजिप्ट को जीतकर मैं भारतवर्ष पर आक्रमण करूंगा। जिस प्रकार बहुत पुराने जमाने में सिकन्दर ने भारत पर हमला किया था, उसी प्रकार मै भी एक हाथी की पीठ पर बैठकर सारे भारत को जीत लूंगा। उन दिनों भारत में फ्रांसीसी और अङ्गरेज लोग विविध राजाओं का पक्ष लेकर, या विविध राजाओं को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर आपस

में शक्ति के लिये सघर्ष कर रहे थे। नैपोलियन ने टीपू सुलतान से भी पत्र व्यवहार किया था। भारतवर्ष की विजय कर वह पूर्वी ससार का स्वामी बनना चाहता था। वह उस चामत्कारिक तथा रहस्यमय कीर्ति को प्राप्त करना चाहता था, जिसे सिकन्दर के बाद किसी अन्य पाश्चात्य विजेता ने प्राप्त नहीं किया था। उसका खयाल था, कि यदि इन विजयों के सिलसिले में ही फ्रास के विरुद्ध यूरोपीय राज्यों का कोई नया गुट बना, तो उसका मुकाबला करने की सामर्थ्य मेरे सिवा और किसी में न होगी।। स्वाभाविक रूप से डाइरेक्टरी मुझे फ्रास की रक्षा करने के लिये निमन्त्रित करेगी और तब अपनी महत्त्वाकाक्षा को पूर्ण करने के लिये उपयुक्त अवसर आवेगा। तब फ्रास के रक्षक के रूप में वापिस आना होगा और अपना मनोरथ सुगमता से पूर्ण हो जायगा।

ईजिप्ट पर आक्रमण—डायरेक्टरी ने नैपोलियन की योजना को स्वीकृत कर लिया। इङ्गलैएड को परास्त करने का निस्सन्देह, यह उत्तम उपाय था। ४० हजार सैनिकों और एक शक्तिशाली जहाजी वेड़े को लेकर नैपोलियन ने ईजिप्ट के लिये प्रस्थान किया। नेल्सन के नेतृत्व में इङ्गलिश जल सेना ने फ्रास के वेड़े को परास्त करना चाहा। पर नैपोलियन बच गया, और ८ जुलाई १७९८ के दिन ईजिप्ट के प्रसिद्ध बन्दरगाह एलेग्जेन्ड्रिया पहुँच गया। पहली अगस्त को नील नदी के तट पर लड़ाई लड़ी गई। ईजिप्ट परास्त हो गया। ईजिप्ट को जीतने की योजना का परिज्ञान जब टर्कों की सरकार को हुआ, तो उसने फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर दिया। इसीलिये ईजिप्ट को विजय कर लेने के अनन्तर नैपोलियन ने टर्कों के साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस बीच में इङ्गलिश नौ सेनापति नेल्सन फ्रेञ्च जहाजी वेड़े को नष्ट करने मे व्यग्र था। उसे अपने प्रयत्न मे सफलता हुई। फ्रेञ्च वेड़ा पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया गया। नैपोलियन अपनी सेना के साथ ईजिप्ट में फस गया। अब वह सामुद्रिक मार्ग से फ्रास वापिस नहीं जा सकता था।

उसका फ्रास से सम्बन्ध टूट गया था। अब उसके सम्मुख एक ही मार्ग था। वह सीरिया और टर्की को जीतता हुआ एशिया माइनर के रास्ते फ्रास वापिस लौट सकता था। यह मार्ग कितना कठिन था, और इसमें उसे कितने राज्यों और शत्रुओं के साथ मुकाबला करना पड़ता था, इसकी कल्पना सुगमता के साथ की जा सकती है। पर विवश होकर उसे इसी मार्ग का आश्रय लेना पड़ा। टर्की फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर चुका था, इसलिये भी आवश्यक था कि वह उसके साथ लड़ाई लड़े।

सीरिया में पराजय—नैपोलियन ने पहले सीरिया पर आक्रमण किया। सीरिया उस समय तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत था। एकर नामक स्थान पर तुर्की सेनाओं के साथ नैपोलियन की बड़ी भारी लड़ाई हुई। इटालियन लोग टर्की की सहायता कर रहे थे। नैपोलियन परास्त हुआ। उसे वापिस लौटने के लिये वाधित होना पड़ा। फ्रेंच सेना ने भारी मुसीबत का सामना किया। तुर्की गिरोह उस पर एक तरफ से हमला करते थे, उधर सेना में महामारी फैल रही थी। आखिर नैपोलियन ईजिप्ट वापिस आया। यहा उसे समाचार मिला, कि फ्रास के खिलाफ यूरोपियन राज्यों का एक नया गुट तैयार हुआ है, फ्रास पर भयङ्कर आक्रमण की तैयारी हो रही है। नैपोलियन इसी समाचार की, इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था। इसे जानकर उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। उसने अपनी सेना की कोई भी परवाह नहीं की और अपने अच्छे अच्छे सैनिक कर्मचारियों के साथ गुप्त रूप से फ्रास के लिये प्रस्थान कर दिया। ९ अक्टूबर १७९९ के दिन वह फ्रास पहुँचा नैपोलियन के फ्रास वापिस होते ही जनता मे नवीन उत्साह का सञ्चार हो गया। लोगों को आशा बँध गई। वे इटली और आष्ट्रिया के विजेता, ईजिप्ट मे रहस्यपूर्ण कारनामे सम्पादित करने वाले, अजेय सेनापति को फिर से अपने बीच मे पाकर हर्ष से फूल उठे। अब समय आगया था,

मैदान तैयार हो चुका था—नैपोलियन अपनी महत्वाकाक्षा अब सुगमता से पूर्ण कर सकता था। राज्य क्रान्ति की जो लहर बस्तीय्य के ध्वन्स के साथ शुरू हुई थी, उसने अब एक नया रुख स्वीकृत किया था। क्राति का युग अब समाप्त होने लगा था—उसका स्थान लेरहा था नैपोलियन—वह नैपोलियन जो कि अपनी सेना को ईजिप्ट मे निराश्रित रूप में छोड़ कर अपनी वैयक्तिक महत्वाकाक्षा को पूर्ण करने के लिये फ्रास वापिस आया था।

ग्यारहवां अ याय

नैपोलियन का अभ्युदय

नैपोलियन का कुल—नैपोलियन बोनापार्ट का जन्म १५ अगस्त १७६९ को कोर्सीका द्वीप में हुआ था। यह द्वीप १७६८ तक जिनोआ की रिपब्लिक के अधीन था। नैपोलियन के जन्म से केवल एक वर्ष पूर्व ही इस पर फ्रांस का आधिपत्य स्थापित हुआ था। नैपोलियन के माता पिता इटालियन जाति के थे। उसके पुरखा सोलहवीं सदी मे इटली से कोर्सिका में आ बसे थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि नैपोलियन जाति और देश—दोनों दृष्टियों से फ्रेंच नहीं था। उसकी जन्मभूमि फ्रांस के अधीन थी और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये कोशिश कर रही थी। नैपोलियन के पिता का नाम कार्लो बोनापार्ट था। कहने को तो यह परिवार कुलीन श्रेणि का था, पर वस्तुतः इसके पास जमीन जायदाद का सर्वथा अभाव था। अन्य बहुत से कुलीन लोगों की तरह कार्लो बोनापार्ट का परिवार भी अब गरीब हो चुका था—कुलीनता तथा उच्चता की स्मृति ही शेष रह गई थी। कार्लो बोनापार्ट वकालत का पेशा करता था। वकालत से उसे इतनी आमदनी नहीं थी, कि अपने विशाल परिवार का खर्च सुगमता से चला सके। उसकी आठ सन्तानें थीं। इतने बड़े परिवार को पाल सकना उसके लिये बहुत कठिन बात थी। इसलिये उसने दो

बड़े लड़कों—जोसफ और नैपोलियन को फ्रास मे शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। जोसफ को पुरोहिताई का पेशा सिखाया गया और नैपोलियन को ब्रीन के सैनिक शिक्षणालय मे भर्ती करा दिया गया। सैनिक शिक्षा प्रारम्भ करने के समय नैपोलियन की आयु केवल १० वर्ष की थी। फ्रेञ्च भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान उसने फ्रास आकर ही प्राप्त किया था। उसकी मातृ-भाषा इटालियन थी।

सैनिक शिक्षा—ब्रीन के सैनिक शिक्षणालय मे नैपोलियन का जीवन बड़ी मुसीबत मे गुजरा। वहा के सभी विद्यार्थी उच्च कुलीन श्रेणी के तथा अमीर थे। वे नैपोलियन को बहुत तग करते थे, उसकी गरीबी पर मजाक उड़ाया करते थे। एक बार नैपोलियन ने अपने पिता को पत्र मे लिखा था—'ये बेशर्म लड़के मेरी गरीबी पर जिस ढग से मजाक उड़ाते हैं, उनसे मै थक गया हूं। ये लोग केवल सम्पत्ति मे ही मुझसे ज्यादा हैं। वास्तविक योग्यता मे ये लोग मेरा मुकाबला नही कर सकते।' इस शिक्षणालय में फ्रेञ्च विद्यार्थियों के साथ पढते हुए नैपोलियन मे अपनी मातृ-भूमि को स्वतन्त्र कराने की भावना भी निरन्तर प्रबल होती गई।

सैनिक शिक्षा समाप्त कर लेने पर नैपोलियन को सेना मे लेफ्टिनैन्ट के पद पर नियत किया गया। उसे विशेष उन्नति की कोई आशा नही थी। अभी तक फ्रास मे १६ वे लुई का एकतत्र राज्य कायम था। सब जगह कुलीनो और अमीरों की पूछ थी। नैपोलियन गरीब तथा साधारण स्थिति का आदमी था। उसकी सिफारिश करने वाला कोई प्रभावशाली आदमी न था। फिर वह उन्नति किस प्रकार कर सकता? इसी बीच मे उसके पिता की मृत्यु हो गई। वह गरीब परिवार—जिसके प्रत्येक व्यक्ति ने एक दिन राजा व रानी के पद तक पहुँचना था, जिसके समान सौभाग्यशाली परिवार सम्भवतः इतिहास मे अन्य कोई नही हुआ, कार्लो बोनापार्ट की मृत्यु से अब सर्वथा आश्रयहीन

हो गया था। इस अवस्था मे नैपोलियन के लिये आवश्यक था, कि वह कोर्सिका वापिस जाकर अपने परिवार की देखभाल करे। वह कोर्सिका लौट गया। वहा फ्रास के शासन के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र जारी थे। नैपोलियन मे भी अपने देश को स्वाधीन कराने की भावना प्रबल रूप मे विद्यमान थी। वह उन षड्यन्त्रकारियों मे शामिल हो गया।

राज्यक्रान्ति और नैपोलियन—जब फ्रास मे राज्यक्रान्ति हुई, तो नैपोलियन को अपनी उन्नति के लिये अच्छा मौका मिला। वह अपने परिवार सहित फ्रास वापिस लौट आया और वहा क्रान्तिकारी सेना मे सम्मिलित हो गया। उसने उच्च सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। फ्रास की सेना के पुराने कुलीन अफसर विदेशी शत्रुओं से जा मिले थे। कोई भी योग्य व्यक्ति इस स्थिति का उपयोग कर अच्छी उन्नति कर सकता था। नैपोलियन ने इस स्थिति से पूरा पूरा लाभ उठाया। वह जेकोबिन दल मे सम्मिलित हो गया। जैकोबिन दल की महत्ता के बढ़ने के साथ साथ नैपोलियन की सैनिक क्षमता भी क्रान्तिकारियों के सम्मुख आने लगी। उसे जो भी कार्य सौपा गया, सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। 'आतक के राज्य' के समय उसने अनेक विद्रोहों को शान्त करने में भाग लिया। पर नैपोलियन को विशेष उन्नति का अवसर तब मिला, जब डाइरेक्टरी की सरकार स्थापित हुई। डाइरेक्टरी का एक सदस्य डा० बर्रा उस पर मेहर्बान था। इसकी सहायता से उसने क्रान्ति के प्रमुख नेताओं से परिचय प्राप्त किया। पेरिस के बड़े लोगों में उसका आना जाना होने लगा। इसी समय नैपोलियन ने सेनापति बोहार्निस की विधवा श्रीमती बोहार्निस से विवाह किया। सेनापति बोहार्निस को 'आतक के राज्य' मे कतल किया गया था। उसकी विधवा अनुपम सुन्दरी तथा प्रभावशाली महिला थी। उसके साथ विवाह कर लेने से नैपोलियन का महत्व बहुत अधिक बढ गया। वह भी फ्रास के महत्व-पूर्ण और बड़े आदमियों में गिना जाने लगा। डाइरेक्टरी की सरकार

ने जब आस्ट्रिया पर विजय करने के लिये आक्रमण की योजना की, तो डा० बैर्रा के प्रयत्न तथा श्रीमती बोहार्निस के प्रभाव से उसे उत्तरीय इटली होकर आस्ट्रिया पर आक्रमण करने वाली सेना का प्रधान सेनापति नियत किया गया। इस इटालियन आक्रमण के समय नैपोलियन की आयु केवल २६ वर्ष की थी। वह ५ फीट २ इञ्च ऊँचा था। उसका शरीर पीला पतला सुकड़ा तथा देखने मे बहुत कमजोर मालूम होता था। इस पतले सुकड़े नौजवान को जिस सेना का सेनापतित्व दिया गया था, उसके अन्य बहुत से अफसर उसकी अपेक्षा बहुत अधिक आयु के तथा अनुभवी थे। पर नैपोलियन ने इस आक्रमण मे जिस वीरता तथा प्रतिभा का परिचय दिया, उससे वह अपनी सेना का हृदयेश्वर बन गया। इतना ही नही, सारा फ्रास और सारा यूरोप इस नौजवान की प्रतिभा से आश्चर्य चकित सा रह गया।

इटालियन आक्रमण—नैपोलियन ने जिस प्रकार इटालियन आक्रमण में सफलता प्राप्त की, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसके हृदय मे अभी से वे महत्वाकाक्षाये विद्यमान थीं, जिन्होंने आगे चलकर उसे सम्राट् पद तक पहुँचा दिया। वह डाइरेक्टरी के आधीन सेनापतिमात्र बने रहने से सन्तुष्ट नहीं रह सकता था। वह सम्राट बनना चाहता था। यही कारण है, कि जब मिलन की विजय की गई, तो नैपोलियन ने बाकायदा दरबार लगाया, मिलन के समीप एक सुन्दर स्थान पर नैपोलियन का शानदार दरबार लगा। फ्रेंच सेना के सब सेनापति तथा नायक निश्चित वर्दी पहनकर दरबारी तरीके से एकत्रित हुए। बीच मे ऊँचे सिंहासन पर नैपोलियन विराजमान हुआ। इटली के बहुत से बड़े बड़े वैभवशाली अमीर आदमी इस नौजवान विजेता के दर्शनों के लिये पधारे। नैपोलियन का एक दृष्टिपात उनके लिये अहोभाग्य की बात थी।

इस दरबार के सिलसिले में नैपोलियन ने एक बातचीत में कहा था—अब तक जो कुछ मैने किया है, वह तो कुछ भी नहीं है। यह तो एक शानदार सफलताओं का प्रारम्भ मात्र है। क्या तुम समझते हो, कि इटली मे जो विजय मैने प्राप्त की है, वे डाइरेक्टरी के वकीलों के लिये हैं ? क्या तुम समझते हो, कि मेरा उद्देश्य वस्तुतः रिपब्लिक की स्थापना है ? कैसा फिजूल खयाल है ? डाइरेक्टरी मुझ से सेना-पतित्व लेकर तो देखे, मालूम पड़ जायगा असली मालिक कौन है ? राष्ट्र को एक स्वामी की आवश्यकता है, पर वह स्वामी राज्य शास्त्र के सिद्धान्तों पर बहस करने वाला नहीं होनी चाहिये, अपितु शानदार कृत्यों से उसकी कीर्ति उज्ज्वल हुई होना चाहिये।

निस्सन्देह, नैपोलियन का यही राजनीतिक सिद्धान्त था। जिस समय वह राज्य क्रान्ति की विजय पताका आल्प्स की पर्वत माला पर फहरा रहा था, उस समय भी वह १६ वें लुई की तरह दरबार लगाने की फिकर मे था, उस समय भी वह रिपब्लिक का अन्त कर स्वय सम्राट् बनने का स्वप्न ले रहा था। कोर्सिका के एक गरीब वकील का लड़का इस छोटी सी उमर मे न केवल फ्रास अपितु सम्पूर्ण यूरोप का बादशाह बनने की धुन में था। उसकी यह आकाक्षा कितनी महान् थी, पर उसमे उसे सफलता भी कितने शानदार रूप मे प्राप्त हुई।

उत्तरीय इटली की विजय और आस्ट्रिया के साथ सन्धि कर चुकने के अनन्तर नैपोलियन फ्रास वापिस आया। पर अभी उपयुक्त समय नहीं आया था। वह ईजिप्ट चला गया। वहा बहुत सफलता प्राप्त नहीं हुई। एकर के मैदान में तुर्की सेनाओं ने उसे परास्त किया। पर दूर बैठे हुए फ्रेञ्च लोगों के लिये ईजिप्ट मे वह असाधारण रूप से उज्वल कारनामे कर रहा था। जब फ्रास के विरुद्ध यूरोपियन राज्यों का नया गुट तैयार हुआ, तो नैपोलियन अपनी सेना को इकला छोड़कर

स्वय वापिस चला आया। जिस अवसर की वह प्रतीक्षा कर रहा था, वह अब उपस्थित हो गया था।

डाइरेक्टरी का अन्त—यूरोपियन राज्यों का मुकाबला करने के लिये फ्रास को एक योग्य सेनापति की आवश्यकता थी। डाइरेक्टरी के वकील और भद्रपुरुष इस विकट परिस्थिति मे फ्रास की रक्षा नही कर सकते थे। डाइरेक्टरी का शासन भी सर्वथा असन्तोष जनक था। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन के नेतृत्व मे डाइरेक्टरी का अन्त करने के लिये एक षड्यन्त्र तैयार किया गया। व्यवस्थापन विभाग की दोनों सभाओं मे अनेक सदस्य इन षडयन्त्रकारियों के साथी तथा सहायक थे। यह निश्चय किया गया, कि नैपोलियन अपने विश्वास पात्र सिपाहियों के साथ 'पाच सौ की सभा' पर हमला करे, और वहा जाकर अपने विरोधियों को बाहर निकाल दे। ऐसा ही किया गया। ९ नवम्बर १७९९ के दिन जब 'पाच सौ की सभा' का अधिवेशन हो रहा था, नैपोलियन ने अपने सिपाहियों के साथ सभा भवन को घेर लिया। विरोधियों को एक एक करके बाहर कर दिया गया। केवल वे ही लोग बच गये, जो नैपोलियन के साथी वा पक्षपाती थे। लूसियन बोन पार्ट के—यह नैपोलियन का भाई था और पाच सौ की सभा का अन्यतम सदस्य था—सभापतित्त्व मे 'पाच सौ की सभा' का या उसके खण्डहर का अधिवेशन किया गया और निश्चय हुआ कि डाइरेक्टरी की सरकार का अन्त कर शासनशक्ति तीन 'कान्सलों' के हाथ मे दे दी जाय, प्रधान कान्सल नैपोलियन बोनापार्ट को बनाया जाय और ये तीनों कान्सल देश के लिये एक नवीन शासन विधान को तैयार करे। डाइरेक्टरी का अन्त हो गया, और नैपोलियन के लिये अपनी महत्त्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने का द्वार खुल गया।

नवीन शासन विधान—नवीन शासन विधान का निर्माण करने मे बहुत देर नहीं लगी। यह नया विधान मुख्यतया नैपोलियन की कृति

था। इसमे चार सभाओं की रचना की गई। एक सभा का कार्य कानून प्रस्तावित करना था, दूसरी सभा उस पर बहस करती थी। तीसरी सभा उस पर वोट देने के लिये थी और चौथी सभा यह निर्णय करती थी कि कानून शासन विधान के अनुकूल है या प्रतिकूल। इन सभाओं मे सब से प्रधान स्थान पहली सभा को था, जिसे राज्य परिषद् कहते थे। यह केवल कानून प्रस्तावित ही नही करती थी, साथ ही कानूनों का प्रयोग करना, शासन करना, विदेशी मामलों तथा सेना का प्रबन्ध करना भी इसी का कार्य था। नैपोलियन बोनापार्ट स्वयं इसका सभापति बना और इसमे सब दलों के बुद्धिमान् लोगो को रखा गया। 'कौसलों' की व्यवस्था पहले के समान ही रखी गई और नैपोलियन को ही प्रधान कौसल बनाया गया।

केन्द्रीय सरकार मे इन परिवर्त्तनों के अतिरिक्त प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों के स्वरूप मे भी बहुत से परिवर्त्तन किये गये। नैपोलियन राजशक्ति को एक केन्द्र मे केन्द्रित करना चाहता था। वह सारे देश का शासन पेरिस से ही सञ्चालित करना चाहता था। इसीलिये उसने प्रत्येक प्रान्त मे केन्द्रीय सरकार की तरफ से एक एक सूबेदार को नियत करने की व्यवस्था की। इसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त के अन्य छोटे विभागों मे नायब सूबेदार नियत किये गये। नगरों के मेयर यथा पुलीस के प्रधान कर्मचारी तक केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत किये जाने लगे। और क्योंकि केन्द्रीय सरकार में वास्तविक शक्ति प्रधान कौसल अथवा नैपोलियन के पास थी, अतः इन सब अफसरों की नियुक्ति उसी के हाथों मे आ गई। देश के वास्तविक शासन मे लोकसत्तावाद के तत्त्व नष्ट हो गये, फिर से पुराने राजसत्ता के युग की स्थापना का सूत्रपात हुआ। राज्यक्रान्ति का प्रमुख तत्त्व यही था कि राज्यशक्ति को लोगों के हाथों मे दिया जाय, उनका शासन कौन करे और किस प्रकार करे—इसका निर्णय वे स्वय करे। पर १७९९ के इस नये शासन विधान ने इस सब पर पानी फेर

दिया। प्रान्तीय और स्थानीय सभाओं का महत्व लुप्त हो गया। वास्तविक शक्ति इन सूबेदारों और नायब सूबेदारों के हाथ में आ गई, जो प्रधान कौंसल के प्रति जिम्मेवार थे, जनता के प्रति नहीं।

जनता द्वारा स्वीकृति—नैपोलियन शासन के मामलों मे जनता की इच्छा को कोई महत्व न देता था। वह कहता था, मामूली लोग राज-काज के मामलों में जानते ही क्या हैं ? यहा तक उसमें और १६ वें लुई में कोई भेद न था। पर उसका यह भी खयाल था कि शासन का प्रकार क्या हो—इस विषय में सर्वसाधारण को अपनी राय प्रगट करने का अधिकार है। यहा पर वह १६ वे लुई से मतभेद रखता था। अपने विचारों के अनुसार उसने आवश्यक समझा, कि नये शासन विधान को जनता द्वारा स्वीकृत करा लिया जावे। जनता की सम्मति ली गई। तीस लाख से अधिक लोगों ने नये शासन विधान के पक्ष में वोट दिया। विरोध में सम्मति देने वालों की सख्या १५६२ थी। यह नहीं समझना चाहिये, कि अधिकाश जनता इस शासन विधान से सतुष्ट थी। बहुत से लोग इसमें परिवर्तन चाहते थे, पर उन्हें तो केवल पक्ष में या विपक्ष में वोट देना था। इसे सर्वथा अस्वीकृत कर देने की अपेक्षा वे पक्ष में वोट देना अधिक अच्छा समझते थे। बहुत से प्रश्न ऐसे होते हैं, जिन पर 'हा' या 'नहीं' में सम्मति नहीं दी जा सकती। शासन विधान तो मुख्यतया इसी तरह का विषय है। नैपोलियन की इस सफलता का प्रधान कारण यह है, कि लोग एक स्थिर सरकार चाहते थे। अव्यवस्था और अस्थिरता से वे ऊब चुके थे। उन्हें आशा थी कि नैपोलियन जैसा बहादुर आदमी जहा विदेशी शत्रुओं को परास्त करने में सफल होगा, वहा देश में भी व्यवस्था कायम रख सकेगा।

नैपोलियन प्रधान कौंसल बन गया। वह वस्तुतः देश का राजा था, पर नाम में नहीं। नैपोलियन इससे सन्तुष्ट नहीं रह सकता था। उसकी हार्दिक महत्त्वाकाक्षा के पूर्ण होने में अभी कुछ कसर थी।

बारहवां अध्याय

प्रधान कान्सल के रूप में नैपोलियन का शासन

यूरोपियन राज्यों का नया गुट—फ्रांस के खिलाफ यूरोपियन राज्यों का जो नया गुट बना था, जिसके कारण नैपोलियन को अपने अभ्युदय का यह सुवर्णावसर मिला था; उसमें इङ्गलैण्ड, रशिया, आस्ट्रिया और टर्की ये चार राज्य शामिल थे। यह नया गुट क्यों बना था, इस बात की व्याख्या की जरूरत है। इसें भली भाति समझने के लिये डाइरेक्टरी के शासन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करने की आवश्यकता होगी।

नये रिपब्लिकन राज्यों की स्थापना—कैम्पो फोर्मियो की सन्धि के बाद (अक्टूबर १७९७) फ्रांस यूरोप के किसी भी देश के साथ युद्ध में व्यापृत न रहा था। उसस मय में भी अगर कोई शक्ति फ्रांस से सघर्ष कर रही थी, तो वह थी इङ्गलैण्ड। पर इङ्गलैण्ड के युद्धों का यूरोप से कोई सम्बन्ध न था। इस प्रकार यूरोपियन राज्यों की फ्रांस से पूर्ण सन्धि थी। पर इस बीच में भी—इस सन्धि और शान्ति के काल मे भी—फ्रांस के क्रान्तिकारी सिद्धान्त समीप के अन्य देशों में क्रान्ति की भावना फैला रहे थे। फ्रेंच रिपब्लिक के नमूने पर समीप के राज्यों मे नवीन शासन विधानों की स्थापना हो रही थी। उत्तरीय इटली मे किसल्पाइन रिपब्लिक की

स्थापना कर दी गई थी। नीदरलैण्ड से राजतन्त्र नष्ट कर रिपब्लिक बना दी गई थी। इस नई रिपब्लिक का नाम बैटेवियन रिपब्लिक रखा गया। फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने उत्तरी इटली के एक अन्य प्राचीन राज्य जिनोआ में क्रान्ति करा के वहा भी लिगूरियन रिपब्लिक के नाम से एक नये लोकतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। नई रिपब्लिकों का सिलसिला यहीं पर खतम नहीं हुआ। नैपोलियन का भाई जोसफ बोनापार्ट रोम में फ्रांस का राजदूत था। उसके उकसाने पर रोम में विद्रोह हुआ। वहा के क्रान्तिकारी लोग पोप के शासन के खिलाफ उठ खड़े हुए। खुल्लम-खुल्ला गदर हो गया। इस गदर में एक फ्रेंच सेनापति मारा गया। फ्रेंच सेनापति का मारा जाना डाइरेक्टरी के लिये काफी अच्छा बहाना था। उन्होंने एक सेना रोम में पोप के शासन का अन्त कर रिपब्लिक स्थापित करने के लिये रवाना कर दी। इस सेना की मदद से रोम में रिपब्लिक की स्थापना की गई। पोप का अपमान किया गया। धार्मिक तथा राजकीय चिह्नों को छीन कर उसे रोम से बाहर निकाल दिया गया। इस प्रकार रोमन रिपब्लिक स्थापित हो गई। स्विट्जरलैंड में भी इसी ढङ्ग से फ्रेञ्च नमूने पर हेल्वटिक रिपब्लिक कायम की गई। इस देश में पहले भी राजतन्त्र शासन विद्यमान न था। स्विट्जरलैण्ड अनेक छोटे छोटे प्रदेशों में, जिन्हें कैण्टन कहा जाता है, विभक्त था। प्रत्येक कैण्टन की अलग अलग सरकार थी और कुछ कैण्टन अन्य अधिक शक्तिशाली कैण्टनों के अधीन थे। इस प्रकार इन विविध कैण्टनों में एक विशेष प्रकार का सगठन भी बना हुआ था। शासन कुलीन श्रेणियों के हाथ में था। कुछ आन्तरिक झगड़ों से लाभ उठाकर फ्रेञ्च सेना ने स्विट्जरलैण्ड पर आक्रमण किया और वहा के शासन का अन्त कर हेल्वटिक रिपब्लिक की स्थापना कर दी। नेपल्स में भी यही हुआ। पोप के राज्य में रिपब्लिक की स्थापना से नेपल्स का राजा बहुत भयभीत हो गया था। उसका खयाल था, कि यदि अपनी राजगद्दी को

कायम रखना है, तो रोम में फिर से पोप के आधिपत्य को स्थापित कराना चाहिये। इसलिये उसने इङ्गलैण्ड के साथ मिल कर फ्रास के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। फ्रास की एक सेना ने नेपल्स पर आक्रमण किया' बात की बात मे नेपल्स परास्त हो गया। वहा भी पुराने राजतन्त्र राज्य का अन्त कर एक नवीन रिपब्लिक की स्थापना की गई और उसका नाम पर्थेनोपियन रिपब्लिक रखा गया। इसके कुछ ही दिनों बाद फ्रास की सेनाओं ने पीडमौन्ट पर आक्रमण किया। पीडमौन्ट परास्त हो गया। वहा का राजा भाग कर सार्डिनिया के द्वीप मे चला गया। पीडमौन्ट पर भी फ्रास का आधिपत्य कायम हो गया।

ये सब घटनाये डाइरेक्टरी के शासन काल मे हुई थी। इनका परिणाम यह हुआ, कि फ्रास की शक्ति बहुत अधिक बढ गई। हालैंड, स्विट्जरलैंड और सम्पूर्ण इटली पर फ्रास का आधिपत्य हो गया। ये जो नई रिपब्लिक बनी थीं, वे पूर्णतया फ्रास के प्रभाव मे थीं। फ्रास सर्वत्र विजयी हो रहा था।

नये गुट का निर्माण—फ्रास की यह असाधारण सफलता अन्य यूरोपीय राज्यों को सहन न हुई। इसके अतिरिक्त, क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का इस प्रकार विस्तार एकतन्त्र राजाओं के लिये भयंकर खतरा था। यही कारण है कि इङ्गलैंड अन्य अनेक राज्यो को फ्रास के खिलाफ लड़ने के लिये सुगमता से तैयार कर सका। रशिया का जार पाल (राज्यारोहण काल १७९६ ई०) क्रान्ति का कट्टर दुश्मन था। इङ्गलैंड के चतुर प्रधान-मन्त्री पिट ने इस शक्तिशाली सम्राट को फ्रास के खिलाफ लड़ने के लिये तैयार कर लिया। निश्चय हुआ, कि जार अपनी सेनाये फ्रास से युद्ध करने के लिये भेजेगा और उनका खर्च इङ्गलैंड देगा। फ्रास को कुचलने के इस भगीरथ प्रयत्न मे सहायता देने में आस्ट्रिया को हार्दिक खुशी थी। वह भी इङ्गलैंड और रशिया के साथ सम्मिलित होगया। नैपोलियन

के इजिप्शियन युद्धों के कारण टर्की के सुलतान ने फ्रांस के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर दिया थां—इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस प्रकार डाइरेक्टरी के शासनकाल मे ही इन चार राज्यों का नया गुट फ्रास के विरुद्ध बन गया था। इसी गुट का मुकाबला करने में डाइरेक्टरी की असमर्थता पाकर नैपोलियन ने षड्यन्त्र किया था और अब प्रधान कान्सल के पद पर अधिष्ठित होकर नैपोलियन ने सबसे पहले इसी का मुकाबला करना था।

युद्ध का प्रारम्भ—यूरोपियन राज्यों का यह नया गुट फ्रास के लिये बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ। एक दम परिस्थिति ने पलटा खाया। जो फ्रास पहले सर्वत्र विजयी और सफल हो रहा था, वह अब सब तरफ से आक्रान्त हो गया। आस्ट्रियन सेनाओं ने फ्रास को दक्षिणीय जर्मनी में परास्त किया। रशियन सेनापति सुवेराफ ने आस्ट्रिया की सहायता से उत्तरीय इटली से फ्रैंच सेनाओं को निकाल बाहर कर दिया। इटली से फ्रास का कब्जा उठ गया। इसके बाद सुवेराफ ने स्विट्जरलैण्ड पर हमला किया। उसे आशा थी, कि एक अन्य रशियन सेना जो उत्तर की तरफ से स्विट्जरलैण्ड को फ्रेञ्च अधीनता से मुक्त करने के लिये आक्रमण कर रही थी, उसकी सहायता उसे प्राप्त हो जावेगी और ये दोनों रशियन सेनाये मिलकर स्विट्जरलैण्ड को स्वतन्त्र करा देंगी। पर उसे निराश होना पड़ा। जिस रशियन सेना ने उत्तर की तरफ से हमला किया था, वह फ्रेंच लोगों द्वारा परास्त की जा चुकी थी। सुवेराफ बहुत भयकर कठिनाइयों का मुकाबला कर स्विट्जरलैण्ड पहुचा था। उसे आल्प्स पर्वतमाला के विकट दर्रों को लाघना पड़ा था। इतनी कठिनाइयों का मुकाबला कर जब उसे निराश होना पड़ा, तो रशिया का जार घबरा गया। उसने समझा कि आस्ट्रिया की बेईमानी और साजिशे रशियन सेना की असफलता की हेतु है। उसने आस्ट्रिया से सब सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया और सुवेराफ को वापिस बुला लिया।

नैपोलियन द्वारा सन्धि का प्रयत्न—इसी बीच में फ्रास में डाइरेक्टरी का पतन हुआ और नैपोलियन के एकाधिकार का सूत्रपात हुआ। प्रधान कान्सल नैपोलियन ने इङ्गलैंड के राजा ज्यार्ज तृतीय और आस्ट्रियन सम्राट फ्रासिस द्वितीय को वैयक्तिक व पत्र भेजे। उसने लिखा—युद्ध करने से क्या लाभ है। यूरोप के पवित्र और धार्मिक सम्राट आपस मे क्यों लड़े ? व्यापार, व्यवसाय, सुख समृद्धि और शान्ति के महान् लाभों को खोखले बड़प्पन के लिये क्यों कुर्बान किया जाय ? नैपोलियन के इस सन्देश पर इङ्गलैण्ड ने कोई ध्यान नहीं दिया। प्रधानमन्त्री पिट ने उत्तर मे लिखा, कि युद्ध की वास्तविक उत्तरदायिता फ्रास पर है। यदि फ्रास को सचमुच शान्ति की इच्छा है, तो उसका एकमात्र उपाय यह है कि फिर से बोर्बों राजवश का एकच्छत्र शासन स्थापित किया जाय। आस्ट्रिया का उत्तर भी इसी प्रकार निराशाजनक था। नैपोलियन ने शान्ति के लिये जो हाथ बढाया था, इन दोनों राज्यों ने उसे घृणापूर्वक ठुकरा दिया। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन ने युद्ध के लिये बड़े जोर से तैयारी शुरू कर दी।

आस्ट्रिया की पराजय—आस्ट्रिया पर दो तरफ से आक्रमण करने की योजना की गई। सेनापति मूरो को र्‌हाइन की तरफ से आक्रमण के लिये भेजा गया। नैपोलियन ने स्वय आल्प्स की विकट और दुर्गम पर्वत माला को पार कर सीधा आस्ट्रिया पर हमला करने का निश्चय किया। आस्ट्रिया पर हमला करने का यह बहुत ही विकट मार्ग था। सम्भवतः, प्रसिद्ध कार्थेजियन सेनापति हैनीबाल के बाद किसी अन्य सेनापति ने इस मार्ग का अवलम्बन करने का साहस नहीं किया था। उस समय में आल्पस की पर्वत माला पर कोई सड़क विद्यमान नहीं थी। इसलिये मोटे मोटे वृक्षों के तनों को खोखला कर उनमे तोपों को बन्द किया गया, और इस प्रकार वृक्षों के तनो को लुढ़खा लुढ़खा कर आल्पस को पार किया गया। आस्ट्रियन लोगों को स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी,

कि आल्पस की दुर्गम पर्वत माला को पार कर कोई सेना उन पर आक्रमण कर सकती है। जब नैपोलियन आस्ट्रिया के मैदान में अपनी सेना सहित प्रवेश कर गया, तो उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। मरेन्गो नामक रणक्षेत्र मे १४ जुलाई सन १८०० के दिन भयङ्कर लड़ाई हुई। नैपोलियन की विजय हुई। आस्ट्रियन सेना बुरी तरह परास्त हो गई। दूसरी तरफ सेनापति मूरो भी निरन्तर आगे बढ रहा था। होहनलिएडन नामक स्थान पर उसने आस्ट्रियन सेना को परास्त किया। इन दो पराजयों का परिणाम था, कि आस्ट्रिया को सन्धि के लिये प्रार्थना करने को बाधित होना पड़ा। आखिर ९ फरवरी १८०१ को फ्रास और आस्ट्रिया मे सन्धि हो गई। यह सन्धि लूनविल की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्रधानतया कैम्पोफौर्मियो की सन्धि की शर्तों को ही फिर से दुहराया गया। आस्ट्रियन नीदरलैण्ड पर फ्रास का अधिकार स्वीकृत किया गया। बैटेवियन, हैल्वटिक, लिगूरियन, और किसल्पाइन रिपब्लिको को पुनः सगठित किया गया और इनकी फ्रास के अधीन सत्ता को आस्ट्रिया ने स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त, राइन नदी के बाये तट पर भी फ्रास के अधिकार को स्वीकृत किया गया। लूनविल की इस सन्धि से फ्रास की स्थिति बहुत ऊँची हो गई। यूरोपियन राज्यों के दूसरे गुट ने उस को कुछ नुकसान पहुँचाया था, वह सब दूर होगया।

आमीन की सन्धि—आस्ट्रिया के साथ सन्धि हो जाने पर अन्य राज्यों से सन्धि का मार्ग साफ हो गया। रशिया तो पहले ही आस्ट्रिया से नाराज होकर युद्ध से पृथक् हो गया था। इङ्गलैण्ड की शक्ति विशेष रूप से समुद्र में थी। ईजिप्ट में विद्यमान फ्रेञ्च सेना को (वह सेना जिसे लेकर नैपोलियन ईजिप्ट की विजय के लिये गया था, और जिसे निराश्रय छोड़कर वह स्वय डाइरेक्टरी का अन्त करने के लिये फ्रास चला आया था) इङ्गलिश जहाजी बेड़ा परास्त कर चुका था। अब और अधिक युद्ध जारी रखना निरर्थक था। फ्रास और इङ्गलैण्ड मे भी

आखिरकार सन्धि हो गई, जो कि आमीन की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। फ्रांस और इङ्गलैण्ड में आठ साल से निरन्तर युद्ध जारी था। दोनों राज्य अपनी सामुद्रिक प्रभुता तथा साम्राज्य विस्तार के लिये संघर्ष कर रहे थे। पिट फ्रांस का कट्टर शत्रु था। वह फ्रांस के पतन में ही इङ्गलैण्ड का अभ्युदय देखता था। १८०२ में पिट प्रधानमन्त्री न रहा। उस के पतन के अनन्तर ही फ्रांस के साथ सन्धि सम्भव हो सकी। आमीन की इस सन्धि के अनुसार इङ्गलैण्ड ने फ्रांस की नवीन सरकार की सत्ता को स्वीकार किया। सीलोन और ट्रिनिडाड के अतिरिक्त अन्य सब फ्रेञ्च उपनिवेश जो कि पिछले युद्धों में इङ्गलैण्ड ने फ्रांस से जीत कर अपने आधीन कर लिये थे—फ्रांस को वापिस दे दिये गए। लूनविल की सन्धि की सब शर्तों को इङ्गलैण्ड ने स्वीकार किया। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के बाद अब पहला अवसर था, जब कि यूरोप में लड़ाई बन्द होकर शान्ति की स्थापना हुई थी।

नैपोलियन का विधायक कार्य—यूरोपियन राज्यों से युद्ध की समाप्ति के पश्चात नैपोलियन ने अपनी शक्ति का उपयोग फ्रांस में व्यवस्था और शान्ति को स्थापित करने के लिये किया। नैपोलियन केवल अनुपम योद्धा और विजेता ही नहीं था, विधायक कार्यों में भी उसकी असाधारण शक्ति और क्षमता प्रगट हुई थी। क्रान्ति के कारण फ्रांस में पुराने जमाने का तो अन्त हो गया था, पुरानी संस्थायें नष्ट भ्रष्ट होगई थीं पर नवीन रचना और नवयुग की स्थापना का कार्य अभी तक नहीं किया जासका था। रिपब्लिक के समय में भी इसके लिये प्रयत्न किया गया। पर आन्तरिक और वाह्य युद्धों के कारण क्रान्तिकारियों को इसके लिये उपयुक्त अवसर नहीं प्राप्त हो सका। अब इतने समय बाद इन युद्धों का अन्त हुआ था। अब इस बात का अवसर आया था, कि नये युग की स्थापना की जाय। इसमें सन्देह नहीं, कि नैपोलियन ने यह कार्य पर्याप्त सफलता के साथ सम्पन्न किया। नैपोलियन बाहर से

यही प्रदर्शित करता था, कि वह राज्य क्रान्ति के सिद्धान्तों को ही क्रिया में परिणित कर रहा है। स्वाधीनता, समानता, और भ्रातृभाव—के उदात्त सिद्धान्तों का ही उसने अनुसरण करना है। क्रान्ति की नई कृतियों—रिपब्लिक, मनुष्यमात्र को मताधिकार, सामाजिक समता आदि को उसने अक्षुण्ण रखना है। पर मुह से यह कहते हुए भी वस्तुतः नैपोलियन राजनीतिक स्वाधीनता की जड़ पर कुठाराघात कर रहा था। वह शासन और व्यवस्थापन की सम्पूर्ण शक्ति को अपने ही हाथों में रखना चाहता था। और तो और रहा, न्यायालय भी वस्तुतः उसी के कब्जे मे थे। पुलिस भी उसके इशारों पर नाचती थी। कानूनों का इस ढङ्ग से प्रयोग किया जा रहा था, मानों फ्रास में फौजी कानून जारी हो। परन्तु बाहर से लोकतन्त्र शासन के सम्पूर्ण ढाचे को कायम रखा गया था। बाहरी शरीर लोकतन्त्र और रिपब्लिक का था। पर असली शासन एक व्यक्ति की इच्छा पर आश्रित बन गया था। नैपोलियन का विश्वास था, कि फ्रास को एक शक्तिशाली और मजबूत शासन की जरूरत है, जो कि देश में व्यवस्था और शान्ति स्थापित कर सके। निस्सन्देह, नैपोलियन का यह विचार ठीक था। पुराने मतभेद, पार्टीबन्दी और झगड़ों का अन्त करने के लिये उसने सब दलों के लोगों को एक समान रूप से राजनीतिक पद दिये। देश से बहिष्कृत कुलीन श्रेणी के तथा उच्च पुरोहित श्रेणी के लोगों को फिर से वापिस आने की अनुमति दी। एप्रिल १८०२ मे क्रान्ति के विरुद्ध अपराध करने वालों को एक सार्वजनिक उद्घोषणा द्वारा क्षमा प्रदान की गई, और इसके परिणाम स्वरूप ४० हजार से अधिक परिवार फ्रास वापिस लौट आये। क्रान्ति के समय की बहुत सी बातों को हटा दिया गया। अब प्रत्येक आदमी के लिये यह आवश्यक नहीं रह गया, कि वह दूसरे को 'नागरिक'—इस शब्द से ही सम्बोधन करे। अब कुल और स्थिति के अनुसार 'श्रीमान्' 'हजूर' आदि शब्दों का पुनः प्रयोग होने लगा।

नैपोलियन के रहन सहन में भी अन्तर आने लगा। टुइलरी के राज-प्रासाद मे फिर रौनक, शानशौकत और धूमधाम नजर आने लगी। बोर्बों वश के राजाओं का स्थान कोर्सिका के गरीब वकील के लड़के ने ले लिया। कलेवर दूसरा था, पर आत्मा वही थी। नये रूप में फिर से बोर्बों ढग का एकतन्त्र राज्य फ्रास में स्थापित हो गया। फ्रास ने क्रांति की ओर जो पग बढ़ाया था, वह मार्ग में ही रुक गया। निस्सन्देह, फ्रास जहा पहले विद्यमान था, वहा से आगे बढ़ गया था। पर उसने जो ऊँची उड़ान उड़नी चाही थी, उसमें वह असफल रहा था। वह तेजी से आगे बढा था—पर अपने उद्देश्य तक न पहुँच कर रास्ते में ही रह गया था। मानवीय उन्नति का यही ढग है। मनुष्य जाति छलांग मारकर उन्नति नहीं करती है, वह धीरे धीरे कदम बढा कर आगे बढती हे। 'आतङ्क के राज्य' में रोबस्पियर और हैबर्ट फ्रास को जहा तक खींच ले गये थे, वहा वह टिक नहीं सका। वह पीछे लौट आया—पर इसमें सन्देह नहीं, कि वह लौटकर उस जगह तक नहीं गया, जहा कि लुई १६ वें के समय में विद्यमान था। नया समुत्तुलन स्थापित हो गया—पर पुराने और नये के बीच में, बोर्बों शासन और रिपब्लिक के मध्यवर्त्ती स्थान पर।

नैपोलियन विधान—नैपोलियनके विधायक कार्यों मे सबसे मुख्य स्थान उसके 'विधान' का है। यह नैपोलियन—विधान के नाम से प्रसिद्ध है। क्रान्ति से पूर्व फ्रास मे बहुत प्रकार के विधान प्रचलित थे। क्रान्ति ने इन सब को नष्ट कर सम्पूर्ण फ्रास मे एक ही क़ानून को प्रचलित करने का प्रयत्न किया था। इसी उद्देश्य से क्रान्तिकारी सरकारों ने अनेक नये क़ानूनों का निर्माण किया था। परन्तु ये सब कानून किसी एक विधान में संगठित नहीं थे। इसलिये नैपोलियन ने एक कमीशन नियत किया, जिसको कि इन सम्पूर्ण कानूनों को संग्रहीत कर एक व्यवस्थित विधान तैयार करने का कार्य सुपुर्द किया गया। नवीन विधान के

मसविदे को राज्यपरिषद् के सम्मुख पेश किया गया। कुछ परिवर्तनों के साथ यह स्वीकृत हो गया। फ्रास के वर्तमान कानून का मुख्य आधार यह नैपोलियन-विधान ही है। केवल फ्रास में ही नही, परन्तु होलैण्ड, बेल्जियम, पश्चिमी और दक्षिणी जर्मनी, इटली और लुईसियेना के राज्यों मे भी प्रचलित कानून इसी विधान पर मुख्यतया आश्रित हैं। इसका कारण यह है, कि उस समय मे इन देशों पर भी फ्रास का आधिपत्य था और इनमे भी यही विधान प्रचलित किया गया था। यूरोप के अन्य देशों पर भी इस विधान का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

धार्मिक नीति—नैपोलियन का अपना धर्म कोई नहीं था। वह ईजिप्ट मे मुसलमान था, और फ्रास मे रोमन कैथोलिक। वह जानता था, कि फ्रास की अधिकाश जनता कैथोलिक धर्म को मानने वाली है। इसलिये बुद्धिमत्ता इसी में है कि स्वय भी कैथोलिक धर्म का अनुसरण किया जावे। क्रान्ति के समय मे चर्च में पूर्णतया अव्यवस्था मच गई थी। नैपोलियन समझता था कि जनता की सहानुभूति को प्राप्त करने के लिये उसके धार्मिक विश्वासों का सम्मान करना आवश्यक है। इसीलिये उसने कैद में पड़े हुए पादरियों को स्वतन्त्र कर दिया। जिन्हें देश निकाला दिया गया था, उन्हें फिर से फ्रास लौट आने की अनुमति दी। रविवार को फिर से महत्त्व दिया गया। क्रान्ति के समय मे जो नई छुट्टिया चली थीं, उन सब को हटा दिया गया। केवल १४ जुलाई, जो कि बस्तीय्य के जेल के ध्वस का दिन था, तथा २२ सितम्बर को—जोकि रिपब्लिक की स्थापना का दिन था, सार्वजनिक छुट्टी के तौर पर कायम रखा गया। क्रान्ति के समय की शेष सब छुट्टियों को हटाकर फिर से पुरानी धर्म पर आश्रित छुट्टियों को जारी किया गया। यह सब जनता की सहानुभूति को प्राप्त करने के लिये था।

कान्कार्डेट—रोमन कैथोलिक चर्च की पुनः स्थापना करने के लिये सितम्बर १८०१ में पोप से बाकायदा सन्धि की गई। यह सन्धि कान्कार्डेट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कान्कार्डेट में उद्घोषित किया गया कि फ्रांस की अधिकांश जनता रोमन कैथोलिक धर्म को मानने वाली है। अतः फ्रांस में इसी धर्म को राजकीय धर्म स्वीकृत किया जाना चाहिये। बिशप तथा चर्च के अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रधान कान्सल द्वारा की जायेगी, पर उसके लिये पोप से स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। बिशप तथा अन्य पुरोहितों को राज्य की तरफ से वृत्ति दी जायेगी। सब पुरोहितों के लिये आवश्यक होगा कि वे रिपब्लिक के शासन विधान के प्रति भक्ति की शपथ लें। चर्च की सम्पूर्ण सम्पत्ति क्रान्ति के समय में राज्य ने छीन ली थी। निश्चय हुआ कि जो सम्पत्ति अभी बेची नहीं गई है, वह चर्च के सुपुर्द कर दी जाय। पर जो सम्पत्ति किसी व्यक्ति को बेच दी गई है, उसको न छेड़ा जाय। इस सन्धि के अनुसार राज्य और चर्च को पृथक् नहीं रहने दिया गया। चर्च भी एक प्रकार से राज्य के ही नीचे आगया। यद्यपि नाम मात्र को पोप का आधिपत्य कायम रखा गया था, और बिशप आदि की नियुक्ति के लिये भी पोप की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक था—पर ये सब बातें नाम को ही थीं। वस्तुतः चर्च पर प्रधान कान्सल का—राज्य का ही अधिकार कायम हो गया था। इस प्रकार यद्यपि ऊपर से रोमन कैथोलिक चर्च का ढंग क्रान्ति से पहले जमाने का सा ही था—पर असल में उसमें भारी परिवर्तन आ गया था। अब न चर्च के न्यायालय रहे थे, न चर्च के पृथक् टैक्स। अब चर्च राज्य का प्रतिद्वन्द्वी न था, अब वह राज्य के अधीन एक संस्था मात्र था। सम्भवतः, नैपोलियन चर्च के इस पुनरुद्धार का भी पक्षपाती नहीं था। पर जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये इसकी आवश्यकता थी और इसीलिये उसने निस्संकोच भाव से इसे पुनः स्थापित किया।

शिक्षा प्रसार—शिक्षा के प्रसार के लिये भी नैपोलियन ने विशेष रूप से प्रयत्न किया। प्रत्येक नगर मे शिक्षणालयों की स्थापना की गई। शिक्षकों को राज्य की ओर से वेतन दिया जाने लगा। शिल्प और व्यवसाय के लिये विद्यालय खोले गये। पेरिस के विश्वविद्यालय का पुनः संगठन किया गया। सब शिक्षणालयों मे राजभक्ति की शिक्षा देने के लिये विशेषरूप से जोर दिया गया। विद्या और शिक्षा के प्रसार के लिये भरसक कोशिश की गई।

इस प्रकार नैपोलियन निरन्तर फ्रास को सगठित तथा व्यवस्थित करने में प्रयत्नशील रहा। परन्तु उसका वास्तविक ध्यान अपनी महत्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने में था। वह एक रिपब्लिक के प्रधान कान्सल के पद से सन्तुष्ट नही हो सकता था। वह सम्राट होना चाहता था और अपनी इस आकाक्षा को पूर्ण करने मे उसे देर नहीं लगी।

तेरहवां अध्याय

सम्राट नैपोलियन का शासन

नैपोलियन का सम्राट बनना—नैपोलियन सम्राट् बनना चाहता था। वस्तुतः प्रधान कान्सल के रूप में भी नैपोलियन की शक्ति, अधिकार, और शानशौकत सम्राटों से कम नहीं थी, पर उसे रिपब्लिक का ढाचा भी सह्य न था। इसीलिये उसके आदेश से शासन विधान में इस प्रकार के परिवर्त्तन किये गये, जिनसे वह पूर्णरूप से सम्राट् पद पर अधिष्ठित हो गया। पहले नैपोलियन को दस वर्ष के लिये कान्सल बनाया गया था। १८०२ में उसे जन्म भर के लिये कान्सल बना दिया गया। इसके बाद उसे यह भी अधिकार दिया गया, कि वह अपना उत्तराधिकारी भी स्वय चुन सके। १८०४ में यह प्रस्ताव पेश किया, कि नैपोलियन को फ्रेञ्च जनता का सम्राट् बना दिया जावे। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। यह प्रस्ताव नैरोलियन की प्रेरणा से ही पेश किया गया था और उसी की कोशिश से पास हुआ था।

राज्याभिपेक—२ दिसम्बर १८०४ के दिन नैपोलियन का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। उसका अभिपेक-समारोह पुराने बोर्बो राजाओं के राज्याभिषेक को भी मात करता था। इस महत्वपूर्ण अवसर पर पोप भी उपस्थित था। परन्तु अभिमानी नैपोलियन यह नहीं सह सका, कि पोप उसके सिर पर राज्यमुकुट रखे। इससे पहले कि

पोप राज्यमुकुट को उठाये, उसने स्वय उसे उठाकर अपने सिर पर रख लिया।' नैपोलियन कहा करता था—'मैंने फ्रास से राजमुकुट को धूल मे पड़ा पाया, और तलवार की नोंक से उठाकर अपने सिर पर रख लिया।' निस्सन्देह, नैपोलियन का यह दावा ठीक था। वह इसलिये सम्राट नहीं बना था, क्योंकि वह किसी सम्राट् का लड़का था। वह अपनी तलवार के जोर पर इस गौरवमय पद पर अधिष्ठित हुआ था।

पुरानी राजसत्ता का प्रारम्भ—सम्राट् बनकर नैपोलियन ने राज दरबार, अंग-रक्षक, अनुचर, पार्श्वचर आदि का फिर से सगठन किया। नये दरबारियों को दरबार के ढग और कायदों को सिखाने के लिये सेजूर—जो कि एक भागा हुआ कुलीन श्रेणी का आदमी था, और मदाम डि सापेन को, जो कि पहले मेरी आतोआत की पार्श्वचर थी, नियत किया गया। नैपोलियन के परिवार के आदमियों को सब से ऊँचे पद दिये गये। एक विशाल अङ्गरक्षक सेना का सगठन किया गया। नये सिरे से लोगों को खिताब दिये जाने लगे। इस प्रकार एक नवीन कुलीन श्रेणी का निर्माण किया गया। यह नवीन कुलीन श्रेणी नैपोलियन की कृति थी। इसकी सत्ता एक आदमी की इच्छा पर आश्रित थी।

सम्राट् बनकर नैपोलियन निरन्तर अधिक अधिक स्वेच्छाचारी तथा क्रूर होता गया। अब वह सार्वजनिक समालोचना को नहीं सह सकता था। प्रधान कान्सल बनते ही उसने समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता मे बाधा डालनी प्रारम्भ करदी थी। अनेक राजनीतिक पत्र बन्द कर दिये गये थे। नये पत्रों का प्रकाशन सर्वथा रोक दिया था। पर सम्राट बनने पर नैपोलियन ने समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने में कमाल ही कर दिया। यह व्यवस्था की गई, कि सब समाचार सरकार की तरफ से पहुँचाये जावें। समाचार भेजने का कार्य पुलिस के सुपुर्द किया गया। पुलिस उन सब समाचारों को रोक देती थी, जो सरकार

के खिलाफ जाते थे। नैपोलियन की अपनी इच्छा तो यह थी, कि सब समाचार पत्रों को बन्द कर दिया जावे। केवल एक ही पत्र सरकार की तरफ से प्रकाशित हो। जनता को समाचारही तो चाहिये, और ये समाचार एक पत्र द्वारा भी सुगमता के साथ दिये जा सकते हैं।

नवीन युद्धों का प्रादुर्भाव—यूरोप के विविध राजाओं ने नैपोलियन के इस उत्कर्ष को बहुत आतङ्क तथा आशङ्का की दृष्टि से देखा। निस्सन्देह, नैपोलियन सम्राट् था, पर साथ ही, वह क्रान्ति की कृति था। यूरोप के राजा अच्छी तरह समझते थे, वह उनके ढग का सम्राट् नहीं है। वह एक प्राचीन राजवश के खण्डहर पर, क्रान्ति के गम्भीर समुद्र-मथन से, जनता की इच्छा और सहमति से सम्राट् बना है। उसके हाथ मे तलवार है, जो उनके राजसिंहासनों पर लुब्ध क्रूर दृष्टि से देख रही है। बेशक, फ्रास मे फिर से राजसत्ता की स्थापना हो गई है, पर पिछले १० वर्षों की उथल पुथल ने इस देश मे महान् शक्ति का सञ्चार कर दिया है, इसे आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है। यह नवीन शक्ति, यह नवीन राष्ट्र पुराने ढग की राजगद्दियों और दरबारों के लिये भारी खतरे का कारण है। नैपोलियन के व्यक्तित्व ने इस नई शक्ति मे नवजीवन का ही सञ्चार किया है। नैपोलियन के सम्राट् बन जाने से फ्रास मे इतना ही परिवर्तन आया है, कि क्रान्ति और परिवर्त्तन की शक्तिया और भी अधिक सगठित तथा नियन्त्रित हो गई हैं। परिणाम यह हुआ, कि यूरोप के विविध राजे महाराजे इस नये खतरे के विरुद्ध तैयारी मे व्यग्र हो गये। उधर नैपोलियन भी युद्ध के लिये उत्सुक था। उसके वैयक्तिक अभ्युदय के लिये आवश्यक था, कि फ्रास अपनी सैनिक क्षमता को निरन्तर प्रदर्शित करता रहे। १८०२ मे राज्यपरिषद् के सम्मुख भाषण करते हुए उसने एक बार कहा था—'यदि यूरोपियन राज्य फिर से युद्ध प्रारम्भ करना चाहते हैं, तो लड़ाई जितनी जल्दी शुरू हो, उतना ही अच्छा है। जितना समय गुजरता जाता है, उनके

पराजयों की स्मृति मन्द पड़ती जाती है, और हमारा विजय गौरव लोगों की दृष्टि से ओझल होता जाता है। फ्रास को शानदार कृत्यों की आवश्यकता है—इसलिये युद्ध की भी जरूरत है।' १८०४ में एक अन्य अवसर पर नैपोलियन ने कहा था—'यूरोप मे तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती, जब तक कि सम्पूर्ण महाद्वीप एक शासक के आधीन न हो जाये। यूरोप के ऊपर शासन करने वाला एक ऐसा सम्राट् होना चाहिये, जिसके आधीन विविध राजा कर्मचारी के रूप मे कार्य करते हों। जो एक आदमी को इटली का राजा नियत करे, दूसरे को बवेरिया का, एक आदमी को स्विटजरलैण्ड का शासक नियत करे, दूसरे को हॉलेण्ड का।' निस्सन्देह नैपोलियन का यही आदर्श था, और इसको क्रिया मे परिणत करने के लिये युद्ध –निरन्तर और भयङ्कर युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। परिणाम यह हुआ कि यूरोप में उन भयङ्कर युद्धों का प्रारम्भ हुआ, जो दस वर्ष तक निरन्तर जारी रहे और जिन्होंने यूरोप के नक्शे मे भारी परिवर्तन ला दिया। यूरोप के आधुनिक इतिहास में ये युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इङ्गलैंड के साथ युद्ध—फ्रास के साथ पहले पहल युद्ध उद्घोपित करने वाला राज्य इगलैंड था। मई १८०३ मे आमीन की सधि समाप्त हो गई और फ्रास और इङ्गलैण्ड मे युद्ध शुरू हो गया। इस युद्ध के अनेक कारण थे। फ्रास और इङ्गलैण्ड में सामुद्रिक साम्राज्य के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धा इसका प्रधान कारण है। निस्सन्देह, नैपोलियन साम्राज्यवादी था। सप्तवर्षीय युद्ध मे इगलैण्ड ने फ्रांस के जिस सामुद्रिक और औपनिवेशिक साम्राज्य का अन्त कर दिया था, नैपोलियन उसका पुनरुद्धार करना चाहता था। १८०० मे नैपोलियन स्पेन को इस बात के लिये प्रेरित करने में सफल हो गया था, कि अमेरिका में मिसिसीपी नदी की घाटी के प्रदेश को—जो लुसिएना के नाम से प्रसिद्ध है, फ्रास को दे दे। इसके कुछ समय बाद ही सेनापति लेक्लेर्क को २५,०००

सैनिकों के साथ हेयटी के द्वीप पर कब्जा करने के लिये भेजा गया था। भारत में अंग्रेज लोगों के बढते हुए अधिकार और प्रभाव का मुकाबला करने के लिये सेनापति डेकेन को अनेक अफसरों के साथ भेजा गया था। इसी प्रकार अन्यत्र भी अपने साम्राज्य के पुनरुद्धार को दृष्टि में रखकर सेनापति भेजे गये थे। यद्यपि ये प्रयत्न प्रायः असफल ही रहे, पर इगलैण्ड का अपने प्रतिद्वन्द्वी को इस प्रकार शक्ति सम्पन्न तथा प्रयत्नशील देखकर चिन्तातुर हो जाना सर्वथा स्वाभाविक था। बेशक, इगलैण्ड की सामुद्रिक शक्ति का मुकाबला कर सकना फ्रास के लिये सम्भव नहीं था। पर स्थल मे फ्रास की शक्ति अद्वितीय थी। इगलैण्ड इस महान् सैनिक शक्ति को कदापि सहन नहीं कर सकता था। यूरोप पर फ्रास का प्रभाव जिस ढग से बढ रहा था, उससे इगलैण्ड को भारी नुकसान था। कारण यह, कि फ्रास इङ्गलैण्ड के यूरोपियन व्यापार को जब चाहे नुकसान पहुंचा सकता था। नैपोलियन यूरोप के अधिकाश भाग को जीत कर अपने अधीन कर लेना चाहता था, और यदि बाह्य व्यापारी माल पर तटकर लगा दिया जावे, तो इङ्गलैंड का सम्पूर्ण व्यापार आसानी से नष्ट किया जा सकता था। यही भयकर खतरा था, जिसने इङ्गलैंड को आमीन की सन्धि तोड़कर युद्ध करने के लिये बाधित कर दिया। नैपोलियन ने भी इस युद्ध का खुले दिल से स्वागत किया, क्योंकि वह खूब अच्छी तरह समझता था, कि इगलैंड को कुचले बिना सम्पूर्ण यूरोप को अपने आधीन करने के स्वप्न को क्रिया मे परिणत नहीं किया जा सकता।

इङ्गलैंड पर आक्रमण की योजना—इङ्गलैंड और फ्रास मे युद्ध शुरू हो गया। हैनोवर के प्रदेश का शासक इङ्गलैंड का राजा ही था। नैपोलियन ने उस पर हमला किया और बात की बात में अपने आधीन कर लिया। फ्रास के आधीन सब राज्य—जो पहले रिपब्लिक थे और नैपोलियन के सम्राट बन जाने पर उस द्वारा नियत किये गये

शासकों के अधीन थे, पूर्णतया उसकी सहायता कर रहे थे। स्पेन को भी इङ्गलैंड के विरुद्ध सहायता करने के लिये नैपोलियन ने तैयार कर लिया था। इस प्रकार हैनोवर से लेकर इटली तक सम्पूर्ण समुद्रीय तट नैपोलियन के कब्जे में था, और इस परिस्थिति का प्रयोग इङ्गलिश व्यापार को नष्ट करने के लिये किया गया। हैनोवर से लेकर इटली तक इगलिश माल का आना सर्वथा रोक दिया गया। सब बन्दरगाह इङ्गलिशमाल के लिये बन्द कर दिये गये। इतना ही नहीं, इङ्गलैण्ड पर हमला करने के लिये धूमधाम से तैयारी की गई। बोलोन में डेढ लाख सैनिको की एक विशाल सेना एकत्रित की गई। नैपोलियन इस बड़ी सेना के साथ अवश्य ही ब्रिटेन पर आक्रमण करता, परन्तु दो कारणो से उसे अपनी योजना का परित्याग करने के लिये बाधित होना पडा। इङ्गलैण्ड का जहाजी बेड़ा इस योजना की सफलता मे बड़ी रुकावट था और इसके अतिरिक्त यूरोपियन राज्यों का एक नया गुट फ्रास के साथ युद्ध करने के लिये सगठित हो गया था।

फ्रास के विरुद्ध नवीन गुट का निर्माण—यह नया गुट किस प्रकार बना था, इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इङ्गलैण्ड का शासन सूत्र इस समय फिर पिट के हाथ मे आ गया था। पिट फ्रास और नैपोलियन का पुराना दुश्मन था। आमीन की सन्धि टूट जाने पर युद्ध का सचालन करने के लिये पिट को प्रधान मन्त्री बनाया गया था। पिट अपनी नीति तथा धन के बल से रशिया और आस्ट्रिया को फ्रास के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित करने के लिये तैयार करने मे सफल हुआ। एप्रिल १८०५ मे रशिया के जार अलेक्जण्डर प्रथम ने फ्रास के खिलाफ इङ्गलैण्ड से सन्धि करली। इस सन्धि का उद्देश्य यह था कि हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, इटली और हैनोवर से फ्रास को निकाल बाहर किया जावे। अलेक्जण्डर प्रथम नैपोलियन से बहुत नाराज था, उसकी नाराजगी का एक मुख्य हेतु यह था, कि उसने बोर्बोन वश के एक व्यक्ति

एन्भीन के ड्यूक को इस लिये प्राणदण्ड दिया था, क्योंकि उस पर राज-द्रोह का अभियोग लगाया गया था। आस्ट्रिया भी १८०५ में ही इस नये गुट में शामिल हो गया। अस्ट्रिया फ्रास के विरुद्ध बनाये गये किसी भी गुट मे शामिल होने के लिये हमेशा उत्सुक रहता था। फ्रास के अभ्युदय से सब से अधिक नुकसान आस्ट्रिया को ही पहुँचा था। प्रशिया को भी इस गुट मे सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया गया, उसके राजा को यह भी लालच दिया गया, कि हैनोवर का प्रदेश उसे दे दिया जायगा, परन्तु प्रशिया का कमजोर राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय इतने पर भी इस गुट मे सम्मिलित होने के लिये तैयार नहीं हुआ।

फ्रेंच बेडे की पराजय—इस नये गुट ने नैपोलियन की इङ्गलैण्ड पर आक्रमण करने की योजना को मिट्टी मे मिला दिया। बोलोन में जो भारी सेना एकत्रित की गई थी, उसे एक दम आस्ट्रिया का मुकाबला करने के लिये दक्षिणी जर्मनी की तरफ भेज दिया गया। २१ अक्टूबर १८०५ के दिन इङ्गलैण्ड के नौ सेनापति नेल्सन ने ट्राफल्गर के अन्तरीप के समीप फ्रेंच और स्पेनिश बेड़े को बुरी तरह परास्त किया। इसके अनन्तर इङ्गलैण्ड समुद्र मे अजेय हो गया। फ्रास ने जल मे इङ्गलैण्ड का मुकाबला करने का विचार छोड़ दिया। नैपोलियन ने अपना सम्पूर्ण ध्यान स्थल मे शक्ति का विस्तार करने के लिये लगा दिया। आस्ट्रिया और रशिया के साथ जो युद्ध अब प्रारम्भ हुए, उनसे नैपोलियन की सैनिक कीर्त्ति बहुत अधिक बढ गई।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध—आस्टिया के साथ युद्ध में नैपोलियन को असाधारण सफलता प्राप्त हुई। तीन सप्ताह मे फ्रेंच सेनायें वीएना पहुँच गई। २ दिसम्बर १८०५ के दिन उसने आम्टरलिड्ज नामक स्थान पर रशिया और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेनाओं को परास्त किया। इस पराजय के बाद रशियन सेनायें अपने देश को लौट गई और आस्ट्रिया को सन्धि करने के लिये बाधित होना पड़ा।

प्रैसबुर्ग की सन्धि—२६ दिसम्बर १८०५ को प्रेसबुर्ग मे सन्धि कर ली गई। यह सन्धि आस्ट्रिया के लिये बहुत महगी पड़ी। कैम्पोफोर्मियो की सन्धि के अनुसार वेनिस के (उत्तरीय इटली मे) जिस प्रदेश को आस्ट्रिया ने प्राप्त किया था, वह उससे ले लिया गया। जर्मनी के अनेक राज्यों ने गत युद्ध मे फ्रास से सहानुभूति प्रगट की थी। आस्ट्रिया को नुकसान पहुँचा कर उन सब को इनाम दिया गया। बाडन और बवेरिया के राज्यों की सीमा मे वृद्धि की गई। आस्ट्रिया का राजा पवित्र रोमन साम्राज्य होता था। इस स्थिति में जर्मनी के ये विविध राज्य उसके अधीन थे। पवित्र रोमन सम्राट् की स्थिति में आस्ट्रियन राजा को इस बात के लिये बाधित किया गया, कि बवेरिया और वुर्ट्टम्बर्ग के शासकों को प्रशिया और आस्ट्रिया के राजा के समान 'राजा' की स्थिति तक पहुँचा दिया जावे। नेपल्स ने फ्रास के शत्रुओं से सहानुभूति प्रदर्शित की थी, अतः वहा के बोर्बों राजवश के राजा को राज्यच्युत कर दिया गया और वहा पर शासन करने के लिये नैपोलियन के भाई जोसफ बोनापार्ट को नियत किया गया। बटेवियन रिपब्लिक (हालैण्ड) को भी राजतन्त्र के रूप में परिवर्तित कर दिया गया और वहा का राजा लुई बोनापार्ट नियत किया गया। नैपोलियन की बहनों को भी शासन करने के लिये राज्य प्रदान किये गये।

र्हाइनके राज्य संघ का सूत्रपात—प्रेसबुर्ग की सन्धि एक अन्य दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। अनेक जर्मन राज्यों को पवित्र रोमन साम्राज्य से पृथक कर नैपोलियन ने अपनी आधीनता में र्हाइन के राज्य सघ का निर्माण किया। इस सघ मे बवेरिया, वुर्टम्बर्ग, बाडन, तथा अन्य १३ जर्मन राज्य सम्मिलित हुए। यह सघ फ्रेंच सम्राट की संरक्षा में बना था और इसकी वही स्थिति थी, जो कि हालैण्ड की थी। आवश्यकता पड़ने पर फ्रास के लिये यह भी उसी प्रकार काम

आ सकता था, जैसे हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, किसल्पाइन रिपब्लिक आदि आधीनस्थ राज्य। यह व्यवस्था की गई, कि यह सघ अपने सरक्षक नैपोलियन को ६६ हजार सिपाही प्रदान करेगा और फ्रेंच सेना-पति इन्हें सगठित करेंगे।

पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त—प्रथम अगस्त १८०६ के दिन पवित्र रोमन साम्राज्य की महासभा के सम्मुख नैपोलियन ने उद्घोषित किया, कि क्योंकि मैंने र्‍हाइन के राज्य सघ के संरक्षक के पद को स्वीकृत कर लिया है, अतः अब मैं पवित्र रोमन साम्राज्य की सत्ता को स्वीकार नहीं कर सकता। यह साम्राज्य अब नाममात्र को ही रह गया था, इसके अधीनस्थ अनेक राज्य अब स्वतन्त्र स्थिति को प्राप्त हो चुके थे। इसकी सत्ता अब पारस्परिक झगड़ों का ही कारण बनी हुई थी। नैपोलियन की इस उद्घोषणा का परिणाम यह हुआ, कि इस प्राचीन साम्राज्य का अन्त हो गया। आस्ट्रिया का राजा, जो हंगरी, बोहेमिया, क्रोटिया, गेलिसिया आदि अन्य भी बहुत से राज्यों का राजा था और साथ मे पवित्र रोमन सम्राट के गौरवशाली पद को भी प्राप्त किये हुए था, अब इस पद से विरहित हो गया। ६ अगस्त १८०६ के दिन उसने स्वय इस पद का परित्याग कर दिया। १८ सदियों से जो सम्मानित पद चला आ रहा था, उसका इस ढग से अन्त हुआ। पवित्र रोमन सम्राट् अब केवल आस्ट्रिया का राजा ही रह गया।

प्रशिया से युद्ध—र्‍हाइन के राज्य सघ के निर्माण से जर्मनी मे नैपोलियन का प्रभाव बहुत अधिक बढ गया था। यह बात प्रशिया कभी सहन नहीं कर सकता था। प्रशिया के राजाओं की बहुत समय से यह महत्वाकाक्षा रही थी, कि जर्मनी में अपने प्रभुत्व और प्रभाव को कायम रखा जाय। इसमें नैपोलियन का र्‍हाइन का राज्यसघ सबसे बड़ी बाधा थी। आखिर, फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने यही उचित समझा, कि फ्रास के खिलाफ गुट में शामिल होने से ही प्रशिया का

भला है। प्रशिया ने फ्रास के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित कर दिया। आस्ट्रिया आस्टरलिट्ज के युद्ध मे परास्त होकर फ्रास से सन्धि कर चुका था। उसका स्थान अब प्रशिया ने ले लिया।

जेना का युद्ध—परन्तु प्रशिया को परास्त करने में नैपोलियन को देर नहीं लगी। १४ अक्तूबर १८०६ को जेना के रणक्षेत्र मे प्रशिया की बुरी तरह पराजय हुई। दस दिन बाद नैपोलियन ने प्रशिया की राजधानी बर्लिन में प्रवेश किया। वहा जाकर उसने महान फ्रेडरिक की तलवार को विजयोपहार के रूप मे पेरिस भेजा। प्रशिया से बहुत बड़े परिमाण मे हरजाना लिया गया। इतना ही नहीं, प्रशिया से कुछ प्रदेश लेकर वेस्टफेलिया के राज्य की सृष्टि की गई और उसका राजा नैपोलियन के छोटे भाई जेरोम बोनापार्ट को बनाया गया।

रशिया का पराजय और टिलसिट की सन्धि—प्रशिया को परास्त करने के बाद रशिया पर आक्रमण किया गया। बात की बात में रशिया भी परास्त कर दिया गया। नैपोलियन की विश्व विजयिनी सेनाओं को मुकाबला करना किसी के लिये भी सम्भव नही था। फ्रीड-लैण्ड के रणक्षेत्र में १४ जून १८०७ के दिन रशिया और फ्रास का भयकर युद्ध हुआ। रशिया की पराजय हुई। आखिर, रशिया और फ्रास में सन्धि हो गई। यह टिलसिट की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के द्वारा फ्रास के विरुद्ध यूरोपियन राज्यों का गुट सर्वथा टूट गया। आस्ट्रिया पहले ही गुट से अलग हो गया था। प्रशिया को जेना के युद्ध में बुरी तरह परास्त कर दिया गया था। अब रशिया ने भी सन्धि कर ली। शेप बचा केवल इगलैण्ड, जो निरन्तर १० वर्ष तक फ्रास से लड़ता रहा और जिसके ही अनवरत परिश्रम का परिणाम था कि नैपोलियन को अन्त मे पराजय हुई।

टिलसिट की सन्धि से फ्रास और रशिया में युद्ध ही बन्द नही हुआ था, इससे नैपौलियन और जार अलेक्जेण्डर प्रथम ने आपस मे एक

गुप्त समझौता भी किया था। इस समझौते के अनुसार यूरोप के इन दो शक्तिशाली सम्राटों ने यह फैसला किया था, कि नैपोलियन को पश्चिमी यूरोप में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो और जार को पूर्वी यूरोप में। जार अलक्जैण्डर प्रथम ने नैपोलियन से बातचीत में कहा था—'यूरोप क्या है ? मैं और तुम ही तो यूरोप हैं।' निस्सन्देह, इन दोनों सम्राटों की यही धारणा थी। इस गुप्त समझौते में अलक्जैण्डर ने इङ्गलैंड के विरुद्ध फ्रांस की सहायता करने का भी वचन दिया था।

टिलसिट की सन्धि से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन—रशिया और प्रशिया के पराजय के अनन्तर यूरोप के राजनीतिक नक़शे में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, उनमें वेस्टफेलिया और वारसा के राज्य सब से प्रमुख हैं। वेस्टफेलिया का जिकर पहले किया जा चुका है। पोलेण्ड का प्रदेश प्रधानतया पहले प्रशिया और रशिया के अधीन था। इस समय नैपोलियन ने पोलैण्ड के अधिकांश प्रदेश को लेकर अपनी संरक्षा में वारसा के राज्य का निर्माण किया और इसका शासक सेक्सनी के राजा को नियत किया। सेक्सनी जर्मनी का एक राज्य था। उसके राजा के साथ नैपोलियन की बड़ी दोस्ती थी। वारसा, सेक्सनी और वेस्टफेलिया—ये तीनों राज्य र्‌हाइन के राज्य संघ में सम्मिलित कर लिये गए और इनके सम्मिलित हो जाने से र्‌हाइन के राज्य संघ का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया।

इङ्गलिश प्रतिरोध—फ्रांस के विरुद्ध यूरोपियन राज्यों का गुट इस समय पूर्णतया टूट चुका था। परन्तु इङ्गलैण्ड के साथ अब भी युद्ध जारी था। नैपोलियन को स्थलीय युद्धों में असाधारण सफलता प्राप्त हुई थी। पर समुद्र में इङ्गलैण्ड की शक्ति अजेय थी। इङ्गलैंड में व्यावसायिक क्रान्ति के कारण जिस अपूर्व क्षमता तथा शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा था, अन्य यूरोपियन राज्यों में उसका सर्वथा अभाव था। इङ्गलैंड

के कारखाने इस समय इतनी तेजी के साथ आर्थिक उत्पत्ति कर रहे थे, कि ससार का अन्य कोई भी देश इस क्षेत्र मे उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। एक ऐतिहासिक ने लिखा है, कि नैपोलियन को वाटर्लू के रण क्षेत्र में परास्त नहीं किया गया था, उसकी वास्तविक पराजय माञ्चस्टर के कपड़े के कारखानों तथा बरमिङ्घम की लोहे की भट्टियों मे हुई थी। इस कथन में बहुत कुछ सचाई है। इङ्गलैण्ड अपने व्यापार और व्यवसाय के जोर पर ही नैपोलियन का इतनी व्यग्रता के साथ मुकाबला कर सका था। नैपोलियन भी इस बात को भली भाति समझता था। वह जानता था, कि इङ्गलैण्ड पर किसी सेना द्वारा आक्रमण कर सकना तब तक असम्भव है, जब तक उसका जहाजी बेड़ा कायम है। इसलिये उसने इङ्गलैण्ड के व्यापार को तबाह करने का निश्चय किया। नैपोलियन को पूर्ण निश्चय था, कि जब इङ्गलैण्ड के व्यापार और व्यवसाय को धक्का लगेगा, तब यह "दूकानदारों की कौम" अपने आप सन्धि के लिये याचना करने को तैयार हो जावेगी। इस नीति को क्रिया मे परिणत करने के लिये नैपोलियन ने निश्चय किया, कि इङ्गलैण्ड का कोई भी माल यूरोप मे न आने पावे। नवम्बर १८०६ मे बर्लिन से एक उद्घोषणा प्रकाशित की गई, जिसमे कि इङ्गलैण्ड तथा उसके सम्पूर्ण उपनिवेशों के साथ सब प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध निषिद्ध कर दिया गया। यह उद्घोषित किया गया, कि कोई भी इङ्गलिश जहाज यूरोप के किसी भी बन्दरगाह पर न आने पावे। फ्रास तथा नैपोलियन के सरक्षित राज्यों में यदि कोई अग्रेज पाया जावे, तो उसे कैदी समझा जावे तथा उसके माल को जप्त कर लिया जावे। इङ्गलैड में किसी आदमी को कोई पत्र तथा पैकेट तक न भेजा जावे। यदि किसी पत्र पर अग्रेजी भाषा मे पता लिखा हो, तो उसे भी जप्त कर लिया जावे। नैपोलियन इन सब आज्ञाओं द्वारा इङ्गलैंड का यूरोप से पूर्ण वहिष्कार कर देना चाहता था। उसकी इस नीति को 'इङ्गलिश' प्रतिरोध के नाम से कहा जाता है।

इस नीति को क्रिया में परिणित करने के लिए नैपोलियन ने कोई भी उपाय उठा न रखा। यूरोप के बड़े भाग पर उसका कब्जा था। आस्ट्रिया और रशिया उसके साथ सधि कर चुके थे। रशिया के साथ सधि के परिणाम स्वरूप उत्तरी आर्कटिक सागर से इटली के समुद्रतट तक नैपोलियन का अधिकार था। यूरोप के देशों को वह अपनी इङ्गलिश प्रतिरोध की नीति का अनुसरण करने के लिये बाधित कर सकता था। यदि कोई देश उसकी उपेक्षा करने का साहस करे, तो उसे उपयुक्त सजा देने के लिये नैपोलियन के पास पर्याप्त शक्ति विद्यमान थी।

व्यापारी युद्ध—इस नीति का इङ्गलैण्ड ने यह जबाव दिया, कि उसने भी फ्रेञ्च साम्राज्य के सम्पूर्ण बन्दरगाहों को 'प्रतिरुद्ध' उद्घोषित कर दिया। साथ ही इङ्गलैण्ड ने एक और बुद्धिमत्ता का कार्य किया। वह यह, कि उदासीन राज्यों को अपने साथ व्यापार करने की अनुमति देदी। परन्तु नैपोलियन के पास इसका इलाज मौजूद था। दिसम्बर १८०७ में उसने मिलन (उत्तरी इटली का एक प्रसिद्ध नगर) से एक उद्घोषणा प्रकाशित की, जिसमें यह उद्घोषित किया गया, कि जो कोई देश इगलैण्ड के साथ व्यापारिक सम्बन्ध रखेगा, उसके जहाजों को लूट लिया जायगा, तथा उसे हर तरह से नुकसान पहुचाने की कोशिश की जायगी। संसार के आधुनिक इतिहास में यह व्यापारी युद्ध बहुत महत्व रखता है। वर्तमान युग के युद्ध मुख्यतया व्यापार और व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा के कारण हुए हैं। इस ढंग के युद्धों में फ्रास और इंगलैण्ड का यह युद्ध बहुत महत्वपूर्ण तथा आवश्यक है।

'इंगलिश प्रतिरोध' की नीति का सख्ती से प्रयोग—यूरोप के जिस देश ने भी नैपोलियन की 'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति का उल्लंघन करना चाहा, उसे सख्त

दण्ड दिया गया। स्वीडन ने बर्लिन की उद्‌घोषणा को मानने से इंकार किया। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन ने रशिया को फिनलैण्ड का प्रदेश स्वीडन से छीन लेने के लिए प्रेरित किया। जब इससे भी स्वीडन काबू में नहीं आया, तो वहा के राजा को राजगद्दी छोड़ने के लिये बाधित किया गया और नैपोलियन ने अपने एक सेनापति बर्नेदो को स्वीडन का राजा नियत किया। हालैण्ड का राजा लुई बोनापार्ट—जो नैपोलियन का भाई था, सदा अपने भाई से विमुख रहता था। उसने भी 'इंगलिश प्रतिरोध' की नीति को अमल मे लाने में आनाकानी की। नैपोलियन ने उसे भी राज्यच्युत कर दिया और हालैण्ड को फ्रांस के साथ मिला दिया गया। रोम के पोप ने इस मामले मे उदासीन रहना चाहा, पर नैपोलियन यह कब सह सकता था। उसने पोप के राज्य को छीन लिया और इटली के अन्तर्गत कर दिया। पोप अपना क्रोध एक ही तरह से प्रगट कर सकता था। उसने नैपोलियन को धर्म बहिष्कृत कर दिया। पर नैपोलियन की तलवार के सम्मुख पोप की क्या ताकत थी। नैपोलियन ने उसे कैद कर लिया। कई सालों तक पोप कैद मे पड़ा रहा। पोर्तुगाल के बन्दरगाहों में इङ्गलिश जहाज आते जाते थे। नैपोलियन ने हुक्म दिया कि पोर्तुगाल इङ्गलैण्ड के खिलाफ युद्ध उद्‌घोषित कर दे और जितने भी अंग्रेज उस देश में हैं, उन सब को कैद कर उनकी सम्पत्ति को जब्त कर ले। पोर्तुगाल ने इस आज्ञा को मानने से इंकार किया। परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन ने सेनापति जूनो को पोर्तुगाल पर हमला करने का आदेश दिया। बड़ी ही सुगमता से जूनो ने सम्पूर्ण पोर्तुगाल को जीत लिया। राजकीय परिवार ने पोर्तुगाल से भाग कर ब्राजील मे आश्रय लिया। विजयी जूनो ने बड़ी धूमधाम से लिस्बन में प्रवेश किया। इस प्रकार बड़ी सख्ती तथा व्यग्रता से नैपोलियन 'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति को अमल में ला रहा था। हजारों आदमियों को इसलिये सख्त सजायें

दी गई थीं, क्योंकि उन्होंने धोखे से इङ्गलिश माल को मगाने की कोशिश की थी।

स्पेन पर कब्जा—इस प्रकार नैपोलियन निरन्तर अधिक अधिक शक्तिशाली होता जाता था। सम्पूर्ण यूरोप मे उसका आतक सा छाया हुआ था। यूरोप के सब राजा उसकी उगली के इशारे पर नाचते थे। पोर्तुगाल को अपने अधीन कर लेने के अनन्तर नैपोलियन को स्पेन के राज्य को भी हस्तगत करने का सुवर्णावसर प्राप्त हुआ। वहा के राज-परिवार में कुछ झगड़े चल रहे थे। नैपोलियन ने इनका उपयोग कर वहा के राजा चार्ल्स चतुर्थ तथा युवराज फर्डिनैण्ड को इस बात के लिए मजबूर किया, कि वे दोनों स्पेन की राजगद्दी से अपने दावे का परित्याग कर दे। ६ जून १८०८ को नैपोलियन ने अपने भाई जोसफ बोनापार्ट को स्पेन का राजा नियत किया। जोसफ पहले नेपल्स का राजा था। वहा पर शासन करने के लिये सेनापति मूरे को नियत किया गया। मूरे नैपोलियन का बहनोई भी था। इस प्रकार स्पेन भी नैपोलियन के पूर्णतया अधीन हो गया। स्पेन पहले भी फ्रास का मित्र तथा आज्ञाकारी था, परन्तु अब तो वहा की राजगद्दी पर भी नैपोलियन का कब्जा हो गया।

स्पेनिश जनता ने नैपोलियन के इस कृत्य को सहन नहीं किया। वे विद्रोह करने के लिये कटिबद्ध हो गये। रोमन कैथोलिक पादरियों तथा भिक्षुओं ने यह कह कर लोगों को नैपोलियन के खिलाफ भड़काना शुरू किया, कि वह पोप तथा धर्म का दुश्मन है। युवराज फर्डिनैन्ड इस विद्रोह का नेता बना। फ्रेंच सेना परास्त कर दी गई और जोसफ को मेड्रिड से बाहर निकाल दिया गया। पर शीघ्र ही नैपोलियन ने एक विशाल सेना के साथ स्वय स्पेन पर आक्रमण किया। इस सेना मे दो लाख सैनिक थे। स्पेनिश सेना परास्त हो गई। ४ दिसबर १८०८ को मेड्रिड पर फिर नैपोलियन का अधिकार हो गया। स्पेन के

आन्तरिक सुधार के लिये नैपोलियन ने अनेक प्रयत्न किये। एक महीने के लगभग स्पेन मे रहकर वह फ्रास वापिस चला गया और अपने भाई जोसफ बोनापार्ट की सहायता के लिये अच्छी बड़ी सेना स्पेन मे छोड़ गया।

आस्ट्रिया के साथ युद्ध और वीएना की सन्धि—जिस समय नैपोलियन अपने दो लाख सैनिकों के साथ स्पेनिश विद्रोह को शान्त करने मे व्यग्र था, उस समय आस्ट्रिया को अपने पुराने शत्रु फ्रास से लड़ाई शुरू करने का अच्छा मौका हाथ लग गया। नैपोलियन की बढती हुई शक्ति से आस्ट्रिया बहुत चिन्तित था। रशिया स लेकर इटली तक उसका प्रभाव स्थापित हो चुका था। यूरोप का 'शक्ति समुत्तुलन' इस समय नष्ट हो चुका था और फ्रास की शक्ति इतनी अधिक बढ चुकी थी, कि कोई भी यूरोपियन राज्य व गुट उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। ऐसी दशा मे स्पेनिश लोगों का विद्रोह आस्ट्रिया के लिये एक सुवर्णीय अवसर था। एप्रिल १८०९ में आस्ट्रिया ने फ्रास के खिलाफ युद्ध उद्घोषित कर दिया। परन्तु अब फिर नैपोलियन विजयी हुआ। उसने एक दम वीएना पर हमला किया। ५ जुलाई १८०९ को वीएना के समीप वाग्रम नामक स्थान पर आस्ट्रियन सेना बुरी तरह परास्त हुई। आस्ट्रिया को सन्धि की याचना के लिये बाधित होना पड़ा। अक्तूबर १८०९ मे सन्धि हो गई, जो कि वीएना की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया को अपने राज्य का छटा हिस्सा, जिसके निवासियो की सख्या ४० लाख थी, नैपोलियन को अर्पित कर देना पड़ा। यह भी व्यवस्था की गई, कि आस्ट्रिया की सेना १॥ लाख से अधिक न बढने पावे।

नैपोलियन का विवाह—आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री मेटरनिख को अब विश्वास हो गया था, कि नैपोलियन अजेय है, उसे परास्त नहीं किया जा सकता। अतः उसने इसी बात में अपने देश का

कल्याण समझा, कि नैपोलियन के साथ स्थिर रूप से सन्धि कर ली जाय। अतः उसने भरपूर कोशिश की, कि नैपोलियन का विवाह आस्ट्रिया की राजकुमारी मेरिया लुइसा से हो जाय। नैपोलियन की पहली स्त्री जोसेफाइन की कोई सन्तान नहीं थी। नैपोलियन सन्तान के लिये उत्सुक था। साथ ही, वह यह भी चाहता था, कि यूरोप के सब से प्राचीन, राजवंश से उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाय। हाप्सबुर्ग वंश की राजकुमारी को प्राप्त कर लेना कार्सिका के गरीब वकील के लड़के के लिये कितने गौरव तथा अभिमान की बात थी। नैपोलियन इस विवाह में अपनी एक अत्यन्त ऊँची महत्वाकांक्षा की पूर्ति अनुभव करता था। अब वह असल में 'सम्राट' बन जायगा। कुल की दृष्टि से भी उसे कौन हीन समझ सकेगा? जोसेफाइन को तलाक दे दिया गया। मेरिया लुइसा के साथ नैपोलियन का विवाह हो गया। १८११ मे इस दम्पति के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नैपोलियन ने इसे 'रोम का बादशाह' इस उपाधि से विभूषित किया।

अब नैपोलियन की शक्ति अपनी चरम सीमा तक पहुच गई थी। प्रायः सम्पूर्ण पश्चिमी और मध्य यूरोप उसके अधीन हो चुका था। सारी दुनिया मे नैपोलियन की तूती बोल रही थी। रशिया उसका दोस्त था। प्रशिया की क्या ताकत थी, जो उसे किसी भी किस्म का नुकसान पहुचा सके। आस्ट्रिया बार बार पराजित होकर सीधे रास्ते पर आ गया था। स्पेन, पोर्तुगाल, इटली, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, स्वीडन—सब नैपोलियन के अधीन थे। पर इस समय भी एक देश नैपोलियन की शक्ति के खिलाफ अकेला युद्ध कर रहा था—वह देश था इङ्गलैण्ड। किस प्रकार इङ्गलैंड कोर्सिका के इस गरीब हिम्मती सिपाही को, जिसने इतिहास मे एक चमत्कार कर दिखाया था, परास्त करने में समर्थ हुआ, इस पर आगे प्रकाश डाला जावेगा।

चौदहवां अध्याय

नैपोलियन का पतन

साम्राज्य की कमजोरियां—नैपोलियन का साम्राज्य अपनी चरम सीमा को पहुँच चुका था। परन्तु यह विशाल साम्राज्य किसी सुदृढ़ आधार पर आश्रित न था। इसमें अनेक कमजोरिया थीं। इन्हीं का यह परिणाम हुआ कि यह साम्राज्य देर तक कायम नहीं रह सका। ये कमजोरिया निम्नलिखित हैं:—

(१) यह साम्राज्य एक आदमी की प्रतिभा द्वारा बना था। यह एक व्यक्ति की कृति थी। अतः इसकी सत्ता और स्थिति उस एक आदमी के जीवन तथा शक्ति पर निर्भर थी।

(२) शासित जनता की सहमति और सहानुभूति इस साम्राज्य के साथ नहीं थी। लोग इसे नहीं चाहते थे। यह जनता की इच्छा पर कायम न होकर सैनिकशक्ति तथा पाशविक बल पर आश्रित था। सैनिकशक्ति पर आश्रित साम्राज्य देर तक कायम नहीं रह सकते। जब कोई अन्य सेना तथा शक्ति बलवती हो जाती है, तो ऐसे साम्राज्य नष्ट हुए बिना नहीं रहते। नैपोलियन के साम्राज्य मे लोकमत तथा लोकतन्त्र शासन को कोई स्थान नहीं था, वह एक व्यक्ति की इच्छा पर आश्रित था। यह बात समय की प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी।

(३) राष्ट्रीयता की भावना इस समय यूरोप में प्रादुर्भूत होनी प्रारम्भ हो चुकी थी। यह भावना किस प्रकार प्रारम्भ हुई, इस पर हम फिर विचार करेंगे। परन्तु यह स्पष्ट है, कि नैपोलियन का साम्राज्य राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर आश्रित नहीं था, अतः यह नवीन भावना उसे नष्ट करने के लिये पूर्ण प्रयत्न कर रही थी। १८०८ के बाद स्पेन, इटली, जर्मनी तथा अन्य यूरोपियन देशों में जनता भलीभाति यह अनुभव करने लग गई, कि हम लोग स्पेनिश हैं, इटालियन हैं, व जर्मन हैं। हमें किसी अन्य देश के अधीन नहीं होना चाहिये। हमारा पृथक् स्वतन्त्र राज्य होना चाहिये। संसार के इतिहास में यह एक नई भावना थी। इससे पूर्व लोग यह नहीं समझते थे। इस भावना के कारण राष्ट्रों में जो नई अद्भुत शक्ति उत्पन्न हुई थी, उसका मुकाबला करना नैपोलियन की अपूर्व प्रतिभा तथा फ्रांस की विश्वविजयिनी सेना के लिये भी सर्वथा असम्भव था। नैपोलियन के पतन मे यह प्रधान कारण है।

(४) 'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति से यूरोप के व्यापार को भारी नुकसान पहुँच रहा था। व्यापारियों तथा सम्पत्तिशाली लोगों में इससे भारी असन्तोष था। व्यापार के अस्तव्यस्त हो जाने से सर्वसाधारण लोग भी बहुत तकलीफ उठा रहे थे।

(५) नैपोलियन की धार्मिक नीति जनता को बिलकुल भी पसन्द नहीं थी। पादरी तथा भिक्षु लोग उसको बदनाम करने की पूरी कोशिश कर रहे थे। उसने पोप को कैद मे डाला था। चर्च को राज्य की कठपुतली बना दिया था। धर्म को अपनी राजनीतिक महत्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने का साधन मात्र समझ रखा था। पादरी लोग इन बातों को कैसे सह सकते थे। वे उसे नास्तिक, काफिर तथा ईश्वर का दुश्मन कहते थे। सर्वसाधारण जनता इस धर्मद्वेषी नैपोलियन के बहुत विरुद्ध हो गई थी।

(६) क्रान्ति की जिस भावना से फ्रांस में अनुपम उत्साह तथा शक्ति उत्पन्न हुई थी, वह नैपोलियन के प्रादुर्भाव से अब समाप्तप्राय हो गई थी। राज्यक्रान्ति ने लोगों में जिन नई उमङ्गों तथा बल का सञ्चार किया था, वह अब खतम हो गया था। नैपोलियन को तो इन्हीं भावनाओं, उमङ्गों तथा शक्ति ने इस आश्चर्यजनक स्थिति तक पहुँचा दिया था। पर उसके एकतन्त्र स्वेच्छाचारी सम्राट बन जाने से इन सब का ही विनाश हो गया था। नैपोलियन ने स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली थी। नैपोलियन कोई अलौकिक आदमी तो था ही नहीं। इतिहास में कोई भी व्यक्ति अलौकिक तथा दैवी नहीं होता। वह तो फ्रांस की विशेष परिस्थितियों की उपज था। जब वे परिस्थितिया ही नष्ट हो गई, तो उसके नष्ट होने में क्या देर हो सकती थी ?

इङ्गलैंड का स्पेन में आक्रमण—ये बातें थीं, जो नैपोलियन के पतन में कारण हुई। इङ्गलैंड अब तक उसके साथ संघर्ष में लगा था। 'इङ्गलिश प्रतिरोध' की नीति से जरा भी न घबरा कर इङ्गलैंड जीजान से फ्रांस का मुकाबला करने में कटिबद्ध था। अगस्त १८०८ में इङ्गलिश सेनापति सर आर्थर वेल्सली (जो वेलिङ्गटन के ड्यूक के नाम से इतिहास में अधिक प्रसिद्ध है) ने एक अंग्रेजी सेना के साथ पोर्तुगाल में प्रवेश किया। फ्रेञ्च सेनापति जूनो के साथ उसके युद्ध हुए। जूनो परास्त हो गया और पोर्तुगाल छोड़कर वापिस जाने के लिये बाधित हुआ। इसके बाद, जिस समय नैपोलियन आस्ट्रिया के साथ युद्ध में व्यग्र था, तब अवसर देखकर वेल्सली ने स्पेन पर आक्रमण किया। जोसफ बोनापार्ट वेल्सली का मुकाबला नहीं कर सका। परन्तु फ्रेंच सेना को स्पेन से निकाल सकना आसान कार्य नहीं था। इसके लिये निरन्तर युद्धों की आवश्यकता थी। अतः वेल्सली ने यह उचित समझा, कि पोर्तुगाल वापस आकर अपनी किलाबन्दी को खूब मजबूत कर लिया जाय। इसके बाद फ्रेंच सेना के साथ निरन्तर युद्ध होता रहे। स्पेन की जनता और

इङ्गलिश सेना एक तरफ थी और नैपोलियन की सधी हुई फ्रेञ्च सेना दूसरी तरफ। यह युद्ध बहुत देर तक जारी रहा। नैपोलियन की तीन लाख सेना तथा बहुत से योग्यतम सेनापति इन युद्धों मे फंसे रहे। इन युद्धों का मुख्य परिणाम यह हुआ, कि नैपोलियन स्पेन की तरफ से कभी निश्चिन्त नहीं हो सका। अन्य देशों के साथ युद्ध करते हुए वह कभी भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग नहीं कर सका। स्पेन में उसे हमेशा एक भारी सेना रखने की आवश्यकता बनी रहती थी। नैपोलियन के पिछले युद्धों में उसकी असफलता का एक मुख्य कारण यह भी है।

रशिया के साथ युद्ध—यूरोप में देर तक शान्ति कायम नहीं रह सकी। सम्पूर्ण यूरोप में रशिया ही केवल ऐसा राज्य था, जो नैपोलियन के कब्जे से बाहर होने की हिम्मत कर सकता था। रशिया इङ्गलिश प्रतिरोध की नीति से सन्तुष्ट नहीं था। जार अलक्जैण्डर प्रथम इस बात के लिये तो तैयार था, कि इङ्गलिश जहाजों को अपने बन्दरगाहों पर न आने दे, पर उसे यह उचित नहीं मालूम होता था, कि मिलन की उद्घोषणा के अनुसार इङ्गलैंड से व्यापार करने वाले अमेरिका आदि उदासीन राज्यों के जहाजों का भी बहिष्कार किया जावे। इसके अतिरिक्त, रशिया इङ्गलिश व्यापार का पूर्णरूप से बहिष्कार करके काम नहीं चला सकता था। टिलसिट के समझौते के अनुसार रशिया को पूर्वी यूरोप मे स्वेच्छाचार करने का अधिकार दिया गया था। परन्तु नैपोलियन बाल्कन प्रायद्वीप तथा टर्की के सम्बन्ध में रशिया की नीति में हस्ताक्षेप किये बिना नहीं रह सकता था। दूसरी तरफ, नैपोलियन भी रशिया के गर्व का चूर्ण करने के लिये उत्सुक था। वह सोचता था, एक रशिया को हरा दिया जाये, तो सारा यूरोप अपना है। यूरोप भर में एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करने मे केवल एक ही तो बाधा है, और वह है रशिया। यदि उसे परास्त कर अपना आधिपत्य स्थापित

कर लिया जावे, तो मैदान साफ है ! ये कारण थे, जिन्होंने टिलसिट की सन्धि को समाप्त कर दिया। नैपोलियन ने रशिया पर आक्रमण करने के लिये तैयारी प्रारम्भ कर दी। १८१२ मे उसने अनुमान किया, कि तैयारी पूर्ण हो गई है। उसके अनेक सलाहकारों ने उसे सावधान भी किया, कि रशिया पर आक्रमण करने मे बहुत से खतरे हैं। पर नैपोलियन ने किसी पर भी ध्यान नहीं दिया। ६ लाख सैनिकों की एक विशाल सेना एकत्रित की गई। एक हजार तोपें साथ ली गई। नैपोलियन के सम्पूर्ण साम्राज्य से इस आक्रमण के लिये सैनिक एकत्रित किये गये थे।

रशियन आक्रमण—रशिया के इस महान् तथा साहसपूर्ण आक्रमण का इतिहास बहुत ही भयङ्कर तथा करुणामय है। नैपोलियन का विचार था, कि तीन साल में सम्पूर्ण रशिया को जीतकर अपने आधीन कर लिया जावेगा। नैपोलियन निरन्तर आगे बढ़ता गया, रशियन लोग पीछे हटते गये। रशियन लोगों ने युद्ध किया ही नहीं। वे चाहते थे, कि नैपोलियन उनके देश मे बहुत अधिक आगे बढ़ जावे। आखिर, ७ सितम्बर १८१२ को बोरोडिनो नामक स्थान रशियन सेना ने नैपोलियन का मुकाबला किया। रशियन लोग हार गये। पर रशिया की भयङ्कर मौसम, प्रतिकूल परिस्थिति तथा युद्ध का परिणाम था कि जब विजयी नैपोलियन ने मोस्को मे प्रवेश किया, तब उसके साथ केवल एक लाख सैनिक रह गये थे। नैपोलियन की सेना को अपने भरण पोषण के लिये अनाज तथा आश्रय न मिल सके, इसलिये रशियन लोगों ने मोस्को को पहले ही अग्निदेव के अर्पण कर दिया था। रशियन लोगों का यही तरीका था। वे ज्यों-ज्यों पीछे हटते जाते थे, अपने देश को उजाड़ते जाते थे, ताकि नैपोलियन को किसी भी किसम की मदद न पहुँच सके। नैपोलियन ने मोस्को पर कब्जा तो कर लिया, पर उसे स्थिर रूप से अपने आधीन रख सकना सम्भव नहीं था। सर्दी की

मौसम आ गई थी। रशिया की सर्दी अत्यन्त भयङ्कर होती है, सब ओर बरफ ही बरफ हो जाती है। एक ऐसे सुदूरवर्त्ती प्रदेश में—जहां मनुष्य और प्रकृति दोनों ही दुश्मन हों, रह सकना नैपोलियन के लिये सम्भव न रहा। उसने वापिस लौटने का निश्चय किया। वापस लौटते हुए फ्रेञ्च सेना ने बड़े वीभत्स कष्ट सहे। भयङ्कर सर्दी, भोजन का अभाव और रशियन लोगों के आक्रमणों ने इस सेना की बुरी हालत करदी। सैनिक इतिहास में नैपोलियन की यह वापसी बहुत ही दुःखपूर्ण घटना है। जब वह वापिस लौटा, तो उसके साथ केवल २० हजार सैनिक रह गये थे।

नये गुट का निर्माण—इस भयङ्कर दुरवस्था से भी नैपोलियन निराश नहीं हुआ। उसने फिर सेना एकत्रित की। बाधित रूप से सैनिक सेवा की व्यवस्था कर वह एक बार फिर ६ लाख सैनिक एकत्रित करने में समर्थ हुआ। पर इसी समय नैपोलियन के विरुद्ध यूरोपियन राज्यों का एक अन्य गुट सगठित हुआ। इस नये गुट में ग्रेट ब्रिटेन, रशिया, प्रशिया और स्वीडन सम्मिलित हुए। यद्यपि यह गुट राजाओं ने संगठित किया था, पर जनता की सहानुभूति इसके साथ थी। इस समय न केवल राजा पर जनता भी राजकीय मामलों में दिलचस्पी लेने लग गई थी। राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हो रही थी, और इस नवीन भावना के कारण जनता की शक्ति नैपोलियन का मुकाबला करने के लिये सन्नद्ध हो गई थी। इस नवीन गुट ने अपना उद्देश्य यह उद्घोषित किया, कि हम एक अत्याचारी के पंजे से जनता को—अधीन राष्ट्रों को स्वतन्त्र कराने का उद्योग करेंगे। अलैक्जण्डर प्रथम या फ्रेडरिक विलियम तृतीय चाहे इस उद्देश्य को केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये कह रहे हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत हद तक ध्रुव सत्य था। वस्तुतः ही नैपोलियन का साम्राज्य राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के सिद्धान्तों की जड़ पर कुठाराघात था। इस नये गुट ने

इस अस्वाभाविक साम्राज्य का अन्त कर सचमुच ही जनता के हित का सम्पादन किया।

सब राष्ट्रों का युद्ध—लाइप्ज़िग के रणक्षेत्र में प्रशियन और रशियन सेनाओ ने मिलकर नैपोलियन का मुकाबिला किया। इससे कुछ समय पूर्व आस्ट्रिया भी फ्रास के विरुद्ध गुट मे सम्मिलित हो गया था, और उसकी सेनाये भी लाइप्ज़िग मे मौजूद थी। १६—१९ अक्टूबर १८१३ को यह भयङ्कर युद्ध लड़ा गया, जो कि इतिहास मे 'सब राष्ट्रों का युद्ध' के नाम से मशहूर है। इसमे नैपोलियन की पराजय हुई। इस युद्ध मे एक लाख बीस हजार से अधिक सैनिक या तो मारे गये या बुरी तरह घायल हुए। पराजित होकर नैपोलियन अपनी अवशिष्ट सेना के साथ र्‌हाइन नदी पार कर फ्रास वापिस चला आया। उसके वापिस आते ही र्‌हाइन का राज्य सघ नष्ट भ्रष्ट हो गया।

साम्राज्य का अत—जर्मनी में पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त कर नैपोलियन ने जिस सघ का निर्माण किया था, वह सैनिक शक्ति पर आश्रित था। इस सैनिक शक्ति के निर्बल होते ही वह सङ्घ छिन्न-भिन्न हो गया। यही नहीं, हालैण्ड और वेस्टफेलिया से भी फ्रेञ्च शासन का अन्त हो गया। जेरोम बोनापार्ट वेस्ट-फेलिया का परित्याग कर वापिस भाग आया। डच लोगों ने फ्रेञ्च अफसरों को हालैण्ड से निकाल बाहर किया। उधर सर आर्थर वेल्सली (वेलिङ्गटन का ड्यूक) स्पेन मे फ्रेञ्च सेनाओं से निरन्तर युद्ध कर रहा था। १८१३ के अन्त तक उसने फ्रेञ्च लोगों को स्पेन से बाहर निकाल दिया।

नैपोलियन का राज्यच्युत होना—यूरोपियन राज्यों के गुट की यह इच्छा नहीं थी, कि नैपोलियन को सर्वथा नष्ट कर दिया जावे। वे उसे फ्रास की राजगद्दी पर विराजमान रखने के लिये उद्यत थे। फ्रास का अभिप्राय वे उत्तर मे र्‌हाइन नदी, उत्तर-पश्चिम में आल्पस की

पर्वतमाला और दक्षिण में पिरेनीज पर्वत से लेते थे। लुई १४ वे की महत्वाकाक्षा इसी सीमा को प्राप्त करने की थी। नैपोलियन को इस विशाल फ्रास का राज्य प्रस्तुत किया गया। परन्तु वह इतने से सन्तुष्ट नहीं रह सकता था। उसने फ्रास की सीमा को नियमित करने से सर्वथा इन्कार कर दिया। उसे अपनी तलवार का भरोसा था। वह किसी भी किसम के समझौते के लिये तैयार नहीं था। आखिर, १८१४ के प्रारम्भ मे रशिया, प्रशिया और आस्ट्रिया की ४ लाख सेना ने उत्तरी फ्रास पर आक्रमण किया। उधर वेलिङ्गटन का ड्यूक दक्षिण की तरफ से फ्रास पर आक्रमण कर रहा था। उसके साथ इङ्गलिश सेनाओं के अतिरिक्त स्पेन और पोर्तुगाल की भी सेनायें थीं। नैपोलियन के सम्मुख विकट समस्या उत्पन्न हो गई। ३१ मार्च १८१४ के दिन पेरिस पर कब्जा कर लिया गया। नैपोलियन को राज्य छोड़ने के लिये बाधित होना पड़ा। नैपोलियन ने भरपूर कोशिश की, कि वह मुकाबला करे। पर अब क्या हो सकता था! आखिर, उसे स्वीकार करना पड़ा, कि उसका तथा उसके परिवार का फ्रेञ्च राजगद्दी पर कोई अधिकार नहीं है। उसकी शान रखने के लिये उसकी 'सम्राट्' की पदवी कायम रखी गई और १२ लाख रुपया वार्षिक पैशिन दे दी गई। साथ ही, एल्बा के छोटे से द्वीप मे उसका अबाधित अधिकार स्वीकृत कर लिया गया।

बोर्बों राजवश का पुनरुद्धार—विजेता राष्ट्रों के सम्मुख अब यह प्रश्न आया, कि फ्रास की राजगद्दी के विषय मे क्या निर्णय किया जाय। इस समस्या का हल करने में देर नहीं लगी। फिर से बोर्बों राजवश का पुनरुद्धार कर दिया गया। लुई १६ वें के भाई को १८ वे लुई के नाम से राजगद्दी पर बिठाया गया। नैपोलियन के साम्राज्य का किस प्रकार निबटारा किया जाय, इस बात पर विचार करने के लिये वीएना में एक काग्रेस बुलाई गई। इस काग्रेस के सम्बन्ध मे हम आगे चल कर विचार करेंगे।

नैपोलियन का वापिस लौटना—इस बीच मे नैपोलियन चुपचाप नहीं बैठा था। एल्बा के अपने 'साम्राज्य' मे कैदी की तरह रहता हुआ यह महान 'सम्राट्' फ्रास के आन्तरिक परिवर्तनों तथा वीएना की काग्रेस को बड़े ध्यान से देख रहा था। फ्रास की जनता १८ वे लुई के शासन से सन्तुष्ट नहीं थी। उसके विरुद्ध असन्तोष निरन्तर बढ़ता जाता था। उधर वीएना मे एकत्रित राष्ट्र नैपोलियन के साम्राज्य के बंटवारे के सम्बन्ध मे आपस मे खूब लड़ झगड़ रहे थे। नैपोलियन ने देखा, समय आ गया है। अकस्मात् वह एल्बा से भाग निकला और १ मार्च १८१५ के दिन फ्रास जा पहुँचा। सेना अब भी उसकी भक्त थी। उसने उसका साथ दिया। खून का एक भी कतरा गिराये बिना नैपोलियन एक बार फिर फ्रास का सम्राट् बन गया। नैपोलियन में एक अद्भुत चामत्कारिक व्यक्तित्व था। वह लोगों को अपने पीछे लगाना जानता था। लोग वीरता तथा अद्भुत कार्यों के पीछे भागते हैं। नैपोलियन सचमुच वीर था। वह आख मींच कर छलाग मार सकता था। उसके व्यक्तित्व में एक विशेष प्रकार का जादू था। उसने लोगों से कहा—मैं तुम्हारी कुलीनों, जमींदारों और विषमताओं से रक्षा करने के लिये आया हूं। जो सबसे बड़ा साम्राज्यवादी और स्वेच्छाचारी था, वह अपने को फिर सम्राट बनाने के लिये अब लोकतन्त्र वादी तथा क्रान्तिकारी बन गया। नैपोलियन की यही विशेषता थी, वह मौके के अनुसार अपने को बदलना जानता था। दुनिया मे ऐसे लोग आसानी से सफल हो जाते हैं।

वाटर्लू का युद्ध—१८ वा लुई नैपोलियन के प्रगट होते ही फ्रास छोड़ कर भाग गया। सम्पूर्ण यूरोप में सनसनी सी फैल गई। वीएना के काग्रेस के सम्मुख एक भयानक समस्या उत्पन्न हो गई। सारा यूरोप युद्ध की दुन्दुभी से प्रतिध्वनित हो उठा। फिर से सेनाये सगठित की जाने लगी। वेलिङ्गटन का ड्यूक एक लाख सैनिकों के साथ प्रशिया की

एक लाख बीस हजार सेना को मिलने के लिए ब्रुसल्स की तरफ चल पड़ा। उसका ख्याल था, कि इङ्गलिश और प्रशियन सेना मिलकर नैपोलियन को परास्त करेगी। आस्ट्रिया की सेनाये भी र्‍हाइन नदी की तरफ चल पड़ीं। इस परिस्थिति में नैपोलियन के लिये आवश्यक था कि वह भी तैयारी करे। जल्दी जल्दी में उसने दो लाख सैनिक एकत्रित किए और उनको लेकर उत्तर की तरफ चल पड़ा। उसका विचार था कि इङ्गलिश, प्रशियन और आस्ट्रियन सेनाये परस्पर न मिलने पावें, एक एक करके तीनों को परास्त कर दिया जावे। १८ जून १८१५ के दिन वाटर्लू के रणक्षेत्र में उसने अपने जीवन की अन्तिम लड़ाई लड़ी। सम्भवतः, वह वेलिङ्गटन के ड्यूक की इङ्गलिश सेना को परास्त कर देता, पर सेनापति ब्लूचर की प्रशियन सेना ठीक मौके पर आ गई। उसकी सेना के पैर उखड़ गए। नैपोलियन हार गया। वाटर्लू का युद्ध संसार के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसने इस बात का अन्तिम रूप से फैसला कर दिया, कि राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद के सिद्धान्त में से किसकी विजय होती है, एक सैनिक ससार का शासन करने में सफल हो सकता है या नहीं।

सेन्ट हेलेना में कैद—वाटर्लू में परास्त होकर नैपोलियन पेरिस वापिस आया। परन्तु वहा लफायत के नेतृत्व में पार्लमेण्ट ने शासन सूत्र को अपने हाथ में सम्हाल लिया था। उसे राजगद्दी प्राप्त करने की कोई सम्भावना न रही। उसने निश्चय किया कि अपने लड़के के लिये स्वयं राजसिंहासन का परित्याग कर स्वयं फ्रास से भाग जाय। उसे स्वय ज्ञात नहीं था कि फ्रास से भागकर कहा पहुँचा जाय। सम्भवतः उसका खयाल अमेरिका जाने का था। परन्तु ब्रिटिश जहाजी बेड़ा फ्रास के समुद्र तट पर बड़े ध्यान से पहरा दे रहा था, वह नैपोलियन को कैद करना चाहता था। आखिर नैपोलियन ब्रिटिश लोगों के हाथ पड़ गया। नैपोलियन चाहता था, कि उसके साथ एक परास्त राजनीतिज्ञ और पदच्युत

सम्राट का सा व्यवहार किया जावे। पर ब्रिटिश लोग इस बात के लिये उद्यत न थे। वे उसे भयङ्कर आदमी समझते थे। एलबा के द्वीप से जिस तरह वह भाग आया था, उसे दृष्टि में रखते हुए यह सुरक्षित नहीं था, कि उस पर कड़ी निगाह न रखी जावे। ब्रिटिश लोग उसे दुनिया के लिये एक भयङ्कर उत्पात समझते थे। उसे ससार की दृष्टि मे परे रखने म ही कल्याण था। इसलिये निश्चय किया गया, कि उसे दक्षिणीय अटलांटिक सागर के एक छोटे से द्वीप सेंट हेलेना मे ले जा कर कैद कर दिया जावे।

सेण्ट हेलेना में नैपोलियन ६ वर्ष के लगभग रहा। उस पर कड़ा पहरा रखा जाता था। उसने अपना समय मुख्यतया इतिहास तथा अपने जीवन के सस्मरण लिखने मे व्यतीत किया। नैपोलियन के लिखे ये इतिहास और सस्मरण आत्म प्रशन्सा और कल्पित विचारों से भरे हुए हैं। उसने अपने को क्रान्ति का पक्षपाती तथा क्रान्ति के विचारों का प्रसारक लिखा है। वह लिखता है, कि मै शान्ति का पक्षपाती था। मैं पद दलित राष्ट्रों को स्वतन्त्र कराना चाहता था। परन्तु यूरोपियन राज्यों और विशेषतया इङ्गलैण्ड ने मेरे प्रयत्न को सफल नहीं होने दिया। उस ने लिखा है, कि मै सम्पूर्ण यूरोपियन राज्यों को अमेरिकन काग्रेस की तरह एक सगठन मे सगठित करना चाहता था और मुझे विश्वास है कि एक दिन मेरा यह विचार अवश्य ही क्रिया में परिणत होकर रहेगा।

अन्त—५ मई १८२१ के दिन यह महान विजेता अपने गौरवमय कृत्यों की रगभूमि से बहुत दूर एक छोटे से द्वीप में अपनी जीवन लीला को समाप्त कर गया। उसका मृतक संस्कार वहीं हुआ। २० वर्ष बाद १८४० में उसके मृतशरीर के अवशेषों को बडे सम्मान के साथ पेरिस ले आया गया, और वहा पर एक बड़ी शानदार समाध में उसके भौतिक अवशेषों को स्थापित कर दिया गया।

पन्द्रहवां अध्याय

नैपोलियन का इतिहास में स्थान

संसार के इतिहास में बड़े बड़े विजेताओं और आक्रान्ताओं को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। इतिहास की साधारण पुस्तकों में अलेक्जेंडर, सीजर, महमूद गजनवी, पाम्पे, हैनीबाल और नैपोलियन को जितना अधिक स्थान दिया गया है. उतना बड़े-बड़े धर्म प्रवर्त्तकों, वैज्ञानिकों तथा विचारकों को नही दिया गया। जिसने इतिहास का अक्षर भी पढ़ा है, वह सिकन्दर, महमूद और नैपोलियन का नाम जानता है। इतिहास मे इन्हें 'महान्' की उपाधि दी गई है और सामान्य पाठक इन्हें महापुरुष समझते हैं। लोगों को ये विजेता और आक्रान्ता बहुत ही बड़े, असाधारण और अद्वितीय व्यक्ति प्रतीत होते हैं। नैपोलियन के सम्बन्ध में हजारों पुस्तकें लिखी गई हैं, इतिहास मे उसे बड़ा गौरवपूर्ण स्थान मिला है। नाटक, कविता, उपन्यास—सब मे नैपोलियन एक अत्यन्त उज्ज्वल, महान् और सुवर्णीय सत्ता प्रतीत होता है।

परन्तु संसार को इतिहास मे नैपोलियन का वास्तविक स्थान क्या है? इस विषय पर लिखते हुए ऐतिहासिक को बड़ी कठिनता का मुकाबला करना पड़ता है। आप यदि नैपोलियन सम्बन्धी साहित्य को पढे, तो दो प्रकार के लेखक मिलेंगे। एक वे जिन्होंने नैपोलियन को

बहुत ऊंचा चढ़ा दिया है दूसरे वे, जो उसे अत्यन्त नीच तथा पशु तुल्य समझते हैं। उसके जीवन-काल में लोग नैपोलियन को एक आश्चर्यजनक विजेता समझते थे। उसकी अद्भुत वीर गाथाओं से सम्पूर्ण यूरोप व्याप्त हो गया था। फ्रास के लिये वह अनुपम विजेता था। उसकी तलवार ने फ्रास की शक्ति को रशिया की बर्फ से आच्छादित घाटियों और आल्प्स की दुर्गम पर्वतमाला से भी परे बहुत दूर तक विस्तृत कर दिया था। फ्रेञ्च लोग क्यों न उसको पूजते? उसी का काम था, कि ईजिप्ट और सीरिया की रहस्यमय अद्भुत वस्तुओं से पेरिस का अद्भुतालय परिपूर्ण हो गया था। इटली, हालैण्ड और स्पेन से करोड़ों रुपये फ्रास को भेजे गये थे। फ्रास की जनता उसके जादू भरे कृत्यों से चकित हुई थी। निस्सन्देह, वह उसके इशारे पर नाचती थी। उसकी मृत्यु के बाद जब फ्रास की दुरवस्था शुरू हुई—फ्रास का विशाल साम्राज्य बालू की भीत की तरह नष्ट हो गया—तब वहा के लोग उसका स्मरण कर आश्चर्य से चकित हो जाते थे। उनकी दृष्टि मे एक जादूगर आया था—जो फ्रास को इतनी दूर—इतने ऊँचे स्थान पर खींच ले गया था। पर उसका जादू का महल उसके साथ ही समाप्त हो गया। फ्रेञ्च लोगों की दृष्टि मे नैपोलियन ने वह गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया, जो सम्भवतः अन्य किसी व्यक्ति को नहीं मिला। फ्रेञ्च इतिहास, साहित्य और काव्य मे नैपोलियन सबसे अधिक उज्ज्वल, शानदार और पूजनीय व्यक्ति बन गया। पर फ्रास के शत्रुओं की दृष्टि में? नैपोलियन एक भयङ्कर राक्षस था। जो ससार की शान्ति और व्यवस्था को नष्ट करने के लिये उत्पन्न हुआ था। उन्होंने उसे बदनाम करने के लिये जो कुछ भी बन सका, किया। उसके पतन के बाद भी उसके विरुद्ध भावना प्रचण्ड रही। इङ्गलिश ऐतिहासिकों ने नैपोलियन को कभी भी सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखा। न केवल इङ्गलिश पर अन्य यूरोपियन ऐतिहासिक भी उसे घृणा की दृष्टि से देखते रहे।

पर आज नैपोलियन को अपनी जीवन लीला समाप्त किये एक सदी से अधिक समय व्यतीत हो चुका है। अब उसके सम्बन्ध में ठीक विचार बना सकना असम्भव नहीं रहा है। वस्तुतः नैपोलियन क्रांति की उपज था। फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति ने जो असाधारण और अद्भुत शक्ति उत्पन्न की थी, वही नैपोलियन की शानदार विजयों में मुख्य कारण थी। यह नहीं समझना चाहिये, कि नैपोलियन कोई अलौकिक पुरुष था. बिलकुल नहीं। इतिहास में कोई भी व्यक्ति अलौकिक नहीं होता। सब अपनी परिस्थितियों की कृति होते हैं। क्रांति ने एक अद्भुत शक्ति,एक अद्भुत लहर उत्पन्न की थी, जो यूरोप के अधिकाश देशों को व्याप्त कर रही थी। नैपोलियन तो इस लहर में तैरते हुए दूर से नजर आने वाले एक बड़े लक्कड़ के समान था। यह लहर नैपोलियन की कृति नहीं थी। उसे जो कुछ भी सफलता हुई, उसने जो कुछ भी विजय प्राप्त की, वह उसकी अलौकिक शक्ति का परिणाम नहीं था। उसमें कोई ऐसी असाधारण शक्ति नहीं थी—जिसने आस्ट्रिया, प्रशिया, स्पेन और रशिया को उसके सम्मुख घुटने टेक देने को विवश कर दिया। वह अद्भुत शक्ति तो उन नई प्रवृत्तियों में—नवीन भावनाओं में थी· जिन्हें फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति ने जन्म दिया था, नैपोलियन तो उन प्रवृत्तियों के हाथ में एक कठपुतली की तरह काम कर रहा था। यदि इस बात को हम अपनी दृष्टि में रखे, तो हम नैपोलियन के सम्बन्ध में ठीक-ठीक सम्मति बनाने में समर्थ हो सकेंगे। जहा तक उसके गौरवमय असाधारण कृत्यों का सम्बन्ध है, वहा तक यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, कि यह उसके किसी जादू—किसी अलौकिक प्रभाव के परिणाम नहीं थे। वे सब हमले, वे सब विजय क्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत जनता की शक्ति के परिणाम थे। जिस प्रकार पैगम्बर मुहम्मद के कार्य से अरब की जनता में एक अद्भुत शक्ति प्रादुर्भूत हुई थी और उसने अपने समय के सम्पूर्ण सभ्य संसार को व्याप्त कर लिया था—अरब लोगों के विविध सेनापति तो उस

शक्ति के प्रतिनिधि मात्र थे। इसी प्रकार फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति से जो अतुल शक्ति उत्पन्न हुई थी, वह सम्पूर्ण यूरोप को व्याप्त कर रही थी। नैपोलियन, मूरो आदि सेनापति तो उसके प्रतिनिधि—निशान—उपलक्षण मात्र थे। नैपोलियन अपनी सैनिक प्रतिभा से उनमें अधिक सफल तथा अधिक प्रसिद्ध हो गया, पर वह शक्ति उसकी अपनी कृति नहीं थी।

नैपोलियन की वैयक्तिक योग्यता के सम्बन्ध मे अपनी सम्मति बनाने का अवसर हमें तब प्राप्त होता है, जब वह घटनाचक्र से—जटिल परिस्थितियों से, फ्रेञ्च रिपब्लिक का प्रधान कान्सल बन गया था, जब राज्यक्रान्ति का सब से प्रमुख नेता वही था। प्रधान कान्सल के पद पर अधिष्ठित होने पर नैपोलियन को एक ऐसा अद्भुत अवसर मिला था, जैसा कि उससे पूर्व शायद किसी अन्य व्यक्ति को नहीं मिला। पुराने जमाने का अन्त हो रहा था, नवीन युग की सृष्टि की जा रही थी। विषमता, अन्याय, अत्याचार और सकीर्णता पर आश्रित मध्य-कालीन सस्थाये नष्ट हो रही थीं, और उनके स्थान पर एक ऐसी नई दुनिया का प्रादुर्भाव हो रहा था, जिसमे सब लोग समान हों, कोई किसी पर अत्याचार करने वाला न हो। सब एक दूसरे को भाई भाई समझे। फ्रास में यह नया युग बहुत कुछ प्रादुर्भाव हो चुका था और आस पास के राज्य आख मींचकर उसका अनुसरण कर रहे थे। सारा यूरोप एक नये युग का स्वप्न देख रहा था। अब इस सम्पूर्ण प्रवृत्ति, इस सारी लहर का नेता था—नैपोलियन। निस्सन्देह, नैपोलियन इस महत्वपूर्ण उच्च स्थान पर पहुँच गया था। सारा फ्रास उसके कब्जे मे था—उसकी इच्छा ही वहा कानून थी। इसलिये नहीं, कि ईश्वर ने उसे इस पद पर पहुँचाया था, बल्कि इसलिये कि जनता ने उसे यह गौरवपूर्ण सम्मान प्रदान किया था। इस स्थिति का प्रयोग ससार मे शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने के लिये भी किया जा सकता

था। नैपोलियन नये युग का संस्थापक भी बन सकता था। पर उसने अपने गौरवपूर्ण असाधारण पद का प्रयोग किस काम के लिये किया? क्या क्रान्ति को स्थिर और व्यवस्थित करने के लिये? क्या माटस्क और रूसो के सिद्धान्तों को एक क्रियात्मक सत्य बना देने के लिये? क्या सम्पूर्ण यूरोप के सम्मुख क्रान्ति के विधायक और उज्वल रूप को प्रगट करने के लिये? नहीं, इसके लिये नैपोलियन ने कुछ नहीं किया। फिर उसने क्या किया? वह १४ वें लुई के पीछे चलना चाहता था। उसे टुइलरी के राजप्रासाद में दरबारियों की संगति में रहने में आनन्द अनुभव होता था। उसने अपनी असाधारण शक्ति और स्थिति का प्रयोग फ्रांस में फिर से एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता का पुनरुद्धार करने के लिये किया। उसके प्रयत्न से फिर राजदरबार का उद्धार हुआ, लोगों में ऊँच नीच के भाव उत्पन्न हुए, भाषण, लेखन और मुद्रण की स्वतन्त्रता छीन ली गई। क्रान्ति ने जो कुछ किया था, उस पर पानी फेरने के लिये—नैपोलियन के इन कार्यों का कितना असर हुआ।

वह सीजर का अनुसरण करना चाहता था। रोमन इतिहास उसे बहुत आकर्षित करता था। 'कान्सल' शब्द उसने रोमन इतिहास से ही लिया था। प्राचीन रोमन रिपब्लिक के प्रधान को 'कान्सल' कहते थे, सीजर भी पहले कान्सल बना था। नैपोलियन भी पहले कान्सल बना। फिर सीजर सम्राट् बन गया। नैपोलियन ने भी उसका अनुसरण किया। वह भी 'कान्सल' से 'सम्राट' बन गया। चाहिये तो यह था कि वह राज्यक्रान्ति द्वारा उत्पन्न 'रिपब्लिक' को स्थिर और व्यवस्थित करता। यह न कर उसने सम्राट बनने में ही गौरव समझा। इसके बाद उसने जो कुछ भी कार्य किया—वह अपनी 'सम्राट' की स्थिति को दृढ करने के लिये ही किया। फ्रांस के बहिष्कृत कुलीन लोगों को उसने फिर वापिस बुला लिया। रोम के पोप के साथ उसने समझौता किया। किस लिये?

क्या उसे स्वयं रोमन कैथोलिक धर्म में श्रद्धा थी ? क्या वह धर्म को मनुष्यों के लिये उपयोगी समझता था ? नहीं। उसका विचार था कि पोप के पक्ष में हो जाने से उसकी स्थिति बहुत दृढ़ हो जावेगी। धर्म को साथ लिये बिना उसकी राजसत्ता कायम नहीं रह सकेगी —ऐसा उसका विचार था। उसने एक बार कहा था—"धर्म के बिना राज्य में व्यवस्था कैसे रह सकती है ? विषमता के बिना समाज कायम नहीं रह सकता और विषमता रखने के लिये धर्म आवश्यक है। जब एक आदमी भूख के मारे तड़प तड़प कर प्राण दे रहा हो और दूसरे के पास इतनी अधिक सम्पत्ति हो, कि वह यह भी न जानता हो कि वह उसका क्या करे, इस हालत में वह भूखा मरता हुआ मनुष्य कैसे सन्तुष्ट रह सकता है, जब तक कि धर्म आकर उसे यह न समझावे—कि परमात्मा की ऐसी ही इच्छा है। संसार में अमीर और गरीब दोनों ही रहने चाहियें परंतु परलोक में यह भेद न रहेगा।" नैपोलियन का खयाल था, कि लोगों को सन्तुष्ट रखने के लिये धर्म के बिना काम नहीं चल सकता। धर्म एक ऐसी उत्तम वस्तु है, जो गरीब, दुखी और अत्याचार पीड़ित लोगों को अपनी दुर्दशा में भी सन्तोष और शान्ति सिखाती है, अपनी दुर्दशा को परम कृपालु मङ्गलरूप भगवान की इच्छा बताकर लोगों को दुखी और दलित रहने के लिये वाधित करती है। नैपोलियन चाहता था, कि इस अत्युत्तम पदार्थ का अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये प्रयोग करे। पहले जब वह जैकोबिन दल का सदस्य था, तब धर्म को अत्यन्त हानिकारक समझता था और हमेशा उसके खिलाफ रहता था, पर अब अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिये धर्म का पक्षपाती बन गया था।

अपनी राजनीतिक महत्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने के लिये ही नैपोलियन ने ईसाई धर्म का विदेशों में प्रचार करने का संकल्प किया था। उसने लिखा था "मैं चाहता हूं कि ईसाई मिशनों का फिर से संगठन

किया जावे। रशिया, अफ्रीका और अमेरिका में ये ईसाई मिशनरी मेरे लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। ये जहा भी जावेंगे, देशों का ठीक ठीक परिज्ञान प्राप्त कर पावेंगे। उनकी पोशाक को देख कर कोई उन पर सन्देह नहीं करेगा। कोई यह नहीं जान पावेगा कि वे राजनीतिक और व्यापारी दृष्टि से खोज कर रहे हैं।" धर्मप्रचार में भी नैपोलियन का उद्देश्य राजनीतिक और व्यापारिक था।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नैपोलियन के विचार बहुत संकीर्ण थे। १७९२ में फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने बाधित और मुफ्त शिक्षा की स्कीम तैयार की थी। उनका विचार था, कि एक भी फ्रेञ्च पुरुष व स्त्री ऐसी नही रहनी चाहिए, जो शिक्षित न हों। जिस उपाय का अवलम्बन सभी सभ्य देशों में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में किया गया, फ्रेञ्च क्रान्तिकारी उसे अठारहवीं सदी मे ही प्रयोग में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। यदि राज्यक्रान्ति के मार्ग में नैपोलियन की महत्वाकाक्षायें एक भारी विघ्न उपस्थित न कर देतीं, तो सम्भवतः फ्रांस में बहुत पहले शिक्षा का प्रसार हो जाता। पर नैपोलियन की दृष्टि में प्रारम्भिक शिक्षा का बहुत महत्व नही था। वह इस बात की कोई आवश्यकता नहीं समझता था, कि सर्वसाधारण को शिक्षित किया जावे। निस्सन्देह, उसके समय मे बहुत से शिक्षालय खुले। पर ये नैपोलियन की प्रतिभा के परिणाम नहीं थे। राज्य क्रान्ति ने लोगों में शिक्षा के लिये प्रबल आकांक्षा उत्पन्न कर दी थी। नैपोलियन तो उसमें एक बाधा रूप ही था। स्त्री शिक्षा के विषय मे नैपोलियन के विचार निम्न लिखित थे—मै नहीं समझता, कि हमें लड़कियों की शिक्षा के सम्बन्ध मे किसी योजना को तैयार करने के लिये अपने दिमागों को तकलीफ देने की जरूरत है। उनकी शिक्षा के लिये उनकी मातायें ही काफी हैं। सार्वजनिक शिक्षा उनके लिये किसी काम की नहीं है, क्योंकि उन्हें जनता मे आने की आवश्यकता ही कब होती है। उनके लिये तो रीति रिवाज और व्यवहार की शिक्षा ही

पर्याप्त है—आखिर, उन्हें विवाह ही तो करना है। यह मत समझिये कि ये विचार एक ऐसे आदमी के हैं, जो अर्वाचीन काल की रोशनी से पहले उत्पन्न हुआ था। ये विचार एक ऐसे सम्राट के हैं, जिसे फ्रेञ्च राज्य क्रान्ति की नवीन भावनाओं ने इतने ऊँचे पद पर पहुंचाया था।

नैपोलियन यदि चाहता तो राज्यक्रान्ति के विचारों को न केवल फ्रास मे, अपितु अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में फैला सकता था। क्रान्ति द्वारा जिस नवीन युग की स्थापना की जा रही थी और जिससे मनुष्य जाति का अनुपम कल्याण होना था, उसमे नैपोलियन असाधारण रूप से सफलता प्राप्त कर सकता था। पर उसने इस दिशा मे जरा भी प्रयत्न नहीं किया। उसके कृत्यों से क्रान्ति के अनेक प्रयोग नष्ट ही हुए। निस्सन्देह उसकी विजयों ने क्रान्ति की भावना को दूर दूर तक विस्तृत कर दिया था। पर यह होना सर्वथा स्वाभाविक था। जो देश फ्रेञ्च लोगों के ससर्ग में आते थे, वे नई भावनाओं से आप्लवित हुए बिना नहीं रह सकते थे। फ्रेञ्च सेनाये क्रान्ति की लपटो के समान थीं। वे जहा जाती थी, किलों और गावों को ध्वन्स करने के साथ साथ पुराने जमाने की गन्दगी के ढेरों को भी भस्म करती जाती थीं। इसमें नैपोलियन की क्या कृति थी? देखना तो यह है, कि जब वह स्वयं फ्रास का कर्त्ता धर्ता बन गया, तब उसने क्या किया, तब फ्रास और उसके साम्राज्य का शासन किन सिद्धातों से किया गया? क्या उस समय क्रान्ति की विजयों और सफलता के लिये कोशिश की गई? नहीं। सत्य बात तो यह है, कि नैपोलियन पुराने जमाने की लहर मे बह गया। प्रधान कान्सल के रूप मे ही उसने अपने भाई बहिनों को ऊँचे ऊँचे पदों पर नियत किया, बिना इस बात की परवाह किये कि वे उन कार्यों के योग्य हैं, उन्हे अत्यन्त महत्त्वपूर्णपद दिये गये। यह कितनी स्वाभाविक बात है? पर साथ ही कितनी अनुचित भी है। जिस-

प्रकार पुराने जमाने के अमीर उमरा लोग अपने भाइयों, कृपापात्रों और आश्रितों को उचित व अनुचित सब प्रकार के तरीकों से ऊँचे पदों पर पहुँचाने की कोशिश किया करते थे, वैसे ही नैपोलियन ने भी किया। वह इस स्वाभाविक मानवीय निर्बलता से ऊँचा नहीं उठ सका। क्रान्ति का सिद्धान्त था, कि मनुष्यों मे ऊँच नीच का भेद कोई नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता से राजकीय पदों को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। पर इस शक्तिशाली, साहसी और सफल नैपोलियन के भाई बहिन केवल इस लिये बड़े बड़े राज्यों के शासक और कर्त्ता धर्ता बनाये गये, क्योंकि वे उसके निकट सम्बन्धी थे। नैपोलियन उनको खुश करना चाहता था, उनकी दृष्टि में बड़ा बनना चाहता था। अपने घर में—अपने परिवार में बड़प्पन प्रदर्शित करना मनुष्यों के लिये कितना स्वाभाविक होता है।

और जब नैपोलियन सम्राट् बन गया ? फिर १६ वे लुई का जमाना वापिस लौट आया। वही राज दरबार, वही पोशाके, वही अनुचर और पार्श्वचर—वही सब शान शौकत और धूम धाम। रिपब्लिकन फ्रास के अधीन अन्य रिपब्लिकन राज्यों मे भी अब राजतन्त्र शासन स्थापित किया गया और उन पर शासन करने के लिये नियत किये गये नैपोलियन के भाई बहिन। कहा तो फ्रास की क्रान्तिकारी सेनाये यूरोप भर में राजसत्ता का अन्त करने के लिये सघर्ष कर रही थीं, और कहा यह सफल सेनापति रिपब्लिकन राज्यों मे एक सत्तात्मिक शासन स्थापित कर रहा था। कितना भारी परिवर्तन था ? फ्रास की क्रान्तिकारी भावनायें इस महान् सम्राट् के हाथ मे पड़कर कितनी विकृत और पतित रूप धारण कर रही थीं।

नैपोलियन को तब तक सन्तोष नहीं हुआ, जब तक कि उसने आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह कर अपने को यूरोपियन राजाओं की दृष्टि मे कुलीन साबित नहीं कर दिया। सचमुच नैपोलियन इस बात

के लिये उत्सुक था, कि लोग उसे अपने से ऊँचा, बहुत अधिक ऊँचा समझें। सब लोग यह भूल जावें, कि वह कोर्सीका के एक गरीब वकील का लडका है, जो ब्रीन के सैनिक शिक्षणालय में अपने साथी कुलीन विद्यार्थियों द्वारा निरन्तर अपमानित किया जाता था। वह चाहता था, कि लोग उसे सम्राट् महान् नैपोलियन समझें, जो कि आस्ट्रिया के पवित्र उच्च हाप्सबुर्ग सम्राट् का जामाता है, और जिसकी महारानी आस्ट्रियन राजकुमारी है। कैसा ऊंचा खयाल था! राज्यक्रान्ति इन्हीं भावनाओं के प्रसार के लिये तो उत्पन्न हुई थी! रशियन जार अलक्जैण्डर के साथ टिलसिट में बैठ कर उसने कैसे ऊंचे भावों को प्रगट किया था! 'यूरोप क्या है?' 'हम यूरोप हैं।' जनता कहा गई! यूरोप की जनता नैपोलियन की दृष्टि में कोई स्थान ही नहीं रखती थी। इस दृष्टि से अलक्जैण्डर और नैपोलियन—दोनों बिलकुल एक जैसे विचार रखते थे।

इस स्थिति में हम नैपोलियन के सम्बन्ध मे क्या सम्मति प्रगट करें? इसमें तो कोई सन्देह नहीं, कि वह असाधारण शक्ति सम्पन्न, साहसी और जबर्दस्त व्यक्ति था। उसके अन्दर एक किसम की आकर्षण शक्ति थी, जिससे लोग उसके पीछे लग जाते थे। अपनी योग्यता और सामर्थ्य से ही वह अत्यन्त साधारण स्थिति से ऊंचा उठ कर एक महान् सम्राट् के पद को पहुँचा था। पर इस उन्नति में उसकी योग्यता ही एकमात्र कारण नहीं है। नैपोलियन ने जो कुछ कर दिखाया, उसमें उसकी अपनी योग्यता के अतिरिक्त अधिक महत्वपूर्ण कारण—बहुत अधिक महत्वपूर्ण कारण वह अद्भुत और अद्वितीय शक्ति है, जिसे फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने उत्पन्न किया था। उसी शक्ति का सहारा लेकर नैपोलियन ने इतनी असाधारण विजय प्राप्त की। उसी शक्ति का दुरुपयोग कर वह एक उच्च सम्राट् के पद को पहुँच गया और सम्पूर्ण यूरोपियन राज्यों के लिये एक भयंकर खतरा बन गया। यदि सैनिक शक्ति और साहस

के अतिरिक्त नैपोलियन में प्रतिभा, विचार और सत्कल्पना भी होती, तो वह अपनी महत्वपूर्ण परिस्थितियों का उपयोग और ही प्रकार से करता। उस हालत में 'सब राष्ट्रों का युद्ध' उसके खिलाफ न लड़ा जाता, सब राज्यों की जनता भी अपने राजाओं के साथ उसका मुकाबला करने के लिये न उठ खड़ी होती। यूरोप भर की जनता उसे अपना रक्षक और नेता समझती और उसकी सहायता प्राप्त कर अपने को स्वाधीन बनाने का प्रयत्न करती। नैपोलियन इस गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सकता था। इसके लिये उसे कितना उत्तम अवसर प्राप्त हुआ था। पर उसने इस क्षेत्र में अपनी महत्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने का प्रयत्न नहीं किया। वह बह गया, उस धारा में—जो गिरावट और पतन की तरफ ले जाती थी।

नैपोलियन के युद्धों में कुल मिला कर ४० लाख के लगभग मनुष्यों के जीवन नष्ट हुए। इतने जीवनों का विनाश किस लिये हुआ? एक आदमी की महत्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने के लिये। इससे बहुत कम, सम्भवतः इसके शतांश से नैपोलियन संसार को नवयुग का सन्देश देने का कार्य कर सकता था। पर उसका ध्यान ही इस तरफ नहीं था। लुई १६ वें का जीवन उसे अधिक आदर्श प्रतीत होता था।

सोलहवां अध्याय

नैपोलियन के बाद यूरोप की समस्यायें

क्रान्ति का दमन—फ्रास की राज्यक्रान्ति को प्रारम्भ हुए एक चौथाई शताब्दि व्यतीत हो चुकी थी। इस बीच में यूरोप में भारी उथल पुथल मच गई थी। पुरानी सस्थाये टूट रही थीं, नवीन युग का प्रादुर्भाव हो रहा था। नई और पुरानी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में भारी संघर्ष चल रहा था। नैपोलियन परास्त हो गया था, उसके साथ ही फ्रास का सैनिक गौरव भी मट्टी मे मिल गया था। पर इससे नई प्रवृत्तियों का अन्त नहीं हो गया था। 'स्वतन्त्रता समानता और भ्रातृभाव' के निनाद से अब भी यूरोप गूज रहा था। राष्ट्रीयता की भावना लोगों मे नवजीवन उत्पन्न कर रही थी। एकतन्त्र शासन का स्थान लोकतन्त्र शासन ले रहा था। लोग आपस मे बात करते थे, राज्य जनता का है। वोट का हक सबको होना चाहिये। राजा की सत्ता जनता की इच्छा पर आश्रित है। ये सब प्रवृत्तिया फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति ने उत्पन्न की थीं। १७९२ से लेकर १८१५ तक फ्रांस के खिलाफ जितने भी गुट बने, सब इन प्रवृत्तियों के दुश्मन थे, इन्हें नष्ट करने मे ही यूरोप का कल्याण समझते थे। इन गुटों का उद्देश्य क्रान्ति को कुचलना तथा एकतन्त्र शासन को फिर से स्थापित करना था। अब जब कि ये गुट अपने उद्देश्य में सफल हो रहे थे, जब इन्होंने फ्रास को परास्त कर दिया था,

तब इनका स्वाभाविक रूप से यही प्रयत्न था, कि नई प्रवृत्तियों को सर्वथा नष्ट कर फिर से पुराने जमाने को कायम कर दिया जावे। इङ्गलैण्ड और प्रशिया में नये युग की रोशनी पहुँच चुकी थी, पर वहा के शासक भी इस बात को अच्छी तरह समझे हुए थे कि उनका कल्याण इसी मे है, कि रशिया और आस्ट्रिया के साथ मिलकर नई प्रवृत्तियों को कुचल दिया जाय। इसलिये नैपोलियन को परास्त करने वाले विजयी राज्यों के सम्मुख पहला प्रश्न यह था, कि कौन-से ऐसे उपाय किये जावे, जिनसे क्रान्ति की भावनाओं का नामोनिशान ही ससार से मिट जावे।

मैटरनिख—नैपोलियन के पतन के बाद यूरोप का प्रधान राजनीतिज्ञ का मैटरनिख था। प्रतिक्रिया और क्रान्ति की विरोधी प्रवृत्तियों को मैटरनिख के रूप मे एक अत्यन्त योग्य नेता मिल गया था। मैटरनिख का जन्म १७७३ में हुआ था। वह र्‌हाइन नदी के तट पर स्थित कोब्लेन्ट्स नामक स्थान का रहने वाला था। उसके माता पिता कुलीन श्रेणी के व्यक्ति थे। उसका पालन पोषण कुलीन वातावरण में हुआ था। जब वह विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर रहा था, तब उसने फ्रास से भागे हुए कुलीन परिवारों की दुःख गाथाओं को सुना था। इन गाथाओं तथा राज्यक्रान्ति के वृत्तान्त को सुनकर उसके हृदय मे नवीन प्रवृत्तियों के विरुद्ध तीव्र भावना उत्पन्न हो गई थी। उसकी पैतृक सम्पत्ति नैपोलियन ने जब्त करली थी, इस कारण वह क्रान्ति तथा नई प्रवृत्तियों का और भी अधिक दुश्मन हो गया था। आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री के परिवार मे उसका विवाह हुआ था। इस कारण उसकी महत्ता तथा वैभव बहुत अधिक बढ गये थे। अपने श्वसुर-कुल की सहायता से वह यूरोप के सभी राजनीतिज्ञों तथा राजकुलों से परिचित हो गया था। धीरे धीरे आस्ट्रिया के राजनीतिक वातावरण में उसका महत्व बढता गया। १८०९ में उसे प्रधान मन्त्री

के पद पर नियत किया गया। इसके बाद मैटरनिख ४० साल तक निरन्तर आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री रहा। इस सुदीर्घ काल में उसने अपनी शक्ति को पूर्णरूप से क्रान्ति की भावनाओ को नष्ट करने तथा पुराने जमाने को स्थापित करने के लिये लगा दिया। उसका सिद्धान्त था, कि क्रान्ति एक ऐसी बीमारी है, जिसका इलाज किया जाना चाहिये। यह एक ऐसा ज्वालामुखी है, जिसका शमन करना आवश्यक है। क्रान्ति एक ऐसा भयङ्कर राक्षस है, जो हर समय सामाजिक व्यवस्था को निगल लेने के लिये तैयार रहता है। यह कहा करता था, कि राजाओं को ही यह अधिकार है, कि वे अपनी प्रजा के भाग्यों का निबटारा करें। राजा केवल ईश्वर के सम्मुख ही उत्तरदायी होते हैं, जनता के प्रति नहीं। उसका मत था, कि यूरोप को स्वतन्त्रता की जरूरत नहीं है, उसे शान्ति की आवश्यकता है। वह अपने जीवन का यही उद्देश्य समझता था, कि समाज के क्षीण होते हुए सगठन की रक्षा करने के लिये नई प्रवृत्तियों तथा क्रान्ति की भावनाओं को जड से नष्ट कर दिया जावे।

केवल मेटरनिख ही नहीं, यूरोप के अन्य राजनीतिज्ञ भी इन्ही विचारों को मानते थे। उस समय के यूरोपियन वातावरण में ये ही विचार मुख्यतया प्रचलित थे। इन राजनीतिज्ञों का यही सिद्धान्त था कि जनता के अधिकारों की उपेक्षा की जाय। जनता शासन में हिस्सा चाहती है, अपने अधिकार मागती है—कितनी फिजूल बात है। अधिकार तो राजा के हैं। दुनिया मे रिपब्लिकों की जरूरत नहीं है। वैध शासन और अराजकता—एक ही बात है। यह प्रतिक्रिया का युग था। फ्रास ने जिन नई प्रवृत्तियों को शुरू किया था, उनके विरुद्ध अब भयङ्कर प्रतिक्रिया हो रही थी। तलवार के जोर पर पुराने जमाने को स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा था। मेटरनिख इस सम्पूर्ण प्रयत्न का प्रधान पुरोहित था। इसीलिये इस युग को 'मेटरनिच का युग' भी कहते हैं।

नैपोलियन के पतन के बाद यूरोप का पुनः निर्माण करने के लिये वीएना में जो कांग्रेस हुई, उसके सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण विचारणीय विषय यह था, कि क्रान्ति के भूत से किस प्रकार यूरोप की रक्षा की जावे, और समाज को छिन्न भिन्न होने से किस प्रकार बचाया जावे।

नैपोलियन के साम्राज्य की व्यवस्था—इसके अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सम्मुख यह था, कि नैपोलियन के साम्राज्य की क्या व्यवस्था की जावे। नैपोलियन की असाधारण विजयों ने यूरोप के पुराने राजवंशों को नष्ट कर दिया था। स्पेन, पोर्तुगाल, इटली, नेपल्स, स्वीडन, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रियन नीदरलैण्ड, पोलैण्ड आदि विविध देशों के पुराने शासक नैपोलियन द्वारा नष्ट कर दिये गये थे। इन सब पर नैपोलियन के बन्धु बान्धव या सेनापति शासन करते थे। अब उसके पतन के बाद यह प्रश्न था, कि इन विविध राज्यों के शासन की क्या व्यवस्था की जावे। यह प्रश्न बहुत विकट था। क्रान्ति को कुचलने के प्रश्न पर तो सब राज्य सहमत थे, पर इस विषय में उनमें भारी मतभेद थे। यूरोप के सभी राज्य महत्वाकांक्षी, साम्राज्यवादी तथा स्वार्थ से परिपूर्ण थे। वे इस बात के लिये उत्सुक थे, कि इस विशेष परिस्थिति से लाभ उठा कर अपने स्वार्थ को सिद्ध किया जावे। इसके अतिरिक्त विविध व्यक्तियों के विविध राजगद्दियों के सम्बन्ध में दावों पर भी गम्भीरता के साथ विचार किया जाना था। उस जमाने में राज्य भी मामूली जायदाद की हैसियत रखते थे। जिस तरह जमीन जायदाद के मामले में अनेक दावेदार होते हैं, और उन पर कानून की बारीकियों से फैसला करना होता है, उसी प्रकार राज्यों का भी निर्णय होता था। नैपोलियन के साम्राज्य के पतन से जो बहुत से प्रदेश इस समय राजा से रहित थे, उनके दावेदारों की कमी नहीं थी। वीएना की कांग्रेस में इन सबका विचार होकर यह फैसला होता था, कि कौन राज्य किस व्यक्ति के सुपुर्द किया जावे।

चर्च की समस्या—चर्च का मामला और भी विकट था। राज्यक्रान्ति ने न केवल फ्रास मे, अपितु पश्चिमी यूरोप के बहुत बड़े हिस्से मे चर्च की व्यवस्था को सर्वथा नष्ट कर दिया था। प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक चर्चों का भेद तो यूरोप में था ही, अब राज्यक्रान्ति के कारण धर्म के विरुद्ध भावना भी बलवती हो गई थी। नैपोलियन ने तो चर्च को सर्वथा राज्य की कठपुतली बना दिया था। पोप को कैद कर तथा उसके राज्य को अपने कब्जे में कर नैपोलियन ने चर्च के सम्पूर्ण रोब को ही धूल में मिला दिया था। पुराने जमाने की स्थापना में लगे हुए वीएना में एकत्रित राजनीतिज्ञों के सम्मुख चर्च की व्यवस्था का भी प्रश्न विद्यमान था।

शान्तिरक्षा का उपाय—साथ ही, ये राजनीतिज्ञ ऐसा उपाय ढूंढने के लिये भी प्रयत्नशील थे, जिससे यूरोप में युद्ध की सम्भावना कम हो जावे। २५ वर्ष के निरन्तर युद्धों से यूरोप के राज्य तग आ गये थे। इसके अतिरिक्त नैपोलियन के विरुद्ध जो अन्तिम गुट बना था, उसमे यूरोप के बहुत से प्रमुख राज्य सम्मिलित थे। अब इन राज्यों के राजनीतिज्ञों का खयाल था, कि यदि इस गुट को कायम रखा जावे, तो एक ऐसे उपाय का सुगमता से आविष्कार किया जा सकता है, जिससे भविष्य में युद्ध की सम्भावना बहुत कुछ कम हो जावे। इस उपाय को ढूढ निकालना भी उनके सम्मुख एक बहुत महत्वपूर्ण समस्या थी।

सत्रहवां अध्याय

वीएना की कांग्रेस

पेरिस की सन्धि—जिस समय नैपोलियन को फ्रांस से वहिष्कृत कर एल्बा के द्वीप में भेज दिया गया, और १८ वें लुई को गद्दी पर बिठाया गया, उसी समय कुछ महत्वपूर्ण तथा आवश्यक मामलों का फैसला कर लिया गया था। ३० मई १८१४ को विजयी राज्यों ने १८ वें लुई के साथ सन्धि की थी, जो कि पेरिस की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार फ्रांस पर शासन करने के लिये वोर्बो वंश का अधिकार स्वीकृत किया गया। फ्रांस की वह सीमा निश्चित की गई, जो कि क्रान्ति से पूर्व १ नवम्बर १७९२ के दिन थी। उस दिन जो उपनिवेश फ्रांस के आधीन थे, वे भी उसे वापिस लौटा दिये गये। नैपोलियन के भग्न साम्राज्य से नीदरलैण्ड के राज्य की सृष्टि की गई। यह हालैण्ड और वेल्जियम को मिला कर बनाया गया था। इस नवीन राज्य पर शासन करने के लिये हालैण्ड के पुराने आरेन्ज राजवन्श के अधिकार को स्वीकृत किया गया। स्विटजरलैण्ड को स्वतन्त्र कर दिया गया। जर्मनी के विविध राज्यों को मिलाकर एक नवीन सन्धि की रचना की गई। इटली के विविध पुराने राज्यों का पुनरुद्धार किया गया, और इस प्रकार जो विविध रिपब्लिकन राज्य क्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत हुए थे, उन सब का अन्त कर दिया गया। पेरिस की सन्धि में मोटी मोटी

बातों का निबटारा कर लिया गया था। शेष बातें वीएना की कांग्रेस के लिये छोड़ दी गई थीं। महत्त्व पूर्ण प्रश्नों का फैसला वीएना में ही किया जाना था।

कांग्रेस के प्रतिनिधि—सितम्बर १८१४ में वीएना की कांग्रेस प्रारम्भ हुई। संसार के आधुनिक इतिहास में यह कांग्रेस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। राजनीतिज्ञों को इससे बड़ी बड़ी आशायें थी। टर्की के सिवाय शेष सब यूरोपियन देशों के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए थे। कुल मिला कर ९० बड़े महाराजा और ५३ राजा—व उनके प्रतिनिधि इसमें एकत्रित थे। आस्ट्रिया का सम्राट फ्रांसिस प्रथम अपने योग्य प्रधान मन्त्री मेटरनिख के साथ इस कांग्रेस का सम्पूर्ण प्रबन्ध कर रहा था। सब राजे महाराजे उसके अतिथि थे। रशिया का जार अलैक्जैण्डर प्रथम अपने मन्त्री नेसलरोड और जर्मनी के प्रसिद्ध नेता स्टाइन के साथ उपस्थित था। प्रशिया का राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय हार्डनवर्ग और फान हुम्बोल्ड्ट को साथ लेकर आया था। ग्रेट ब्रिटेन ने कैसलरे तथा वेलिङ्गटन के ड्यूक को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। फ्रांस की तरफ से टेलीरा आया था, जो मृदुभाषिता और चाणाक्षता में अपना सानी नहीं रखता था। पोप की तरफ से कार्डिनल गान साल्वी उपस्थित हुआ था। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और राजे महाराजे यूरोप के भाग्य का निर्माण करने के लिये विएना में एकत्रित हुए थे। इतने महाराजों, अमीर उमराओं, सरदारों और श्रीमन्तों के उपस्थित होने से वीएना की शान का कोई ठिकाना नहीं रहा था। तरह तरह की बढ़िया पोशाकें सब तरफ नजर आती थीं। धूम धाम और रौनक का कोई अन्त नहीं था। प्रतिनिधियों का स्वागत करने के लिये आस्ट्रियन सरकार ने कोई कसर नहीं उठा रखी थी। भोज, गान, नाच, तमाशे आदि की कोई हद्द न थी। यूरोप भर से नाचने गाने वाले इकट्ठे किये गये थे। प्रतिनिधियों

की आवभगत करते हुए आस्ट्रियन सरकार दिवालिया तक हो गई थी।

कार्यनीति—कांग्रेस के कार्य का कोई निश्चित ढग न था। कोई प्रस्ताव पेश नहीं होते थे, वोट लेने की भी व्यवस्था नहीं थी। नाचघर मे राज्यों की सीमायें तय होती थी। नाच तमाशे देखते हुए राज्यों को वढाने या घटाने का फैसला हो जाता था। गम्भीर से गम्भीर राजनीतिक मामले सहभोजों, तमाशों और संगीत सम्मेलनों मे तय कर लिये जाते थे। किसी ने कोई हँसी मजाक की बात कही, औरों को पसन्द आगई, मान ली गई। जिन देशों के भाग्य का निर्णय हो रहा है, उनकी जनता क्या चाहती है, इसकी किसी को परवाह नहीं थी। रशिया, आस्ट्रिया प्रशिया और ब्रिटेन के शक्ति शाली प्रतिनिधि जो चाहते थे, हो जाता था। कांग्रेस का कोई निश्चित सभापति नहीं था। मेटरनिख ही प्रधान और मन्त्री-दोनों का कार्य करता था। वह जिस ढग से चाहता, कार्य चलाता। आस्ट्रिया, प्रशिया, रशिया और ब्रिटेन—इन चार मुख्य राज्यों ने आपस में गुप्त रूप से फैसला कर लिया था, कि सब मामलों पर पहले आपस मे फैसला कर लेंगे, फिर उसे कांग्रेस के सम्मुख पेश करेंगे। निर्बल राष्ट्रों की किसी को परवाह न थी। नैपोलियन का पतन करने के लिये जो अन्तिम गुट बना था, उसने डके की चोट के साथ उद्घोषित किया था, कि हम निर्बल राष्ट्रों को साम्राज्यवादी नैपोलियन के पजे से मुक्त करना चाहते हैं, पर अब विजयी हो जाने के अनन्तर उन्हें अपने स्वार्थ साधन के अतिरिक्त अन्य किसी बात की चिन्ता नहीं थी। फ्रांस का प्रतिनिधि टेलीरा ही था, जिसे निर्बल राष्ट्रों की फिकर थी। वस्तुत., वह इन छोटे राज्यों की सहायता से अपने देश के हितों की रक्षा करना चाहता था। वह इस बात पर जोर देता था, कि कांग्रेस का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार होना चाहिये। परन्तु प्रशियन फान हुम्बोल्डट उसे जवाब देता था, 'जिसकी लाठो उसकी भैंस', हम

अन्तर्राष्ट्रीय कानून को मानते ही नहीं। इस प्रकार विजयी राज्यों के प्रतिनिधि अपनी ताकत के जोर पर मनमानी करने पर तुले हुए थे। पर उनके स्वार्थ भी आपस में टक्कर खाते थे। निर्बल राज्यों को इसी बात का भरोसा था। टेलीरा इन्हीं मत भेदों और झगड़ों का लाभ उठा कर अपने उद्देश्य को पूर्ण करने का प्रयत्न कर रहा था।

विचारणीय प्रश्न—वीएना की कांग्रेस के सम्मुख प्रधानतया निम्न लिखित कार्य थे—

(१) बेल्जियम, हालैण्ड, र्‌हाइन का राज्यसंघ, इटली के राज्य, वारसा की डची तथा स्विट्‌जरलैण्ड की सीमाओं को निश्चित किया जाना था। यह भी निर्णय होना था, कि इन प्रदेशों को पृथक् राज्य के रूप में रखा जावे या नहीं।

(२) नैपोलियन के जमाने में जो विविध नवीन शासक यूरोप के रंग-मञ्च पर प्रगट हो गये थे, उनका निबटारा होना था। साथ ही, पुराने राजवंशों के पुनरुद्धार के विषय पर भी विचार होना था।

(३) फ्रांस फिर कभी इस प्रकार यूरोप की शान्ति और व्यवस्था के लिये खतरा नहीं बन सकेगा, इसका भी इन्तजाम आवश्यक था।

(४) जिन राज्यों ने नैपोलियन की सहायता की थी या उसकी आज्ञाओं का पालन किया था, उन्हें क्या दण्ड दिया जावे—इस बात का भी निर्णय किया जाना था।

निर्णय करने के सिद्धान्त—इन समस्याओं का निर्णय बहुत कठिन नहीं था, पर शक्तिशाली यूरोपियन राज्यों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा तथा स्वार्थ भावना ने इसे बहुत कठिन बना दिया था। जार सम्पूर्ण पोलैण्ड पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। प्रशिया की आंख सेक्सनी पर थी। आस्ट्रिया इटली को हड़प जाना चाहता था, तथा जर्मनी पर भी पूर्ववत् आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। ग्रेट ब्रिटेन की इच्छा थी, कि फ्रांस के जिन उपनिवेशों पर गत युद्धों में विजय प्राप्त

की थी, उन्हें अपने कब्जे में रखा जाय। साथ ही, समुद्र पर अपना अधिकार अक्षुण्ण बना रहे। फ्रास अपने पुराने राज्य को कायम रखने की चिन्ता में था। छोटे राज्यों की अपनी अलग स्कीम थी। ऐसी स्थिति में किसी भी मामले का निबटारा सुगमता से किया जा सकना सम्भव नही था। विजयी राज्यों का सिद्धान्त तो यह था, कि पराजितों के माल को विजेताओं में बाट दिया जावे। इसी सिद्धान्त को लेकर वे अपना कार्य कर रहे थे। वे समझते थे, न्याय यह है, कि जितने भी राजा राज्यक्रान्ति से पूर्व यूरोप के देशों का शासन कर रहे थे, उन सबके वशधरों को फिर से राजगद्दी पर बिठा दिया जाय। पर यह कर सकना सुगम नही था। इसलिये निश्चय किया गया, कि उन अन्य राजाओं को कोई न कोई जमीने देकर सतुष्ट करने का प्रयत्न किया जाय। वीएना में एकत्रित राजनीतिज्ञों के सम्मुख 'राष्ट्रीयता' तो कोई कीमत ही नहीं रखती थी। राष्ट्रीयता की सर्वथा उपेक्षा कर वे 'परमेश्वर द्वारा पृथिवी का शासन करने के लिये नियत किये गये, राजाओं के अधिकारो और दावों की रक्षा करने के लिये कटिबद्ध थे। आज संसार में 'राष्ट्रीयता' का सिद्धान्त सर्व सम्मत है, पर उस समय यह एक भयकर तथा क्रान्तिकारी सिद्धान्त था, जिसे राज्यक्रान्ति ने उत्पन्न किया था। उस समय के 'सभ्य' लोग इसे हानिकारक तथा अनुचित समझते थे।

मुख्य फैसले—वीएना की काग्रेस ने यूरोप के राजनीतिक नक्शे में जो मुख्य-मुख्य परिवर्तन किये, उन्हें यहा उल्लिखित करना आवश्यक है—

(१) *फ्रास*—पिछले दिनों में फ्रास ने जिन प्रदेशो पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, उनमे से बेल्जियम और लुक्सम्बुर्ग हालैण्ड के साथ मिला दिये गये और इन तीनों राज्यों पर शासन करने के लिये आरेन्ज के राजवश को नियत किया गया। बेल्जियम और लुक्सम्बुर्ग की जनता हालैण्ड की जनता से सर्वथा भिन्न थी। परन्तु वीएना की

कांग्रेस ने इस बात की जरा भी परवाह न कर उन्हें एक ही शासन के आधीन कर दिया। स्विट्जरलैण्ड को फिर स्वतन्त्र सघात्मक रिपब्लिक के रूप मे परिणत कर दिया गया। फ्रास में बोर्बों राजवश का पुनरुद्धार किया गया। उसकी सीमाये वे ही रखी गई, जो कि राज्यक्रान्ति से पूर्व थी। जब नैपोलियन एल्बा से वापिस आया था, तो फ्रास की जनता ने उसका साथ दिया था। इस अपराध पर सेवाय के प्रदेश को से छीन लिया गया। फ्रास को यह अच्छी सजा दी गई थी। उस जमाने का ढग ही यह था।

(२) *जर्मनी*—नैपोलियन के आक्रमणों से पूर्व जर्मनी मे कई सौ राज्य थे। इनमे से अनेक राज्य चर्च की सम्पत्ति थे, अनेक का विस्तार एक शहर से अधिक नही था। अधिकाश राज्य छोटे-छोटे थे। नैपोलियन ने इनमे से बहुत से राज्यो का अन्त कर कुछ अधिक महत्व पूर्ण राज्यों को सगठित कर र्‌हाइन के राज्य सङ्घ का निर्माण किया था। अब यह तो असम्भव था, कि क्रान्ति के युग से पूर्व के सैकड़ों राज्यों का पुनरुद्धार किया जाय। वीएना के राजनीतिज्ञों ने जर्मनी के छोटे छोटे राज्यों के दावों पर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्होंने सब मिलाकर ३८ राज्यों को कायम रखा और उनको एक नवीन सगठन में संगठित किया। इस नवीन जर्मन राज्यसङ्घ (कान्फिडरेशन) की एक केन्द्रीय राजसभा बनाई गई, जिसका नेता आस्ट्रिया को निश्चित किया गया। आस्ट्रिया की अधिकाश जनता जर्मन जाति की ही है। ऐतिहासिक घटनाओं ने उसे बहुत समय तक जर्मनी से पृथक् कर रखा था। पर वस्तुतः वह प्रशिया आदि बहुत से जर्मन राज्यो में से एक था और इस काल मे जर्मन राज्यो में सबसे अधिक महत्व पूर्ण था। आस्ट्रिया के नेतृत्व मे अब जिस नवीन जर्मन राज्यसङ्घ का निर्माण हुआ था, उसमे सब राज्यों, जिनकी सख्या ३८ थी—के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। यह स्मरण रखना चाहिये कि ये जनता के प्रतिनिधि न होकर राजाओं के प्रतिनिधि होते थे और उन्ही के

प्रति उत्तरदायी होते थे। जर्मनी के जिन राज्यों की सत्ता को वीएना की काग्रेस ने स्वीकृत किया था, उनकी सीमा निश्चित करते हुए बहुत कठिनता का सामना करना पड़ा था। प्रशिया को बहुत से नये प्रदेश दिये गये थे। र्‌हाइन नदी का पश्चिमी प्रदेश, जिसको फ्रास ने जीतकर अपने अधीन कर लिया था, अब प्रशिया को दे दिया गया। सैक्सनी के राज्य ने पिछले युद्धों में नैपोलियन की सहायता की थी, उसे यह सजा दी गई, कि उसका ४० प्रतिशत प्रदेश प्रशिया के आधीन कर दिया गया। पोलेण्ड और पोमेरेनिया का भी कुछ प्रदेश प्रशिया को दिया गया। नैपोलियन को परास्त करने में प्रशिया बड़ा हाथ था। अत. स्वाभाविक रूप से उसे वीएना की काग्रेस मे बहुत से प्रदेश प्राप्त हुए और वह यूरोप के प्रथम श्रेणी के राज्यों मे गिना जाने लगा। प्रशिया सैनिक दृष्टि से तो पहले ही बहुत उन्नति कर चुका था, अब उसका प्रदेश भी बहुत काफी विस्तृत हो गया।

(३) *इटली*—इटली के विविध राज्यों को फिर से स्थापित किया गया। नेपल्स की राजगद्दी फिर बोर्बो राजवश के अधीन की गई। पोप के प्रदेश पोप के अधीन किये गये। पीडमौन्ट का राज्य फिर सार्डिनिया के राजा को दिया गया। जिनोआ की प्राचीन रिपब्लिक भी इसी राज्य के साथ सम्मिलित कर दी गई। टस्कनी और मोडेना मे फिर से उनके पुराने राजवशों की स्थापना की गई। परमा का राज्य नैपोलियन की धर्मपत्नी मेरिया लुइसा के—जो कि आस्ट्रिया की राजकुमारी थी, सुपुर्द कर दिया गया। आस्ट्रिया का पहले बेल्जियम पर जो आस्ट्रियन नीदरलैंड के नाम से प्रसिद्ध है, कब्जा था। अब यह प्रदेश हालैण्ड को दे दिया गया था। अतः उसे सतुष्ट करने के लिये बेल्जियम के बदले मे वेनिस की प्राचीन रिपब्लिक उसे सौंप दी गई। मिलन तो नैपोलियन के युद्धों से पूर्व ही आस्ट्रिया के आधीन था। अब मिलन और वेनिस—दो प्रदेश उसके कब्जे में आ गये और इस

प्रकार उत्तरी इटली में एक महत्वपूर्ण प्रदेश—जो कि लोम्बार्डो-वेनेटियन राज्य के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है, आस्ट्रिया के आधीन हो गया। इस प्रकार इटली मे फिर से अनेक राज्य कायम हुए। नैपोलियन के आक्रमणों का एक बडा लाभ इटली के लिये यह हुआ था, कि वह प्रधानतया दो राज्यों मे सगठित हो गया था—इटली का राज्य और नेपल्स। इससे इटालियन लोगों मे अपनी एकता तथा राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होने लग गई थी। पर अब फिर उसे अनेक भागों मे विभक्त कर दिया गया और इटली के एक संगठन में सगठित होने की सम्भावना बहुत समय के लिये दूर जा पड़ी।

(४) *स्वीडन*—फिनलैण्ड का प्रदेश स्वीडन से लेकर रशिया को दे दिया गया। इसी प्रकार पोमेरेनिया का प्रदेश प्रशिया के सुपुर्द किया गया। इनके बदले मे नार्वे का राज्य स्वीडन को दे दिया गया। नार्वे पहले डेन्मार्क के आधीन था, पर क्योंकि डेन्मार्क के राजा ने नैपोलियन की सहायता की थी, अतः उसे यह सजा दी गई कि नार्वे उससे छीन लिया गया।

(५) *पोलैंड*—पोलैंड को अनेक टुकड़ों में विभक्त कर रशिया, प्रशिया तथा आस्ट्रिया ने निगल लिया। इससे पूर्व भी पोलैंड को अनेक बार इन राज्यों ने टुकड़े कर आपस मे बाटा था। इस सब का इतिहास लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतना निर्दिष्ट करना पर्याप्त है, कि वीएना की काग्रेस ने पोलैण्ड का मुख्य भाग रशिया के अर्पित किया। वारसा का जो राज्य नैपोलियन के समय में बनाया गया था, वह भी रशिया को दे दिया गया। पोसन, थोर्न और डान्ट्सिग के प्रदेश प्रशिया के हिस्मे मे आये। दक्षिणी गेलसिया आस्ट्रिया के सुपुर्द किया गया।

(६) *ग्रेट ब्रिटेन*—ग्रेट ब्रिटेन ने बहुत से नवीन उपनिवेश प्राप्त किये। माल्टा, सेण्ट लूसिया, टोबेगो और मोरिशस—ये द्वीप फ्रास से लेकर

ब्रिटेन को दिये गये। ट्रिनिडाड और हाण्डरस पहले स्पेन के आधीन थे, वे अब ब्रिटेन को प्राप्त हुए। इसी प्रकार सीलोन, केप कोलोनी और गायना का कुछ प्रदेश हालैण्ड से ब्रिटेन के हाथ लगा। ऊपर से देखने से इन प्रदेशों व उपनिवेशों का विशेष महत्व नहीं मालूम होता, पर वस्तुतः ग्रेट ब्रिटेन इसी काल मे अपने विशाल सामुद्रिक और औपनिवेशिक साम्राज्य की नींव डाल रहा था। जो द्वीप उसने वीएना की कांग्रेस मे प्राप्त किये थे, वे सामुद्रिक शक्ति की दृष्टि से बहुत महत्व पूर्ण थे। विशेषतया, माल्टा, सीलोन, केप कोलोनी और मोरीशस आगे चलकर ब्रिटेन के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए।

(७) *स्पेन*—स्पेन में फिर से वहा के पुराने बोर्बो राजवश की स्थापना की गई।

दास प्रथा का विरोध—इन विविध राजनीतिक और प्रादेशिक परिवर्तनों के अतिरिक्त वीएना की कांग्रेस ने अन्य भी अनेक निर्णय किये। दास प्रथा के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुआ और यह उद्घोषित किया गया, कि यह प्रथा सभ्यता और मानवीय अधिकारों के सर्वथा प्रतिकूल है। परन्तु इस प्रस्ताव को क्रिया मे परिणत करना प्रत्येक राज्य की अपनी इच्छा पर छोड़ दिया गया। अठारहवी सदी मे दासों का व्यापार जिस क्रूरता से होता था, दासों पर जिस ढग से भयङ्कर अत्याचार किये जाते थे, उससे पाश्चात्य संसार के सभ्य विचारशील लोग उद्विग्न हो उठे थे। सब से पूर्व अमेरिका ने दास प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई, उसके बाद मार्च १८०७ मे ब्रिटिश पार्लमैण्ट ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रस्ताव पास किया। १८१३ मे स्वीडन ने दास प्रथा को नष्ट किया और एक वर्ष बाद १८१४ मे हालैण्ड ने स्वीडन का अनुसरण किया। इस प्रकार वीएना की कांग्रेस से पूर्व ही दास प्रथा के विरुद्ध वातावरण तैयार था और इस विषय में प्रस्ताव पास करना बहुत कठिन बात नहीं थी।

अन्तर्राष्ट्रीय विधान—दास प्रथा के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त वीएना की कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय विधान तैयार करने के लिये भी उद्योग किया। यूरोप की नदियों में नौकानयन के लिये विविध देशों में क्या नियम हों, समुद्र का उपयोग विविध राजा किस प्रकार करें और राज्यों के आपस में व्यवहार करने के लिये क्या कायदे हों—इन सब बातों को निश्चित विधान मे सगठित किया गया।

वाटर्लू के युद्ध से कुछ दिन पूर्व २ जून १८१५ तक वीएना की कांग्रेस अपने कार्य को समाप्त कर चुकी थी। सब समझौतो को एक निश्चित विधान मे एकत्रित कर लिया गया था और उन पर विविध राज्यों के हस्ताक्षर भी हो चुके थे।

कांग्रेस की भूलें—वीएना की कांग्रेस का यह कार्य बीसवी सदी के ऐतिहासिक को बहुत ही अद्भुत तथा विचित्र प्रतीत होगा। वीएना में एकत्रित राजनीतिज्ञों की दृष्टि मे राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का कोई महत्व नहीं था। बेल्जियम के लोगों को अपना पृथक् राज्य बनाने का हक है, नार्वे को स्वीडन के साथ नहीं मिलाना चाहिये, फिन लोग रशिया के नीचे नहीं रहना चाहते, पौलेण्ड मे जो लोग बसते हैं, वे एक हैं, उन्हें तीन टुकड़ों मे बाट कर तीन लुटेरों के हाथ में नहीं सौंप देना चाहिये, इटली एक देश है, उसे एक सगठन में सगठित करना चाहिये—ये सब विचार विएना के इन 'महान् राज-नीतज्ञों' को बहुत ही अस्वाभाविक, अनुचित तथा क्रान्तकारी प्रतीत होते थे। साथ ही राज्य के शासन मे जनता की इच्छा को भी कोई स्थान प्राप्त है, यह बात इन राजनीतज्ञों को समझ नहीं आती थी। जनता का भी कोई अधिकार है, यह इनकी अकल मे ही नहीं समाता था। इनकी दृष्टि मे यदि किसी के अधिकार थे,तो केवल उन उच्च राजवशों के, जिन्हें साक्षात् भगवान ने पृथिवी पर अपना प्रतिनिधि नियत किया है। वीएना मे जो कुछ भी हुआ, समय की प्रवृत्तियों के सर्वथा विरुद्ध हुआ,

फ्रास की राज्यक्रान्ति में जिन प्रवृत्तियों को जन्म दिया गया, वे एक-देशीय नहीं रह सकती थीं। उन्होंने धीरे धीरे सम्पूर्ण यूरोप ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण ससार को व्याप्त कर लेना था। वीएना मे उन प्रवृत्तियों की उपेक्षा की गई। यह सर्वथा स्वाभाविक था, क्योंकि मानवीय जाति की एक निर्बलता है, वह नई बात को जल्दी नहीं समझ सकती, नई प्रवृत्तियों को सुगमता से नहीं पहचान सकती। परन्तु यह स्पष्ट है, कि वीएना मे जो कुछ हुआ, वह समय को देखते हुए सर्वथा अनुचित तथा अस्वाभाविक था। यही कारण है, कि अगली एक सदी के यूरोपीय इतिहास ने वीएना की सम्पूर्ण कृति को पलट दिया। १८१५ के बाद १५ साल के अन्दर अन्दर ही बेल्जियम हालैण्ड से पृथक् हो गया। ५० साल में इटली और जर्मनी का स्वरूप सर्वथा परिवर्तित हो गया। इटली एक हो गया—सम्पूर्ण इटली में एक राज्य स्थापित हो गया। जर्मनी ने आस्ट्रिया से पृथक् होकर अपने नवीन सगठन का निर्माण किया। नोर्वे को स्वीडन से पृथक होने में देर नहीं लगी। १९१४—१८ के यूरोपीय महायुद्ध ने तो राज्यों की सीमा को राष्ट्रीयता के आधार पर निश्चित करने म कोई भी कसर उठा नहीं रखी। पश्चिमी ससार मे १९ वीं सदी का इतिहास राष्ट्रीयता तथा लोकसत्तावाद के सिद्धान्तों और पुराने जमाने के पारस्परिक सघर्ष के वृत्तान्त से परिपूर्ण है। आखिरकार इन सिद्धान्तों की विजय हुई। आज ससार राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को स्वीकार करता है, स्वभाग्य निर्णय तथा लोकसत्तावाद के सिद्धान्तों मे आज किसी को भी सन्देह नही रहा है। आज दुनिया वीएना की काग्रेस के वातावरण से बहुत आगे बढ गई है।

काग्रेस के लाभ—परन्तु वीएना की काग्रेस से अनेक उत्तम लाभ भी हुए। यूरोप में शान्ति की स्थापना हो गई। चौथाई सदी के निरन्तर युद्धों के बाद यूरोप को शान्ति की बहुत सख्त जरूरत थी। कम से कम इस शान्ति की स्थापना मे वीएना की काग्रेस को अवश्य सफलता हुई।

इसके अतिरिक्त, यह पहला ही अवसर था, जब यूरोप के सम्पूर्ण राज्यों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये थे। इससे कम से कम राज्यों को यह तो अनुभव हुआ था, कि हम मिल कर भी कार्य कर सकते हैं, आपस में बातचीत करके किसी एक समझौते पर भी पहुँच सकते हैं। राज्यों की अराजकता को नष्ट करने के लिये यह एक महत्वपूर्ण पग था। वीएना में यूरोप भर के प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। उन्होंने मिल-कर अपनी समस्याओं पर विचार किया था, चाहे उनके विचार करने का ढग कितना ही निकम्मा क्यों न हो, चाहे उनके विचार कितने ही पुराने तथा भद्दे क्यों न हों—पर वे एक निश्चित उद्देश्य के लिये इकट्ठे तो हुए थे और समय को देखते हुए यह बात भी कम न थी।

अठारहवां अध्याय

यूरोप में शान्ति स्थापना के प्रयत्न

वीएना की कांग्रेस ने अपना कार्य अभी समाप्त किया ही था, कि नैपोलियन एल्बा के द्वीप से निकल कर फ्रांस पहुंच गया। जिस प्रकार वाटर्लू के रणक्षेत्र में उसे सदा के लिये परास्त कर दिया गया, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। नैपोलियन के पतन के अनन्तर यूरोपियन राज्यों को निश्चिन्तता और सन्तोष का सांस लेने का अवसर मिला। यूरोप युद्धों से थक चुका था। केवल राजा ही नहीं, जनता भी शान्ति के लिये उत्सुक थी, लोग लड़ाई से ऊब चुके थे और वस्तुतः यूरोप को इस समय किसी ऐसे उपाय की आवश्यकता थी, जिससे युद्धों की सम्भावना एक अच्छे बड़े समय के लिये दूर हो जाये।

'पवित्र मित्र मंडल'—आस्ट्रिया, रशिया, प्रशिया और ग्रेट ब्रिटेन ने आपस में मिलकर नैपोलियन को परास्त किया था। वीएना मे भी ये चार राज्य ही सर्व प्रधान थे। अब इनके कन्धों पर ही इस बात की भी जिम्मेवारी थी, कि युद्ध की सम्भावना को नष्ट करने के लिये उपाय करें। सबसे पूर्व रशिया के जार अलैक्जएडर प्रथम ने यह प्रस्ताव पेश किया, कि राजा लोग मिलकर एक धार्मिक भाई-चारे का निर्माण करें, और यह मित्रमण्डल यूरोप में शान्ति स्थापित रखने की उत्तरदायिता अपने ऊपर ले। अलैक्जएडर ने इसको 'पवित्र

मित्रमण्डल' के नाम से पुकारा और अन्य राज्यों से इसमें सम्मिलित होने की प्रर्थना की। प्रशिया के राजा और आस्ट्रिया के सम्राट ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और 'पवित्र मित्रमण्डल' का मसविदा दिसम्बर १८१५ मे प्रकाशित किया गया। इस मसविदे मे रशिया, प्रशिया और आस्ट्रिया के राजाओं ने यह उद्घोषित किया, कि वे सब आपस मे एक दूसरे को भाई भाई समझेंगे और एक की विपत्ति को सब अपनी ही विपत्ति मानेंगे। अन्य राजाओं को भी इस मित्र मण्डल में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित किया गया। बहुत से राज्यों ने निमन्त्रण को स्वीकार भी किया। ब्रिटेन इसमें शामिल नहीं हुआ। टर्की के सुलतान को निमन्त्रण ही नहीं दिया गया था और पोप ने इसमें सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था। विचारशील लोग इस मसविदे को धोकेबाजी के सिवा और कुछ नहीं समझते थे। सर्वसाधारण लोगों का खयाल था, कि जनता के अधिकारों को कुचलने के लिये यह नया गुट बनाया गया है। निस्सन्देह, इस बात में बहुत कुछ सत्यता थी।

चतुर्मुख मित्रमण्डल—'पवित्र मित्र मण्डल' की यह स्कीम कामयाब नहीं हो सकी। इसके दो महीने बाद ही २० नवम्बर १८१५ को रशिया, प्रशिया, आस्ट्रिया और ग्रेट ब्रिटेन—इन चार राज्यों ने मिलकर एक 'चतुर्मुख मित्रमण्डल' का निर्माण किया। यह मित्रमण्डल बहुत देर तक यूरोप के राजनीतिक मामलों का सञ्चालन करता रहा। १८४८ की राज्यक्रान्ति द्वारा इस गुट का विनाश हुआ। इस प्रकार यह चौथाई शताब्दि के लगभग तक यूरोप का भाग्यविधाता बना रहा। इस मण्डल का निर्माण इस उद्देश्य से हुआ था, कि यूरोप में क्रान्तिकारी विचारों को नष्ट किया जावे, नैपोलियन व उसके परिवार का कोई व्यक्ति फ्रास व यूरोप की किसी राजगद्दी पर न बैठ सके और राजाओं के अबाधित शासन को सर्वत्र अक्षुण्ण रखा जावे। इस मण्डल की धारणा थी, कि किसी भी राज्य के आन्तरिक मामलों मे हस्ताक्षेप किया जा

सकता है। यदि यूरोप के किसी कोने मे भी क्रान्ति की भावनायें व नवीन प्रवृत्तिया बलवती होगी, तो उससे सम्पूर्ण राज्यों को नुकसान पहुचेगा। जनता में किसी प्रकार का असन्तोष हो, उसको दवाना यह मित्रमण्डल अपना कर्तव्य समझता था। इस मण्डल ने यह भी व्यवस्था की, कि समय समय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होते रहें, जिनमें कि यूरोप मे शान्ति स्थापना के सम्बन्ध मे विचार होता रहे तथा अशान्ति के तत्वों को नष्ट करने के उपायों का निश्चय किया जाता रहे।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन—यूरोपियन समस्याओं पर विचार करने के लिये पहला सम्मेलन एक्स-ला-शापेल में १८१८ में हुआ। इसमें वोट देने का अधिकार केवल रशिया, प्रशिया, आस्ट्रिया और ग्रेट ब्रिटेन—इन चार राज्यों को ही था। पीछे से फ्रास को भी यह हक दे दिया गया, क्योंकि उसने पेरिस की सन्धि की सम्पूर्ण शर्तों को पूर्ण रूप से क्रिया मे परिणत कर दिया था। इस प्रकार अब यह मण्डल 'चतुर्मुख' के स्थान पर 'पञ्चमुख' हो गया। अन्य राज्यों को इस सम्मेलन में निमन्त्रित तो किया गया था, पर उन्हें वोट का अधिकार नही था। वे अपने विचार प्रगट कर सकते थे, उनसे सलाह ली जा सकती थी—पर इसके अतिरिक्त उनका कोई अधिकार नहीं था।

दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन १८२० मे ट्रोप्पा नामक स्थान पर हुआ। १८२० मे स्पेन और नेपल्स मे क्रान्तिया हुई थीं और उन्हीं पर विचार करने के लिये यह सम्मेलन बुलाया गया था। इसमें रशिया, प्रशिया और आस्ट्रिया ने 'हस्ताक्षेप के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। इन राज्यों का कहना था, कि यदि क्रान्ति द्वारा सरकारों को परिवर्तन करने का प्रयत्न किया जायगा, तो हमे उसमें हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार होगा। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि यह कार्य प्रत्येक राज्य का अपना है। दूसरों को इसमें हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिये।

तीसरा सम्मेलन लैबख में सन १८२१ में हुआ। इस समय नेपल्स में विद्रोह हुआ था। इस सम्मेलन ने आस्ट्रिया को यह अधिकार दिया कि नेपल्स के आन्तरिक मामले मे हस्ताक्षेप कर विद्रोह को शान्त करे। इस प्रकार, हस्ताक्षेप के सिद्धान्त को क्रिया में परिणत किया गया और आस्ट्रिया ने नेपल्स के विद्रोह को शान्त किया। इसी समय ग्रीस मे टर्की के शासन के विरुद्ध ग्रीक लोगों ने विद्रोह किया था। रशिया ने इस विषय में उद्‌घोषित किया, कि हम इस प्रकार के विद्रोहो को बिलकुल पसन्द नहीं करते और क्रान्तिकारियों को सावधान करते हैं, कि वे आगे से इस प्रकार का कार्य कभी न करें।

१८२२ मे वेरोना नामक स्थान पर चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया गया। इस समय स्पेन तथा उसके अमेरिकन उपनिवेशों मे विद्रोह हो रहे थे। इसी प्रकार पीडमौन्ट तथा ग्रीस में भी विद्रोह की अग्नि भड़क रही थी। पीडमौन्ट मे हस्ताक्षेप करने का अधिकार आस्ट्रिया को दिया गया। स्पेन का मामला फ्रास के तथा ग्रीस का मामला रशिया के सुपुर्द किया गया। 'पञ्चमुख मित्रमण्डल' अमेरिकन उपनिवेशों के मामले में भी हस्ताक्षेप करना चाहता था। पर सयुक्त प्रान्त अमेरिका इस बात को नहीं सह सका। वहा की सरकार ने उद्‌घोषित किया, कि नई दुनिया (अमेरिका) के मामलों मे पुरानी दुनिया (यूरोप) हस्ताक्षेप न करे। इसी प्रकार अमेरिका भी यूरोपियन झगड़ों से कोई सम्बन्ध न रखे। सयुक्तप्रान्त अमेरिका के उस समय के राष्ट्रपति मुनरो के नाम से यह सिद्धान्त 'मुनरो सिद्धान्त' के नाम से मशहूर है, और इसी के कारण यूरोपियन राज्य अमेरिकन राज्यों मे हस्ताक्षेप न कर सके और वे स्पेन की अधीनता से स्वतन्त्र हो गये।

मित्रमण्डल का पतन—निस्सन्देह, यह मित्रमण्डल यूरोप में शान्ति स्थापित रखने के कार्य मे बहुत कुछ सफल हुआ। जहा तक शान्ति स्थापना का उद्देश्य था, वहा तक इसकी उपयोगिता थी और इसका

कार्य वस्तुत. लाभदायक था। पर नई प्रवृत्तियों को कुचलने की कोशिश बहुत ही अनुचित तथा हानिकारक थी। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन से तंग आये हुए लोग जब अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने को उतारू होते थे, तो यह 'मित्रमण्डल' उन्हें कुचल देने के लिये यूरोप भर की सम्मिलित शक्ति को लेकर आ खड़ा होता था। जनता की नई भावनाओं का यह सबसे बड़ा दुश्मन था। कुछ समय तक इसे निरन्तर सफलता होती रही, पर आखिरकार इसके विरोध में भी शक्तियां संगठित होने लगीं। ट्रोप्पा के सम्मेलन में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने इसके सिद्धान्तों का घोर विरोध किया था। 'मुनरो सिद्धान्त' स्पष्टरूप से इसके विरोध में था। १८३० और १८४८ की क्रान्तियों ने इसे जबर्दस्त धक्के दिये थे। इन सब कारणों से यह चतुर्मुख या पञ्चमुख मित्रमण्डल आखिर नष्ट हो गया और नई प्रवृत्तियों को क्रिया में परिणत होने का द्वार खुल गया।

उन्नीसवां अध्याय

यूरोप में प्रतिक्रिया का काल

१. फ्रांस में प्रतिक्रिया का युग

१८ वें लुई का शासन—नैपोलियन के पतन के बाद १६ वे लुई के भाई को १८ वें लुई के नाम से फ्रांस की राजगद्दी पर बिठाया गया। क्रान्ति के प्रारम्भ होने पर जब अनेक कुलीन तथा राज परिवार के व्यक्ति फ्रांस से भाग गये थे, तब यह भी उनके साथ चला गया था और यूरोपियन राजाओं के साथ मिलकर निरन्तर क्रान्ति के विनाश के लिये प्रयत्न कर रहा था। १६ वे लुई को प्राणदण्ड मिलने के पश्चात् यह अपने को फ्रांस की राजगद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी समझता था। २० वर्ष तक यह निरन्तर इसके लिये कोशिश करता रहा। क्रान्ति और उसके बाद नैपोलियन के पतन के लिये उसने भरपूर कोशिश की और आखिर वह अपने प्रयत्नों मे सफल हुआ। जब वह राजगद्दी पर बैठा, तो उसका कोई खास विरोध न हुआ। फ्रांस की जनता बोर्बों राजवंश के शासन के आधीन रहने के लिये अभ्यस्त थी। क्रान्ति उन्हें नई तथा अद्भुत सी चीज मालूम होती थी। उस जमाने में सर्वसाधारण जनता राजनीतिक मामलों में बहुत अधिक दिलचस्पी नहीं लेती थी। क्रान्ति तथा उससे उत्पन्न रिपब्लिक प्रधानतया जैकोबिन दल की कृति थी। जनता का अधिकांश भाग इस बात से बेपरवाह था कि कौन

राजगद्दी पर बैठता है और पेरिस मे किसका प्रभुत्व स्थापित होता है। जब रिपब्लिक का ढोंग कायम रखकर नैपोलियन ने सम्पूर्ण शासन सूत्र को अपने हाथ में ले लिया, तो फ्रास की सर्वसाधारण जनता को विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। जब नैपोलियन सचमुच सम्राट् बन गया, तब भी जनता को विशेष चिन्ता नहीं हुई और अब जब कि फिर बोर्बों राजवंश का ६० वर्ष का बूढा आदमी उनके भाग्य का विधाता बन गया—तब भी उन्होंने इसे एक सामान्य सी बात ही समझा। वास्तविक बात यह है, कि फ्रास की अधिकाश जनता अब तक भी हृदय से राजसत्ता की पक्षपाती थी। जनता मे परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे आता है। वह नये विचारों को एक दम ग्रहण नहीं कर सकती। सैकड़ों वर्षों से फ्रास मे एक राजा का शासन चला आ रहा था, जनता को उसके शासन मे रहने का अभ्यास था, राजसत्ता को मानने के सस्कार उसमें बहुत गहरे थे। ये आसानी से नहीं बदल सकते थे।

परन्तु राज्यक्रान्ति ने २५ वर्ष तक जो काम किया था, वह भी नष्ट नहीं किया जा सकता था। आखिर, क्रान्ति भी एक ध्रुव सत्य घटना थी। लाखों आदमियों का खून व्यर्थ मे ही नहीं बहा था। बोर्बों वश फिर फ्रास की राजगद्दी पर आया, पर जमाना बहुत बदल चुका था। बोर्बों वश के साथ पुराना जमाना वापिस नहीं आया। सामन्त पद्धति अब भूतकाल की चीज हो चुकी थी। चर्च अब राज्य का मुकाबिला नहीं कर सकता था। कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के विशेषाधिकारों को अब स्वीकृत नहीं किया जा सकता था। कानून की दृष्टि मे सब लोग बराबर हो चुके थे। 'मुद्रित पत्रों' से अब किसी को कैद नहीं किया जा सकता था। स्वतन्त्र भाषण, स्वतन्त्र लेखन और अपने विश्वासों व अन्तरात्मा के अनुसार धार्मिक विधिविधानों का अनुसरण—ये ऐसी बाते थीं, जिन्हें अब बोर्बों राजवश नष्ट नहीं कर सकता था, इसलिये १८ वे लुई ने राजगद्दी पर बैठकर भी क्रान्ति के सिद्धान्तों को कायम

रखा। उसने क्रान्ति के कार्य पर पानी फेरने का प्रयत्न नही किया। यदि वह चाहता, तो भी यह उसके वश के बाहर बात थी। क्रान्ति को सर्वथा मिटा सकना उसके लिये असम्भव था।

जून १८१४ की घोषणा—वैध राजसत्ता की स्थापना—जून १८१४ में १८ वें लुई ने एक उद्घोषणा प्रकाशित की। इसके अनुसार फ्रास में वैध राजसत्ता शासन स्थापित करने की घोषणा की गई। फ्रास का शासन करने के लिये एक पार्लियामेंट बनाई गई, जिसमे दो सभायें थी। एक सरदारों की सभा और दूसरी राष्ट्र प्रतिनिधि सभा। सरदारो की सभा के सदस्य राजा द्वारा मनोर्नात किये जाते थे और राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को जनता चुनती थी। निर्वाचन का अधिकार सब नागरिकों को नहीं दिया गया। जिनकी आयु ३० वर्ष से कम न हो और जो कम से कम १८० रु० वार्षिक टैक्स देते हों, उन्हीं को वोट का अधिकार दिया गया। इस प्रकार अमीर लोग ही निर्वाचन मे हिस्सा लेते थे, राष्ट्र प्रतिनिधि सभा सर्व साधारण जनता की प्रतिनिधि नही थी, वह अमीर लोगों की ही सम्मति को प्रगट कर सकती थी। परन्तु यदि इङ्गलैण्ड के उस समय के शासन विधान से तुलना की जाय, तो फ्रास का यह शासन विधान निस्सन्देह अधिक लोकसत्तात्मक था। प्रतिक्रिया के काल मे ही फ्रास का यह शासन विधान यूरोप के अन्य सब देशों की अपेक्षा अधिक उन्नत था। यह राज्यक्रान्ति का ही प्रभाव था, जिसे प्रतिक्रिया का काल भी नही मिटा सका था। नवीन शासन विधान के साथ १८ वे लुई ने अपनी उद्घोषणा मे जनसाधारण के अधिकारों को भी घोषित किया। अधिकारा की इस घोषणा मे क्रान्ति के प्रायः सभी सिद्धान्तो को स्वीकृत किया गया था। कानून के सम्मुख सब मनुष्य बराबर हैं, राजकीय पदों के लिये सब मनुष्य एक समान रूप से नियत किये जा सकते हैं, टैक्स का निर्णय प्रत्येक मनुष्य की सम्पत्ति के अनुसार किया जायगा। प्रत्येक मनुष्य को धार्मिक तथा वैयक्तिक

स्वतन्त्रता प्राप्त है, भाषण, लेखन तथा मुद्रण की सबको स्वतन्त्रता है, ये सब बातें १८ वें लुई ने उद्घोषित कीं, जो कि १६ वें लुई का भाई था, बोर्बों राजवंश का था. जिन्दगी भर क्रान्ति को कुचलने की कोशिश करता रहा था और जिसे मेटरनिख तथा क्रान्ति के दुश्मनों ने राजगद्दी पर बिठाया था।

फ्रांस के विविध दल—कट्टर राजसत्तावादी—१८ वें लुई के साथ बहुत से कुलीन तथा उच्च पुरोहित श्रेणी के लोग फ्रांस वापिस लौट आये थे। वे क्रान्ति के कट्टर दुश्मन थे। क्रान्ति ने इन्हें तबाह कर दिया था। इनके हृदय में बदला लेने की आग धधक रही थी। ये फिर से पुराने जमाने को वापिस ले आने के लिये तुले हुए थे। इन्होंने एक पृथक दल की रचना की, जो कि कट्टर राजसत्तावादी दल के नाम से प्रसिद्ध है। इसका नेता राजा का भाई 'आर्तोआ का कांउण्ट' था। इनका कहना था, कि प्रेस को स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिये, कुलीनों की छिनी हुई सम्पत्ति उन्हें फिर वापिस मिलनी चाहिये, राजा का शासन एकतन्त्र तथा स्वेच्छाचारी होना चाहिये, और जनता का शासन में कोई अधिकार नहीं होना चाहिये। अभिप्राय यह कि पिछले २५ वर्षों में जो कुछ भी कार्य हुआ है, उसको एक फूंक से उड़ा देना चाहिये। इस दल के लोग संख्या में बहुत अधिक नहीं थे, पर इनका प्रभाव तथा बल बहुत अधिक था।

उदार राजसत्तावादी—राजसत्तावादी दलके सभी लोग इतने कट्टर तथा क्रान्ति के दुश्मन नहीं थे। 'आर्तोआ के काउण्ट' के दल के अतिरिक्त राजसत्तावादियों का एक और भी दल था, जो समय की गति को समझता था। ये लोग भलीभाति समझते थे कि क्रान्ति के सम्पूर्ण कार्य को बात की बात में नष्ट नहीं किया जा सकता। इन्हीं के प्रभाव से राजा ने वह उद्घोषणा प्रकाशित की थी, जिसमें जनता के अधिकारों की रक्षा की गई थी, और नवीन शासन विधान का निर्माण किया

गया था। अधिकांश लोग इसी दल से सहानुभूति रखते थे। यह दल फ्रास में इङ्गलैण्ड के ढग पर वैध राजसत्ता को स्थापित करना चाहता था।

लिबरल—तीसरा दल लिबरल कहलाता था। ये लोग राजा के विरोधी नहीं थे। राजा की सत्ता को वे शासन की स्थिरता के लिये आवश्यक समझते थे। पर इनका खयाल था, कि १८१४ की उद्घोषणा में जनता को पर्याप्त अधिकार नहीं मिले हैं। वोट देने के लिये १८० रु० वार्षिक टैक्स देने की शर्त बहुत अधिक है, इससे बहुत कम लोगों को वोट का अधिकार प्राप्त होता है। वोट का अधिकार विस्तृत किया जाना चाहिये, और राजा को पूर्णतया मन्त्रियों के आधीन होना चाहिये। मन्त्रियों का पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होना आवश्यक है।

इन तीन दलों के अतिरिक्त कुछ लोग बोर्बों वश के शासन के पूर्णतया विरोधी थे। वे किसी भी प्रकार १८ वें लुई के शासन से समझौता करने को उद्यत नहीं हो सकते थे। इन लोगों को निम्न लिखित दलों मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) बोनापार्टिस्ट दल—यह दल नैपोलियन बोनापार्ट को राजगद्दी पर बिठाने का पक्षपाती था। नैपोलियन के गौरवमय कृत्य इनकी आखों के सामने मौजूद थे। ये प्रायः नैपोलियन की सेनाओं के सिपाही थे, जो अपने विश्वविजयी सेनापति की गौरव गाथाओं को किसी भी दशा मे भूल नही सकते थे। जब तक नैपोलियन जीवित रहा, ये उसे राजगद्दी पर बिठाने का प्रयत्न करते रहे। जब वह मर गया, तो उसके लड़के 'रोम के बादशाह' को नैपोलियन द्वीतीय के नाम से सम्राट बनाने के लिये प्रयत्नशील रहे।

२) रिपब्लिकन दल—इस दल के लोग बोर्बों राजवंश और नैपोलियन—दोनों के विरोधी थे। ये फिर से फ्रास मे रिपब्लिक की स्थापना करना चाहते थे।

१८ वे लुई के शासन मे उदार राजसत्तावादियों की शक्ति अधिक प्रवल थी। कट्टर राजसत्तावादियों ने पुराने जमाने को स्थापित करने के लिये बहुत कोशिश की। विद्रोह किये, मारकाट की, खून बहाया, पर उनका उद्देश्य पूर्ण नही हुआ। वे केवल इतना ही कर सके, कि नैपोलियन के कुछ प्रमुख पक्षपातियो को फ्रास से बहिष्कृत कर दिया गया। क्रान्ति को मिटा सकना उनकी शक्ति के बाहर था। परन्तु इसमे सन्देह नहीं, कि राजदरबार की बाहरी शान शौकत और रोब को फिर से स्थापित करने मे उन्हें पर्याप्त सफलता मिली। दरबार की पुरानी पोशाकें, शिष्टाचार तथा तरीके बहुत हद तक फिर वापिस आ गये। क्रान्ति के तिरगे झण्डे की जगह पर बोर्बों वश का सफेद झण्डा फ्रास के राजप्रासाद पर फहराने लगा। कट्टर राजसत्तावादी बाहरी तरीकों को तो वापिस ले आये, पर वास्तविक पुराने जमाने को पुनः स्थापित कर सकना उनके लिये सर्वथा असम्भव था।

दलों का सघर्ष—१८ वे लुई के शासन मे जब पहले पहल राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का निर्वाचन हुआ, तो कट्टर राजसत्तावादी दल सब से प्रवल रहा। वोट देने का अधिकार बहुत कम लोगों का था, अतः इस दल की विजय बहुत अस्वाभाविक नहीं थी। इन्होंने कोशिश की, कि १८१४ की उद्घोषणा मे उद्घोषित जनसाधारण के सम्पूर्ण अधिकारों को वापिस ले लिया जाय। इसके लिये निरन्तर कानून पास किये जाने लगे, यहा तक कि राजा घबरा गया। उसे डर था, कि कहीं फिर क्रान्ति न हो जाय। उसने राष्ट्र प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर दिया और नये निर्वाचन की आज्ञा दी। नये निर्वाचन मे वैध राजसत्तावादी तथा लिबरल दल का बहुमत था। इन दलों के शासन मे फ्रास ने बहुत अधिक उन्नति की। सेना का पुनः सगठन किया गया। वोट देने का अधिकार अधिक विस्तृत किया गया, और इसी प्रकार से अन्य अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये गये। १८२० में फिर कट्टर राजसत्तावादी

प्रबल हो गये। इन्हीं की प्रबलता के कारण इस काल में फ्रास ने मैटरनिख की भावनाओं का पूरा साथ दिया। स्पेन की जनता के विद्रोह को शान्त करने के लिये फ्रेच सेना भेजी गई और वोट देने के अधिकार को फिर से सकुचित कर दिया गया।

१० वें चार्ल्स का शासन—१८२४ मे १८ वे लुई की मृत्यु हुई। उसके बाद उसका भाई 'आर्तोआ का काउण्ट' दसवे चार्ल्स के नाम से फ्रास की राजगद्दी पर बैठा। यह कट्टर राजसत्तावादी दल का प्रधान नेता था, क्रान्ति और नैपोलियन का घोर शत्रु था। इसकी उमर का बड़ा भाग क्रान्ति के साथ युद्ध करने मे व्यतीत हुआ था। वस्तुतः, वह १९ वीं सदी का व्यक्ति नहीं था, उसे १७ वी सदी मे उत्पन्न होना चाहिये था। राजा का दैवीय अधिकार, असहिष्णु चर्च और कुलीन लोगों की स्वेच्छाचारिता ही उसकी दृष्टि मे सभ्यता के चिन्ह थे। उसकी उमर ६७ वर्ष की हो चुकी थी। इस बड़ी उमर मे उससे यह आशा करना कि वह अपने जन्म भर के सिद्धान्तों और मन्तव्यों का परित्याग कर दे, उससे अन्याय करना था। नई प्रवृत्तियों को कुचलने मे उसने मैटरनिख को भी मात कर दिया। उसके स्वेच्छाचारी शासन से सम्पूर्ण फ्रेञ्च जनता घबरा गई। यदि दसवा चार्ल्स भी अपने भाई की तरह समझदार और समय की गति को पहचानने वाला होता, तो शायद बोर्बो वश का शासन फ्रास मे स्थिर हो जाता। पर वैधराजसत्ता उसकी दृष्टि मे कोई अर्थ ही नहीं रखती थी। वह राजा के दैवीय अधिकार के सिद्धान्त को क्रिया मे परिणत करने के लिये तुला हुआ था। इसलिये उसने बहुत से कानून अपने विशेष अधिकार से जारी किये, जिनमे जनता के सम्पूर्ण अधिकारों को छीनने का प्रयत्न किया गया। वह कट्टर राजसत्तावादी दल का नेता रह चुका था। अब उसे अवसर मिला था कि अपने सिद्धान्तों को क्रिया में परिणत करे। उसकी नीति का परिणाम यह हुआ कि १८३० में फ्रास

में फिर क्रान्ति हो गई। दसवें चार्ल्स को फ्रास छोड़कर भागना पड़ा। १८३६ मे आस्ट्रिया में उसकी मृत्यु हुई। वह अपने को शहीद समझता था। उसका ख्याल था, कि जो कुछ उसने किया है, ठीक किया है। परलोक मे उसे इसका फल मिलेगा।

१० वें चार्ल्स के राज्यच्युत होने के साथ फ्रास में फिर क्रान्ति का काल प्रारम्भ हो गाया। फ्रास मे नई और पुरानी प्रवृत्तियों का परस्पर सघर्ष चल रहा था। पुरानी प्रवृत्तियों के अभेद्य दुर्ग को नष्ट किये विना नई प्रवृत्तिया कार्य मे परिणत नहीं हो सकती थीं। मनुष्य मशीन नहीं है, वह एक जीवित जाग्रत चेतन सत्ता है। इसी प्रकार मनुष्य जाति और राष्ट्र भी मशीन नहीं हैं, वे भी जीवित जाग्रत और चेतन सत्तायें हैं। उनमें परिवर्तन आते हैं, परन्तु धीरे धीरे। उनमे विकास होता है। जो फ्रेञ्च जनता सैकड़ो वर्षों से एक खास ढंग से रहती चली आ रही थी, उसे राज्यक्रान्ति एकदम कैसे वदल सकती थी? निस्सन्देह, क्रान्ति ने उसे बदला—बहुत बदला। पर उसको पूर्ण रूप से सफल होने के लिये अभी समय की आवश्यकता थी। यही कारण है, कि क्रान्ति के बाद प्रतिक्रिया का काल आया। पर यह काल भी देर तक नहीं रह सका। कुल १६ वर्ष बाद ही फिर क्रान्ति का युग प्रारम्भ हो गया।

२. अन्य यूरोपियन देशों में प्रतिक्रिया का काल

फ्रास की राज्यक्रान्ति ने जिन नई प्रवृत्तियों को जन्म दिया था, वे केवल फ्रास तक ही सीमित नहीं रही थी वे यूरोप के बड़े भाग मे व्याप्त हो गई थीं। विशेषतया, फ्रास के निकटवर्ती प्रदेशों को तो उन्होंने सर्वथा परिवर्तित कर दिया था। इटली, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड आदि देशों में तो पुराने एकतन्त्र शासन का अन्त होकर रिपब्लिक की स्थापना भी हो गई थी। नैपोलियन की विजयों ने क्रान्ति की लहरों को

स्पेन, पोर्तुगाल, जर्मनी और वारसा तक पहुँचा दिया था। अब नैपोलियन के पतन के अनन्तर इन सब स्थानों पर प्रतिक्रिया का काल प्रारम्भ हुआ। पुराने राजा राजसिंहासन पर बिठाये गये और उनके साथ ही पुरानी सस्थाओं, रीति रिवाजों और विचारों के भी पुनरुद्धार का प्रयत्न किया गया।

स्पेन में प्रतिक्रिया—नैपोलियन के पतन के अनन्तर स्पेन का शासन फर्डिनैण्ड सप्तम के सुपुर्द किया गया। नैपोलियन ने स्पेन को अपने अधीन कर वहा की राजगद्दी पर अपने भाई जोसफ बोनापार्ट को नियत किया था। परन्तु जनता उसके शासन को स्वीकार करने को तैयार नही हुई। उसने विद्रोह कर दिया। वेलिङ्गटन का ड्यूक अपनी इङ्गलिश सेनाओं के साथ उसकी सहायता करने को कटिबद्ध था। परिणाम यह हुआ कि नैपोलियन को अपने तीन लाख के लगभग सैनिक स्पेन मे सन्नद्ध करने पड़े। आखिर फ्रेञ्च सेना की पराजय हुई, स्पेन स्वतन्त्र हो गया। यह घटना १८१२ मे हुई थी। वहा का पुराना राजा फर्डिनैण्ड नैपोलियन की सरक्षा मे फ्रास मे नजरबन्द था, वह अपने देश को वापिस नही आ सका। इससे लाभ उठा कर स्पेनिश जनता ने एक लोकसत्तात्मक शासन का सगठन किया। पार्लियामेण्ट की स्थापना की गई और क्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत नये विचारों के अनुसार स्पेन का शासन विधान तैयार किया गया।

स्वतन्त्रता का अपहरण—१८२४ में नैपोलियन की पराजय के बाद फर्डिनैण्ड अपने देश मे वापिस आया। क्रान्ति की विरोधी प्रवृत्तिया पूर्णतया उसकी सहायता के लिये उद्यत थीं। उसने राजगद्दी पर बैठते ही शासन विधान को नष्ट कर दिया, पार्लियामैण्ट बर्खास्त करदी। वैयक्तिक स्वतन्त्रता छीन ली गई, कुलीन और पुरोहित श्रेणियों को विशेषाधिकार प्रदान किये गये। १८१२ के शासन विधान मे जिन उदार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था, उन्हे फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति—

जिसे बदनाम करना उस समय के राजनीतिक वातावरण में फैशन सा बन चुका था—का प्रभाव बताकर नष्ट कर दिया गया। उदार विचारों के लोगों को देश से बहिष्कृत कर दिया गया या जेल में ठूस दिया गया। फिर पुराने ढंग की एकतन्त्र स्वेच्छाचारी राजसत्ता स्थापित की गई। विधर्मियों को जीते जी आग में जला देने या अन्य वीभत्स दण्ड देने के लिये धार्मिक न्यायालय (इन्क्वीजीशन कोर्ट) कायम किये गये। जेसुइट सम्प्रदाय का फिर जोर हो गया। पुस्तक, अखबार—सब पर कड़ा निरीक्षण जारी किया गया। भाषण और लेख की स्वतन्त्रता वापिस ले ली गई। चर्च की सम्पत्ति यथापूर्व चर्च को दे दी गई। फर्डिनैण्ड सप्तम ने जनता के अधिकारों की रत्ती भर भी परवाह नहीं की। 'जनता के अधिकार' उसकी सम्मति में कोई अर्थ ही नहीं रखते थे। देश की सम्पत्ति को दरबारियों के सुखोपभोग, आमोद प्रमोद और भोग विलास के लिये स्वाहा किया जाने लगा। फर्डिनैण्ड की नीति इतनी मूर्खता पूर्ण थी, कि मेटरनिख तक ने उसे उदार नीति का अनुसरण करने का परामर्श दिया।

जनता का विद्रोह—फर्डिनैण्ड के शासन का वही परिणाम हुआ, जो ऐसे शासनों का हुआ करता है। स्पेन के उपनिवेशों में विद्रोह हो गया। कुशासन के दोष सर्वत्र प्रगट होने लगे। खर्च बहुत बढ गया, आमदनी रही नहीं। स्पेन दिवालिया हो गया। आखिर १८२० में स्पेन में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। फर्डिनैण्ड इसे शान्त करने में असमर्थ था। पर यूरोपीय राजाओं का मित्रमण्डल उसकी सहायता करने को उद्यत था। १८२२ के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में—जो कि वेरोना नामक नगर में हुआ था, स्पेनिश विद्रोह को शान्त करने का कार्य फ्रास के सुपुर्द किया गया। ९५,००० सैनिकों की एक सेना स्पेन आई और विद्रोह को शान्त करने में सफल हुई। विदेशी सहायता से फर्डिनैण्ड सप्तम अपनी राजगद्दी को कायम रखने में समर्थ हुआ।

इसके बाद यह अत्याचारी एकतन्त्र राजा १८३८ तक स्पेन का शासन करता रहा। १८३८ मे इसकी मृत्यु हुई। उस समय तक स्पेन पूर्णतया दिवालिया हो चुका था। जो स्पेन किसी समय यूरोपियन राज्यों मे सब से अधिक उन्नत और प्रगति शील था, वह अब बिलकुल दिवालिया तथा नष्टप्राय हो गया था।

फर्डिनैन्ड सप्तम के निर्बल परन्तु अत्याचार पूर्ण शासन मे क्रान्ति की प्रवृत्तिया सर्वथा दबी हुई नही थी। १८३० मे जब क्रान्ति की लहर ने एक बार फिर सम्पूर्ण यूरोप को व्याप्त कर लिया, उस समय स्पेन भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं बचा। १८३४ मे स्पेन मे उदार विचारों की फिर प्रधानता हो गई और १८३७ मे फर्डिनैन्ड को पार्लियामैण्ट तथा नवीन शासन विधान को स्वीकृत करने के लिये बाधित होना पड़ा। उसकी मृत्यु से पूर्व ही स्पेन में वैध राजसत्ता की स्थापना हो गई थी। वह अपनी शक्ति को किसी भी ढग से मर्यादित कराने के लिये उद्यत नहीं था। परन्तु नई प्रवृत्तियों को काबू मे रख सकना उसकी शक्ति से बाहर था। इसलिये यद्यपि उसके जीते जी ही स्पेन मे क्रान्ति की भावनाये सफल हो गई, पर इसमें सन्देह नहीं कि १८१४ के बाद यूरोप में जब क्रान्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया का युग आया, तो फर्डिनैन्ड ने एक बार फिर १७ वी सदी के 'स्वर्गीय दिवसों' की झलक यूरोप को दिखा दी।

ईटली में प्रतिक्रिया का काल—वीएना की काग्रेस ने इटली मे फिर से विविध पुराने राज्यों का पुनरुद्धार कर दिया था। नैपोलियन के आक्रमणों और विजयों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लाभ इटली के लिये यह हुआ था, कि वहां के लोगों में एकानुभूति उत्पन्न हो गई थी और इटालियन लोग अपने देश को एक राष्ट्र समझने लगे थे। युद्धों और विदेशी आक्रमणों से भी अनेक बार लाभ हो जाते हैं, और निस्सन्देह इटली के लिये नैपोलियन के आक्रमण इस दृष्टि से बहुत

लाभदायक सिद्ध हुए थे। परन्तु वीएना में एकत्रित राजनीतिज्ञों के लिये इस नई प्रवृत्ति का कोई महत्व न था। वे जनता की इच्छा की अपेक्षा राजाओं के अधिकारों को अधिक महत्त्व देते थे। यही कारण है, कि १८१४ के बाद मैटरनिख के शब्दों में इटली केवल एक 'भौगोलिक सञा' रह गया था। 'इटली' इस शब्द से किसी एक राज्य का ग्रहण नहीं होता था। यह तो केवल एक भौगोलिक देश का बोध कराता था। लोम्बार्डी (मिलन) और वेनिस आस्ट्रिया के कब्जे मे थे। परमा, मोडेना और टस्कनी मे विविध राजवश राज्य करते थे, जो प्रायः आस्ट्रियन राजवश की शाखायें मात्र ही थे। दक्षिणी इटली मे नेपल्स का प्रसिद्ध और पुराना राज्य था, जो बोर्बों राजवश की एक शाखा के अधीन था। मध्य मे पोप का राज्य था। इन विविध राज्यो के रहते हुए इटली की राजनीतिक एकता की आशा दुराशा मात्र ही थी।

पीडमौन्ट में सुधारों का नाश—नैपोलियन के काल में इटली मे अनेक नवीन सुधार किये गये थे। सामन्त पद्धति का नाश कर कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया गया था। क्रान्ति के सिद्धान्तों और नई प्रवृत्तियों को उस समय मे पर्याप्त स्थान प्राप्त था। परन्तु अब प्रतिक्रिया के काल मे इटली के विविध राज्यो मे भी पूर्णतया पुराने जमाने को कायम करने का प्रयत्न किया गया। २० मई १८१४ को सार्डिनिया+पीडमौन्ट के राजा विक्टर एमेनुअल प्रथम ने अपनी राजधानी टूरिन मे प्रवेश किया। राजगद्दी पर बैठते ही उसने एकदम सम्पूर्ण सुधारों को नष्ट कर दिया। क्रान्ति के जमाने मे उसके राज्य मे जो भी महत्वपूर्ण कार्य हुए थे, उन सब को कलम की नोक से दूर हटा दिया गया। कुलीन श्रेणी को अपने विशेषाधिकार फिर प्राप्त हुए, पादरियों को चर्च की सम्पत्ति फिर वापिस मिल गई। चर्च के न्यायालय फिर कायम किये गये। प्रेस पर कडी निगाह रखी

गई। धार्मिक स्वतन्त्रता छीन ली गई। फ्रास के प्रति इतनी अधिक घृणा प्रगट की गई, कि राजप्रासाद से फ्रेञ्च साज सामान को नष्ट कर दिया गया। और तो और रहा, टूरिन के बाग से बहुत से पौदों और वृक्षों को केवल इसलिये उखाड़ दिया गया, क्योंकि वे फ्रेञ्च लोगों द्वारा आरोपित किये गये थे। शिक्षा का कार्य फिर से चर्च के सुपुर्द कर कर दिया गया। उदार विचारों के लोगों को राज्य के लिये अत्यन्त भयङ्कर समझा जाने लगा। जरा सा सन्देह होने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता था और भारी दण्ड दिये जाते थे।

पोप का राज्य—केवल पीडमौन्ट में ही नहीं, इटली के अन्य राज्यों में भी यही अवस्था थी। पोप के राज्य में १८१४ में एक उद्घोषणा प्रकाशित की गई, जिससे कि फ्रेञ्च लोगों के सम्पूर्ण कार्यों पर पानी फेर दिया गया। फ्रेञ्च लोगों के नामोनिशान तक को भी मिटा देने की पोप को इतनी अधिक उत्सुकता थी, कि रोम की गलियों मे गैस के प्रकाश को हटा दिया गया, क्योंकि यह फ्रेञ्च क्रान्तिकारियों द्वारा जारी किया गया था। अधिक क्या, टीका लगाने की वैज्ञानिक प्रथा इसलिये हटा दी गई, क्योकि इसका आविष्कार फ्रास में हुआ था।

उत्तरीय इटली के विविध राज्य—लोम्बार्डी और वेनिस तो सीधे आस्ट्रिया के अधीन थे। वहा पर मैटरनिख का शासन स्थापित था। उसके समान नई भावनाओं का दुश्मन यूरोप भर मे अन्य कोई था ही नहीं, फिर यह आशा कैसे की जा सकती थी, कि इन प्रदेशों मे नवीन युग का कोई भी चिह्न अवशिष्ट रह सकेगा? परमा, मोडेना और टस्कनी आस्ट्रियन राजवश के विविध व्यक्तियों के अधीन थे। इन पर आस्ट्रिया का पूरा प्रभाव विद्यमान था। ये सब मैटरनिख के सिद्धान्तो का आख मींच कर अनुसरण कर रहे थे।

नेपल्स की अवस्था भी अच्छी नहीं थी। वहा के बोर्बो शासक फिर से पुरानेस्वर्गीय दिनों की स्थापना के लिये उत्सुक थे। सम्पूर्ण

इटली मे नई प्रवृत्तियों के विरुद्ध भयङ्कर प्रतिक्रिया चल रही थी। राजाओं और कुलीन श्रेणियों के सम्पूर्ण प्रयत्नों के होते हुए भी इटली मे क्रान्ति के दिनों में जो भारी परिवर्तन आया था, उसे सुगमता से हटाया नही जा सकता था। लोगों के दिमाग बदल चुके थे, वे और ढग से सोचने लग गये थे। राष्ट्रीयता की भावना इटालियन नवयुवकों के हृदयों मे नवीन आशा का सञ्चार कर रही थी। वे सगठित और स्वतन्त्र इटली का स्वप्न देख रहे थे। फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति तथा नैपोलियन की विजयों ने लोगों में सुधार और नई प्रवृत्तियों के लिये उत्कट आकाक्षा उत्पन्न कर दी थी—जो कि आगे चलकर पूर्ण रूप से क्रिया मे परिणत हो गई।

स्पेन और इटली मे ही नहीं, यूरोप के अन्य सभी राज्यो मे यह क्रान्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया का काल था। ओरेन्ज का राजवश बेल्जियम के लोगों की इच्छा के सर्वथा प्रतिकूल 'पवित्र मित्रमण्डल' की सहायता से उन पर शासन कर रहा था। पोलैण्ड की जनता विविध एकतन्त्र राजाओं के शासन मे विभक्त थी। पोर्तुगाल मे इङ्गलिश लोगों की सरक्षा में एकतन्त्र शासन का स्थापन किया गया था। यह तो हुई उन देशों की बात जिनमे क्रान्ति की लहरे पहुँच चुकी थीं। उन देशों का तो कहना ही क्या है, जो क्रान्ति के दिनों मे उसको कुचलने के लिये निरन्तर युद्ध करते रहे। उन देशों में तो पुराने ढग के एकतन्त्र शासन का पूर्ण आधिपत्य था।

बीसवां अध्याय

राजनीतिक क्रांतियों का फिर से प्रारम्भ

१. प्रतिक्रिया के काल का अन्त

नैपोलियन के पतन के बाद जब क्रान्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के काल का प्रारम्भ हुआ, तो लोगों ने समझा, अब क्रान्ति का युग हमेशा के लिये समाप्त होगया। क्रान्ति के विरोधी खुशिया मनाने लगे। विचारकों ने समझा, क्रान्ति कितनी अस्वाभाविक चीज थी। क्या कभी ससार में सब लोग बराबर हो सकते हैं? सब लोगों का शासन—कितनी असम्भव, कितनी फिजूल बात है। सब लोगों के दिमाग एक समान नही होते हैं। सब लोगों की शक्ति बराबर नहीं होती है। फिर सब लोगों के अधिकार कैसे बराबर हो सकते हैं। ऊंच नीच के विचार, राजा के दैवीय अधिकार का सिद्धान्त, पुरोहितों की उच्चता का भाव, कुलीनों की श्रेष्ठता के विश्वास लोगों में बहुत गहरे गये हुए थे। पुराने जमाने में अरिष्टोटल जैसे दार्शनिक ने लिखा था, कुछ लोग शासन करने के लिये उत्पन्न हुए हैं, और अन्य लोग शासित होने के लिये। अरिष्टोटल जैसे तत्त्ववेता भी अपने समय से परे नहीं देख सकते थे। उन्हें कुछ का मालिक और कुछ का गुलाम होना स्वाभाविक प्रतीत होता था। लूथर इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता था, कि किसानों को भूमिपतियों के विरुद्ध

विद्रोह करने का हक है। उसके सम्पूर्ण सुधारों के उपदेश कुलीन लोगों के लिये थे और यह उन्हीं का कार्य था, कि वे अपनी जागीरों मे धार्मिक सुधार करें। लूथर ने किसानों पर भयकर से भयकर अत्याचार करने के लिये जर्मनी के जमींदारों को अपनी सहमति दी थी। वह भी अपने समय से परे नहीं देख सकता था। फ्रास की राज्य क्रान्ति के असफल होने के अनन्तर यदि यूरोपियन जनता अपने युग से परे न देख सकी हो, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? लोगों ने समझा, एक भयकर तूफान आया था, अब वह चला गया है। दुनिया मे तो राजाओं का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन ही हमेशा के लिए कायम रहता है, यही ईश्वरीय विधान है, यही सदा से चला आ रहा है, यही सदा रहेगा। कुछ समय तक मेटरनिख का प्रभाव निरपवाद रूप से कायम रहा। क्रान्ति की भावनाओं को कुचला गया। 'स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव' ये सिद्धान्त अत्यन्त भयकर समझे जाते रहे। 'जनता के अधिकारों' मे विश्वास रखने वाले लोग समाज और व्यवस्था के दुश्मन कहे जाने लगे। वैध शासन के पक्षपातियों का एक ही स्थान था और वह था जेल। जो लोग कहते थे, जनता का शासन होना चाहिये, वे सभ्यता के शत्रु समझे जाते थे। नये विचारों का पहले पहल इसी प्रकार स्वागत होता है। आज ससार मे जो सिद्धान्त सर्वसम्मत और निरपवाद रूप से स्वीकृत कर लिये गये हैं, वे कभी भयङ्कर क्रान्तिकारी विचार माने जाते थे। जिन्हें आज क्रान्तिकारी और भयङ्कर समझा जाता है, सम्भवतः सभ्य ससार कल उन्हें सर्वसम्मत समझने लगेगा। इतिहास मे हमें नित्य निरन्तर यही क्रम दृष्टिगोचर होता है।

ससार मे सबसे प्रबल शक्ति विचारों की है। तलवार और बन्दूक से इसका सहार नहीं किया जा सकता। इसे जितना ही कुचलने का प्रयत्न किया जाता है, यह उतनी ही अधिक प्रबल हो जाती है। फ्रास में जिन नवीन विचारों का प्रादुर्भाव हुआ था, उन्हें भी कुचल सकना

असम्भव था। वे लोगों के दिमागों में घर कर चुके थे। क्रान्ति की चौथाई सदी ने मनुष्य जाति के सम्मुख नवीन कल्पनाये उपस्थित की थीं—एक नवीन दुनिया की सम्भावना प्रदर्शित की थी। प्रतिक्रिया के युग में वह नया चित्र लोगों की आखों से ओझल नहीं हो गया था। एकतन्त्र राजाओं के अत्याचारों से तग आये हुए लोगों के सम्मुख एक निश्चित और स्पष्ट मार्ग था, और उस मार्ग की स्मृति उनमे अभी बिलकुल ताजी थी। फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति ने जिन नई प्रवृत्तियों को जन्म दिया था, वे अपना कार्य कर रही थीं। ससार में किसी वस्तु का विनाश नहीं होता। केवल ठोस भौतिक पदार्थ ही नहीं, विचार और सिद्धान्त भी कभी सर्वथा नष्ट नहीं होते। किसी न किसी रूप मे वे कायम रहते हैं। उनका प्रभाव मनुष्यों में अमर रहता है। फिर फ्रास की राज्य-क्रान्ति ने जिस विचार सरणी की सृष्टि की थी, उसने तो प्रादुर्भूत होते ही सम्पूर्ण पाश्चात्य ससार को जड़ से हिला दिया था। उसकी शक्ति असीम थी। उसका नष्ट हो सकना असम्भव था। पुराने युग का लोथ के समान भारी बोझ उसे दबा सकने मे सर्वथा असमर्थ था। यही कारण है, कि वीएना की काग्रेस के केवल पाच वर्ष बाद ही क्रान्ति की इन प्रवृत्तियों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। सर्वत्र विद्रोह और क्रान्ति के चिन्ह नजर आने लगे। एक सदी के लगभग तक यूरोप में पुरानी और नई प्रवृत्तियों मे संघर्ष चलता रहा। पाश्चात्य ससार का अगला इतिहास वस्तुत. इन प्रवृत्तियों के संघर्ष का इतिहास है। आखिर, फ्रेञ्च-राज्यक्रान्ति ने जिन भावनाओं को जन्म दिया था, वे सफल हुईं। सन् १८२० से १८४८ तक यूरोप का इतिहास नई प्रवृत्तियों के प्रगट होने व फूट पड़ने के वृत्तान्त से भरा हुआ है। १८४८ के बाद ये प्रवृत्तिया सर्वत्र सफल होती हुई नजर आने लगीं। इस अध्याय मे हमें इस बात पर प्रकाश डालना है, कि १८४८ तक किस प्रकार इन प्रवृत्तियों ने पुराने जमाने को नष्ट करने का प्रयत्न किया और उन्हें कहा तक सफलता प्राप्त हुई।

२. स्पेन की राज्यक्रान्ति

फर्डिनैन्ड के शासन से असन्तोष—फर्डिनैन्ड सप्तम ने किस प्रकार स्पेन में क्रान्ति की भावनाओं तथा नवीन सुधारों को कुचलने का प्रयत्न किया था, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। पुराने जमाने को फिर से वापिस ले आने के लिये जो कुछ भी उससे बन पाया, उसने किया। परिणाम यह हुआ, कि जनता में असन्तोष की अग्नि भड़क उठी। सुधार के पक्षपाती शान्तिमय उपायों से अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ हो गये। राजा पर वे किसी भी प्रकार से अपना प्रभाव नहीं डाल सकते थे। राजा पूर्णतया कुलीन और पुरोहित श्रेणी के प्रभाव में था। आखिर, निराश होकर उन्होंने गुप्त समितियों का सगठन किया। सर्वसाधारण जनता उनके साथ थी। क्रान्ति ने जनता को जो अधिकार तथा अवसर दिये थे, उन्हें वह आसानी से नहीं छोड़ देना चाहती थी। मध्यश्रेणी के बहुत से लोग जो अपने व्यवसायों तथा व्यापार के कारण बहुत काफी उन्नत तथा समृद्ध हो चुके थे, अब इस बात को नहीं सह सकते थे, कि कुलीन लोग उनकी अपेक्षा अधिक विशेषाधिकारों का उपभोग करें। सिपाही लोग भी फर्डिनैण्ड के शासन से असन्तुष्ट थे। नैपोलियन के विरुद्ध लड़ते लड़ते राष्ट्रीयता की भावनायें उनमें कूट-कूटकर भर गई थीं। जनता की इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार का एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन वे सहन नहीं कर सकते थे। विद्रोह के लिये मैदान तैयार था। १८२० में विद्रोह की अग्नि स्पेन भर में प्रचण्ड हो उठी। काडिज में सेना ने विद्रोह किया। क्रान्तिकारी लोग तो उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में थे ही। वे भी शामिल हो गये। विद्रोह की अग्नि सम्पूर्ण स्पेन में व्याप्त हो गई। फर्डिनैण्ड के लिये अपनी राजगद्दी को सम्भालना मुश्किल हो गया। आखिर, जनता को सन्तुष्ट करने के लिये उसने १८१२ के शासन-विधान को फिर स्थापित

किया। धार्मिक न्यायालय नष्ट कर दिये गये। और अधिक सुधार करने की प्रतिज्ञा की गई। परिणाम यह हुआ, कि जनता धोके में आ गई। विद्रोह शान्त हो गया। दो वर्षों तक फर्डिनैण्ड ने नवीन शासन विधान के अनुसार शासन किया। पार्लियामैण्ट का निर्वाचन किया गया, उदार विचारों के नेता मन्त्री नियत किये गये। परन्तु फर्डिनैण्ड की नियत साफ नहीं थी। वैध शासन की कल्पना भी उसे सह्य न थी। वह विदेशी सेनाओं की सहायता से वैध शासन को नष्ट करने के लिये षड्यन्त्र कर रहा था। कुलीन और पुरोहित श्रेणियों के लोग उसके साथ थे। आखिर, फर्डिनैण्ड अपने मित्र मेटरनिख को इस बात के लिये प्रेरित करने मे समर्थ हुआ, कि वह 'चतुर्विध मित्र मण्डल' की शक्ति का स्पेन मे स्वेच्छाचारी राजसत्ता स्थापित करने के लिये प्रयोग करे। सन् १८२३ मे वेरोना के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे स्पेन का मामला पेश किया गया। सब राज्य इस बात के पक्ष में थे, कि फर्डिनैण्ड की सहायता की जाय। केवल इङ्गलैण्ड विरुद्ध था। आखिर, यह निश्चय किया गया कि फ्रास की सेनाये फर्डिनैण्ड की सहायता के लिये भेजी जाय। ९५ हजार फ्रेञ्च सैनिक एकसत्तात्मक राजतन्त्र की स्थापना के लिये स्पेन में प्रविष्ट हुए। फ्रास की वे सेनायें, जिन्होंने सारे यूरोप को क्रान्ति की लहरों से व्याप्त कर दिया था, अब इतनी अधिक परिवर्तित हो गई थी, कि जनता के न्याय्य अधिकारों को कुचलने के लिये एक स्वेच्छाचारी राजा की सहायता करने मे सङ्कोच नहीं करती थी। फ्रेञ्च सैनिकों की सहायता से नई प्रवृत्तियों को सर्वथा कुचल दिया गया। पार्लियामैण्ट बर्खास्त करदी गई। उदार मन्त्रिमण्डल पदच्युत कर दिया गया। स्पेन में फिर वही स्वेच्छाचारी राजसत्ता, वही धार्मिक न्यायालय, वही कुलीनों के लिये अधिकार, अभिप्राय यह है, कि वही पुराना जमाना स्थापित हो गया। उदार विचारों के लोगों पर भयङ्कर अत्याचार किये गये। एक प्रकार का आतङ्क सा बिठाने का प्रयत्न किया गया। फर्डिनैन्ड

१८३० तक इसी प्रकार एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी रूप से शासन करता रहा । इस सुदीर्घ काल मे उसके विरुद्ध विद्रोह करने का साहस किसी को न हुआ। उसकी सहायता करने के लिये मेटरनिख अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उद्यत था। यूरोप के राजा अत्याचारों और क्रूरताओं के लिये उसकी पीठ ठोक रहे थे।

विद्रोह की प्रवृत्ति का पुनः प्रारम्भ—१८३० मे जब फ्रास में राज्यक्रान्ति हुई, तो उसका प्रभाव स्पेन पर भी पड़ा। जनता में एक बार फिर साहस का सचार हुआ। उदार विचारों के लोग सुधार के लिये आन्दोलन करने लगे। परन्तु उनको सफलता नहीं हुई। लोगों मे डर बैठा देने के लिये सब प्रकार के उपायों को प्रयोग मे लाया गया। गुप्तचरों की सख्या बढा दी गई। फौजी न्यायालय कायम किये गये। मेड्रिड मे एक विद्यार्थी को केवल इसलिये फासी पर चढ़ा दिया गया, क्योंकि उसने 'स्वतन्त्रता की जय' का नारा लगाया था। एक स्त्री को इसलिये प्राणदण्ड दिया गया. क्योंकि उसने एक झण्डे पर 'स्वतन्त्रता, कानून, समानता' ये शब्द लिखे थे। परन्तु इन सब अत्याचारों के होते हुए भी उदार और नवीन विचारों के लोग निरन्तर प्रबल होते जाते थे। १८३४ मे पार्लियामैट मे नवीन विचारों के लोगो की सख्या बहुत बढ गई। फर्डिनैन्ड सप्तम की पार्लियामैंट नाम को ही व्यवस्थापिका सभा थी, उसके अधिकार न के बराबर थे। उसे टैक्सों पर वोट देने तक का अधिकार प्राप्त न था। पर फिर भी पार्लियामैंट मे बहुमत हो जाने के कारण नवीन विचारों के लोग राजा को शासन सुधार करने के लिये विवश करने में समर्थ हुए। इन नवीन लोगों की शक्ति निरन्तर बढती ही गई। १८३७ मे राजा को बाधित होना पड़ा, कि १८१२ के शासन विधान के आधार पर एक नवीन शासन विधान स्पेन में जारी करे। १८३७ के इस शासन विधान से पार्लियामैंट की शक्ति पुनः स्थापित हो गई। यद्यपि यह जनता की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं थी, क्योंकि वोट देने

का अधिकार बहुत कम लोगों को प्राप्त था, पर राजा की एकतन्त्र सत्ता अब अवश्य नष्ट हो गई थी।

वैध राजसत्ता की स्थापना—१८३७ के शासन विधान से स्पेन मे भी वैध राजसत्ता प्रचलित हुई। पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी मन्त्रि-मण्डल स्पेन का शासन करने लगा।

स्पेनिश उपनिवेशों में स्वतन्त्रता की भावना—१६ वीं और १७ वीं सदियों मे जब यूरोपियन लोगों ने अपने सामुद्रिक साम्राज्यो का निर्माण आरम्भ किया, तो स्पेन इस क्षेत्र में सबसे आगे बढा हुआ था। मध्य और दक्षिण अमेरिका में स्पेन ने अनेक उपनिवेशों की स्थापना की थी। इन स्पेनिश उपनिवेशों मे स्वशासन का जरा भी अस्तित्व न था। ये पूर्णतया स्पेन के आधीन थे। जब १८ वीं सदी के उत्तरार्ध मे उत्तरीय अमेरिका के इङ्गलिश उपनिवेशों मे स्वराज्य के लिये आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तो उसका प्रभाव स्पेनिश उपनिवेशो पर पड़ना सर्वथा स्वाभाविक था। इङ्गलिश उपनिवेशों को अपने प्रयत्न में सफलता हुई। वे स्वतन्त्र 'संयुक्त राज्य' अमेरिका का निर्माण करने मे समर्थ हुए। जब स्पेन के उपनिवेशों ने देखा, कि उनके उत्तरीय पड़ोसी स्वाधीन हो गये हैं, तो उनमें भी स्वराज्य प्राप्त करने की उत्कण्ठा प्रबल हो गई। फ्रास की राज्यक्रान्ति ने उनमे और अधिक साहस उत्पन्न किया और वे स्वतन्त्रता के लिये सग्राम करने को सन्नद्ध हो गये। उपनिवेशों मे स्पेन का शासन बहुत ही कठोर और विकृत था। स्पेनिश लोग उपनिवेशों को धन उपार्जन और अपने लाभ का साधन मात्र समझते थे। फ्रास की क्रांति के बाद जब नेपोलियन ने स्पेन पर कब्जा कर लिया, तो इन अमेरिकन उपनिवेशों को अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन करने का सुवर्णावसर हाथ लगा। इसके अतिरिक्त अपने व्यापार को उन्नत करने का भी उन्होंने विशेष रूप से प्रयत्न किया। इससे पूर्व वे स्पेन के अतिरिक्त और किसी देश से

व्यापार नहीं कर सकते थे। उन दिनों मे यूरोप की औपनिवेशिक नीति का यह एक महत्वपूर्ण अग था, कि उपनिवेश मूलदेश के अतिरिक्त अन्य किसी से व्यापार न कर पावे। नेपोलियन के समय की अव्यवस्था से लाभ उठाकर स्पेनिश उपनिवेशों ने सयुक्तराज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के साथ व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया। राजनीतिक स्वतन्त्रता की दृष्टि से इन उपनिवेशों मे बहुत आन्दोलन चल रहा था। १८०४ के बाद उनमे निरन्तर विद्रोह होने लगे।

क्रान्ति का प्रारम्भ—स्पेन उस समय नैपोलियन के कब्जे मे था। वहा स्वय गृहकलह जारी था। स्पेन से किसी भी प्रकार की सहायता इन उपनिवेशों के विद्रोह को शान्त करने के लिये नहीं भेजी जा सकती थी। परिणाम यह हुआ, कि जो थोड़ी बहुत सेनाये उपनिवेशों मे विद्यमान थीं, वे परास्त करदी गई और वहा के स्पेनिश शासकों को पराजित कर बाहर निकाल दिया गया। इन विद्रोहों मे सयुक्तराज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ थी। यद्यपि इङ्गलैंड नेपो-लियन के खिलाफ स्पेन की सहायता करने के लिये कटिबद्ध था, तथापि स्पेनिश साम्राज्य का भङ्ग होते देख कर उसे हार्दिक प्रसन्नता थी। अधिकाश स्पेनिश उपनिवेश इस समय स्वतन्त्र हो गये और उनमे सयुक्तराज्य अमेरिका व फ्रास के नमूने के रिपब्लिकन शासन स्थापित हुए।

मित्र-मण्डल का हस्तक्षेप—स्पेनिश उपनिवेशों की इन सफल क्रान्तियों को यूरोप के स्वेच्छाचारी राजा सहन नहीं कर सकते थे। जनता के विद्रोह, चाहे वे पृथिवी के किसी भी कोने मे क्यों न हो रहे हों, उन्हें सह्य न थे। इसलिये वेरोना के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में (१८२३) जब स्पेनिश विद्रोह को कुचलने का कार्य फ्रास के सुपुर्द किया गया, तब साथ ही यह भी निश्चय हुआ, कि इन उपनिवेशों के विद्रोहों को भी शान्त किया जाय और इन्हें फिर फर्डिनैण्ड सप्तम की

आधीनता में ले आया जाय। फ्रांस की सेनाये बड़ी खुशी से इस महत्व पूर्ण कार्य को भी अपने हाथ में ले लेतीं, अगर ग्रेट-ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात का विरोध न करते।

इङ्गलैण्ड का विरोध—ग्रेट ब्रिटेन दो कारणों से इसके विरोध में था। पहली बात यह कि इससे स्पेन के साम्राज्य का पुनः स्थापन होता था और दूसरी बात यह कि पिछले दिनों में स्पेनिश उपनिवेशों के साथ उसका नया नया व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ था। ग्रेट ब्रिटेन को इस व्यापार से बहुत आशा थी। यह निश्चित था कि यदि वे उपनिवेश फिर स्पेन के आधीन हो जाते, तो फिर पुरानी औपनिवेशिक नीति का अवलम्बन कर अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध को सर्वथा रोक दिया जाता। ग्रेट ब्रिटेन इस भारी नुकसान को सहने के लिये उद्यत नहीं था, अतः उसने उद्घोषित किया, कि अमेरिका के इन स्वतन्त्र राज्यों की स्वतन्त्रता में यूरोप के राज्य यदि किसी भी प्रकार की बाधा डालेंगे, तो ग्रेट ब्रिटेन उनका पूरा विरोध करेगा और आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र का भी आश्रय लेगा। संयुक्तराज्य अमेरिका भी यह नहीं चाहता था, कि उसका नया नया स्थापित हुआ व्यापारिक संबन्ध इतनी सुगमता से नष्ट हो जावे। साथ ही, वह यह भी सहन नहीं कर सकता था, कि पुरानी दुनियां के राज्य नयी दुनिया के मामलों में इस प्रकार से हस्तक्षेप करें।

मुनरो सिद्धान्त—इस लिये १८२२ में ही संयुक्तराज्य अमेरिका ने कोलम्बिया, चिली, अर्जेन्टाइन और मेक्सिको (ये सब पहले स्पेन के उपनिवेश थे) को स्वतन्त्र राज्यों के रूप में स्वीकृत कर लिया, और अगले वर्ष १८२३ में राष्ट्रपति मुनरो ने अमेरिकन कांग्रेस के सम्मुख उस प्रसिद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जो अब तक उसके अपने नाम से विख्यात है। राष्ट्रपति मुनरो ने कहा—"यूरोपियन राज्यों के पारस्परिक युद्धों में हमने अब तक कभी भी हिस्सा नहीं लिया है। न

हमारी यह नीति ही है, कि हम यूरोप के आन्तरिक मामलों मे किसी किसम का हस्तक्षेप करे। परन्तु जिम समय हमारे अधिकारों पर हमला किया जाता है, या उनको गहरे तरीके से हानि पहुँचाई जाती है, तभी हम आत्मरक्षा के लिये तैयारी करते हैं, या नुकसान से अपना बचाव करते हैं। पर पृथिवी के इस भाग के आन्दोलनों और घटनाओं से हमारा अधिक सन्निकट सम्बन्ध है, और इसका कारण कोई भी बुद्धिमान तथा निष्पक्ष व्यक्ति सुगमता से समझ सकता है। यूरोप के 'मित्रमडल' की राजनीतिक पद्धति हम लोगों से इस अश मे सर्वथा भिन्न है।···हम इस बात को उद्घोषित करना चाहते हैं, कि यदि यूरोपियन राज्यों का 'मित्रमण्डल' अपनी राजनीतिक पद्धति को पृथिवी के इस भाग के किसी हिस्से पर प्रयुक्त करने का प्रयत्न करेगा, तो इसे हम अपनी शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरनाक समझेंगे।" यही स्थापना इतिहास मे 'मुनरो-सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ध्यान में रखना चाहिये, कि इस सिद्धान्त के प्रतिपादन मे ग्रेट ब्रिटेन के परराष्ट्र सचिव ज्यार्ज कैनिङ्ग का भी हाथ था।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति—राष्ट्रपति मुनरो की इस उद्घोषणा का यह परिणाम हुआ, कि यूरोपियन राज्यों के लिये कोलम्बिया आदि स्वतन्त्र हुए स्पेनिश उपनिवेशों के मामले मे हस्तक्षेप करना कठिन होगया। मेटरनिख तथा उसके साथी राजनीतिज्ञ परेशान रह गये। प्रबल इच्छा होते हुए भी वे उपनिवेशों को आधीन करने के लिये फर्डिनैन्ड की सहायता नहीं कर सके। फर्डिनैन्ड ने स्वय भी कोई प्रयत्न नहीं किया। उसमे इतनी शक्ति नहीं थी, कि एक तरफ तो अपनी प्रजा की स्वाधीनता की भावनाओं को कुचलता रहे और दूसरी तरफ सुदूरवर्ती अमेरिकन उपनिवेशों को भी अपने अधीन रख सके। परिणाम यह हुआ, कि स्पेन का औपनिवेशिक साम्राज्य नष्ट होगया। क्रान्ति की जो भावनाये फ्रास मे प्रादुर्भूत हुई थीं, वे यदि स्पेन मे पूर्णतया प्रसारित नहीं हुई,

तो कम से कम समुद्र पार के उपनिवेशों में तो अपना कार्य कर ही गई।

३. अन्य देशों में क्रांति का प्रारम्भ

सन् १८२० मे स्पेन के साथ ही पोर्तुगाल में भी राज्यक्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। सन् १८०८ में नैपोलियन की सेनाओं ने पोर्तुगाल पर कब्जा कर लिया था और वहा का राजा डाम जान चतुर्थ अपने अमेरिकन उपनिवेश ब्राजील मे भाग गया था। इसके बाद पोर्तुगाल फ्रास के आधीन हो गया और राजा डाम जान चतुर्थ ब्राजील में स्वतन्त्ररूप से शासन करता रहा। परन्तु पोर्तुगाल में फ्रेंच लोगों का शासन देर तक कायम नहीं रह सका। १८०८ के अन्त में ही वेलिङ्गडन के ड्यूक ने अपनी इङ्गलिश सेनाओं के साथ वहा पर प्रवेश किया और फ्रेंच सेनाओं को परास्त कर पोर्तुगाल को अपने कब्जे मे कर लिया। तब से लेकर १८२० तक (१८०८-१८२०) पोर्तुगाल इङ्गलिश अफसरों के शासन में था, जो कि ब्राजील भागे हुए पोर्तुगीज राजा के नाम पर राज्य कर रहे थे। पोर्तुगाल के निवासी इन इङ्गलिश लोगों के शासन को जरा भी पसन्द नहीं करते थे। फ्रेंच राज्यक्रान्ति द्वारा प्रादुर्भूत नवीन भावनाओं ने उन पर भी प्रभाव डाला था। वे भी राष्ट्रीयता के भावों से प्रेरित हो कर अपने देश को इङ्गलिश लोगों की हकूमत से मुक्त कराने तथा जनता के अधिकारों को स्थापित करने के लिये उत्सुक थे। पोर्तुगाल पोर्तुगीज लोगों के लिये है, यह भावना सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई। इस दशा मे जब १८२० में स्पेनिश लोगों ने विद्रोह किया, तो पोर्तुगाल मे भी विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो गई। बृटिश शासकों को बहिष्कृत कर दिया गया। 'धार्मिक-न्यायालय' (इन्क्वीजिशन) नष्ट किये गये। कुलीन और पुरोहित श्रेणियों से विशेषाधिकार छीन लिये गये। लोकसभा का सगठन कर साथ ही यह भी उद्घोषित किया गया,

कि कानून की दृष्टि मे सब मनुष्य एक समान हैं, सबको लिखने, बोलने और मुद्रण की पूर्ण स्वतन्त्रता है। इस लोकसभा ने लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार देश के लिये एक नवीन शासन-विधान का निर्माण किया।

पोर्तुगाल की इस क्रान्ति को यूरोपियन स्वेच्छाचारी राजा सहन न कर सके। वे हस्तान्तेप करने का विचार करने लगे। ग्रेट ब्रिटेन ने भी पोर्तुगाल के विद्रोह को कुचल देने का निश्चय किया। ब्राजील मे भागे हुए राजा जान चतुर्थ को प्रेरित किया गया, कि वह अपने वास्तविक राज्य को वापिस लौट कर अपनी खोई हुई राजगद्दी को सम्भाल ले। राजा जान ने इस सुवर्णावसर को हाथ से नहीं जाने दिया। वह पोर्तुगाल वापिस लौट आया। १८२१ मे पोर्तुगाल वापिस आकर राजा जान ने यह उद्घोषित किया, कि मै नवीन शासन विधान को स्वीकृत करने के लिये तैयार हूँ। जनता इससे बहुत सन्तुष्ट हुई। उन्होंने उसे राजा स्वीकृत कर लिया। राजा जान चतुर्थ एक बार फिर पोर्तुगाल का राजा बन गया। पर जान चतुर्थ के ब्राजील से प्रस्थान करते ही वहा विद्रोह हो गया। इस विद्रोह का नेता जान का अपना लड़का डाम पेड्रो था। उसे ब्राजील मे अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में देर नहीं लगी। जान एक देश का राजा रह सकता था, पोर्तुगाल का या ब्राजील का। दोनों देशों को सम्भाल सकना उसकी शक्ति से बाहर था।

पोर्तुगाल वापिस लौट कर जान ने जिस उदार नीति का परिचय दिया था, उसे वह देर तक कायम नहीं रख सका। शीघ्र ही वह कुलीन और पुरोहित लोगों के प्रभाव मे आगया। उसने शासन विधान की उपेक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। परिणाम यह हुआ, कि एक बार फिर विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड हो उठी। पोर्तुगाल की जनता ने विद्रोह कर दिया। राजा डाम जान चतुर्थ को भाग चलने के लिये बाधित होना पड़ा। एक ब्रिटिश जहाज का आश्रय लेकर वह अपनी जान बचाने में

समर्थ हुआ। परन्तु यूरोप के एकतन्त्र राजा और विशेषतया ब्रिटेन उसकी सहायता करने को कटिबद्ध थे। उन्होंने उसे फिर सहारा दिया। यूरोपियन 'मित्रमण्डल' की सहायता से राजा जान फिर पोर्तुगाल की राजगद्दी पर आरूढ हुआ। इस समय मे कुलीन श्रेणी और यूरोप के राजपरिवारों ने जनता के खिलाफ एक भयङ्कर षडयन्त्र किया हुआ था। जनता इस षडयन्त्र के सम्मुख सर्वथा असहाय थी।

१८२६ मे राजा जान की मृत्यु हुई। उसका लड़का डाम पेड्रो, जो इस समय मे ब्राजील का राजा था, अब पोर्तुगाल का राजा बना। सन् १८३४ तक जनता और राजा मे निरंतर संघर्ष जारी रहा। इस काल मे पोर्तुगाल में एक प्रकार का गृह युद्ध सा हो रहा था। जनता अपने अधिकारों के लिये कोशिश कर रही थी और कुलीन श्रेणियों की सम्पूर्ण शक्ति उनकी न्याय्य मागों को पाशविक बल का प्रयोग करके नष्ट करने मे लगी हुई थी। आखिर, १८३४ में जनता की विजय हुई। राजा को एक उद्घोषणा पत्र प्रकाशित करने के लिये बाधित होना पड़ा, जिसमे कि कुलीन और पुरोहित श्रेणियो के विशेषाधिकार नष्ट किये गये, चर्च की सम्पत्ति छीन ली गई, वैध राजसत्ता की स्थापना की गई और जनता के अधिकार स्वीकृत किये गये। पोर्तुगाल मे भी राजसत्ता को पूर्णतया जनता के आधीन कर दिया गया। क्रान्ति की प्रवृत्तिया आखिरकार पोर्तुगाल मे भी सफल हो गई।

वीएना की कांग्रेस के बाद इटली के विविध राज्यों की क्या व्यवस्था की गई थी, उस पर विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है। उत्तरीय इटली के बड़े भाग पर आस्ट्रिया का शासन था। अनेक राज्य आस्ट्रिया के प्रभाव में थे। पीडमौन्ट, नेपल्स, पोप का राज्य, लोम्बार्डी, टस्कनी आदि सभी राज्यों मे एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी राजा राज्य कर रहे थे। इटली मे राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। इटालियन नवयुवक अपने देश को एक शासन मे सगठित देखना

चाहते थे, पर उनकी आकाक्षा के पूर्ण होने की कोई सम्भावना दृष्टिगोचर नहीं होती थी। वीएना के राजनीतिज्ञों ने जनता की इच्छा की सर्वथा उपेक्षा कर पुराने राजवशों का पुनरुद्धार कर दिया था। ये छोटे छोटे राजा अपने को परमेश्वर का प्रतिनिधि समझ कर मनमानी तरीके से शासन कर रहे थे। १८२० मे जब स्पेन मे राज्यक्रान्ति हुई, तो इटालियन लोगों में भी साहस उत्पन्न हुआ। वे भी अपने अधिकारों के लिये सघर्ष करने को उद्यत हो गये। इटली मे गुप्त समितियों की कमी नहीं थी। १८१५ के बाद जब प्रतिक्रिया के युग का प्रारम्भ हुआ था, तभी अनेक गुप्त समितियों का संगठन किया गया था। 'कार्बोनरी' नामक समिति के सदस्यों की संख्या साठ हजार के लगभग थी। इस सुप्रसिद्ध समिति के अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी गुप्त समितिया विद्यमान थीं, जो कि अपने देश को स्वतन्त्र तथा सगठित करने के लिये प्रयत्न कर रही थी। १८२० मे इन सब समितियों को विद्रोह करने के लिये अत्यन्त उत्तम अवसर हाथ लगा। नेपल्स के लोगों ने अपने राजा फर्डिनैन्ड छटे के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे बाधित किया, कि वह अपने राज्य में शासन विधान का निर्माण कर उसके अनुसार शासन करे। इसी प्रकार सिसली—जो कि नेपल्स के राजा के ही अधीन था, मे भी विद्रोह हुआ। वहा पर भी जनता के अधिकारों को स्वीकृत करने के लिये आवाज उठाई गई। पर सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री मेटरनिख यह सहन नहीं कर सकता था, कि इटली के लोगों में भी नवीन भावनाओं का प्रचार हो। फर्डिनेन्ड छटे की सहायता के लिये आस्ट्रियन सेनायें तैयार थी। उन्होंने न केवल सिसली के विद्रोह को शान्त किया, अपितु नेपल्स की जनता को भी अच्छा पाठ पढाया। नेपल्स के नये शासन विधान को नष्ट कर दिया गया। जिसने इसका विरोध करने की हिम्मत की, उसे भयङ्कर दण्ड दिये गये। आस्ट्रियन सेनाओं की सहायता से नेपल्स के राज्य में फिर

पहले के समान एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी राजसत्ता की स्थापना हो गई।

१८२१ मे पीडमौन्ट की जनता ने विद्रोह किया। पीडमौन्ट का प्रदेश फ्रास के बहुत समीप था। क्रान्ति की लहरे उसे अच्छी तरह आप्लावित कर चुकी थी। नैपोलियन उसे जीतकर फ्रास के अधीन कर चुका था और वहा के निवासी स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्तों पर आश्रित शासन का आस्वाद ले चुके थे। पीडमौन्ट के विद्रोहियों का कहना था, कि हमारे देश मे भी शासन विधान की स्थापना होनी चाहिये, एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन का अन्त होना चाहिये, और उत्तरीय इटली से आस्ट्रिया के प्रभाव को नष्ट कर सम्पूर्ण देश को एक सूत्र मे सगठित करना चाहिये। पीडमौण्ट का राजा विक्टर एमेनुअल प्रथम इस विद्रोह को शान्त करने मे असमर्थ था। उसने राजगद्दी का परित्याग करने मे ही कल्याण समझा। अपने भाई चार्ल्स फेलिक्स को राज्य देकर वह पीडमौन्ट छोड़ कर चला गया। चार्ल्स फेलिक्स बहुत हिम्मती और जबर्दस्त आदमी था। उसने आस्ट्रिया और रशिया की सहायता प्राप्त कर विद्रोह को शान्त करने में सफलता प्राप्त की। विद्रोह शान्त होगया। १८२० मे क्रान्ति की जो लहर स्पेन मे प्रारम्भ हुई थी, वह इटली तक पहुँचते पहुँचते सर्वथा शक्तिहीन हो गई। इटालियन लोगों की आकाक्षाये पूर्ण नहीं होसकीं। परन्तु जो नई प्रवृत्तिया उनमे कार्य कर रहीं थ।, वे सदा के लिये दबाई नहीं जा सकती थीं। चौथाई सदी के बाद ही इटली एक देश बन गया और वहा की जनता की महत्त्वाकाक्षाये पूर्ण होगई। नई भावन।यें क्रिया मे परिणत हो गई।

अठारहवीं सदी के अन्त तक बाल्कन प्रायद्वीप के बड़े भाग पर टर्की के सुलतान का शासन था। बाल्कन प्रायद्वीप मे अनेक जातिया निवास करती थीं। इन सब की भाषा, धर्म, नसल और जाति टर्की से भिन्न थी। फ्रास की राज्य क्रान्ति द्वारा उत्पन्न नई प्रवृत्तियों ने इन पर भी

असर डाला और इन्होंने भी यह अनुभव करना शुरू किया, कि हमें भी स्वतन्त्र होना चाहिये। ग्रीक लोग सोचने लगे, कि ग्रीस को टर्की के आधीन नहीं रहना चाहिये। सर्व, बलगेरियन, रूमानियन आदि लोगों में भी इसी प्रकार के विचार उत्पन्न हुए। राष्ट्रीयता की भावनाओं से प्रभावित होकर बाल्कन प्रायद्वीप की इन जातियों ने स्वतन्त्र होने का स्वप्न देखना प्रारम्भ किया। टर्की के सुलतान का शासन पूर्णतया स्वेच्छाचारी और एकतन्त्र था। बाल्कन प्रायद्वीप के निवासी प्रधानतया ईसाई धर्म को मानने वाले थे। वे एक मुसलमान सुलतान का शासन किसी भी प्रकार नहीं सह सकते थे। जिस समय नैपोलियन का पतन करने के लिये ग्रेट ब्रिटेन, एशिया, रशिया और आस्ट्रिया ने गुट का निर्माण किया और यह उद्घोषित किया, कि हम विविध जातियों को नैपोलियन के एकाधिपत्य से मुक्त कराने के लिये और यूरोप में स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता की स्थापना के लिये संघर्ष कर रहे हैं, तो इन बाल्कन जातियों को बहुत आशा हुई। उन्होंने समझा, कि इस शक्तिशाली गुट की सहायता कर अन्त में हम भी अपनी अवस्था को उन्नत करने में समर्थ हो सकेंगे। विशेषतया, ग्रीस में नैपोलियन के विरुद्ध इस गुट की सहायता करने के लिये भारी आन्दोलन किया गया। १५ हजार के लगभग ग्रीक स्वयंसेवक इस युद्ध में सम्मिलित हुए। आखिर, जब नैपोलियन का पतन हो गया और यूरोप का पुनः निर्माण करने के लिये विविध राजनीतिज्ञ वीएना में एकत्रित हुए, तब इन ग्रीक लोगों को बड़ी आशा थी कि हमारी तरफ ध्यान दिया जायगा और हमारे उद्धार के लिये भी कोशिश की जायगी। पर वे पूर्ण-रूप से निराश हुए। वीएना के राजनीतिज्ञ राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के कट्टर दुश्मन थे। नैपोलियन के खिलाफ विविध लोगों की सहायता प्राप्त करने के लिये ही इन उदात्त शब्दों का प्रयोग किया गया था। वीएना से निराश होकर ग्रीक लोगों ने अपने पहिये पर अपने आप कन्धा लगाने

का निश्चय किया। अनेक सभा समितिया सगठित की गई। विशेष-तया, 'मित्रसभा' नाम की सस्था ने बड़ा भारी काम किया। इस सभा के सदस्य सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप मे फैले हुए थे। केवल कान्स्टेन्टि-नोपल मे ही इसके सदस्यों की सख्या १७ हजार के लगभग थी। इस सस्था ने स्वाधीनता के लिये बड़ा भारी प्रचार किया। इसके आन्दोलनों का परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण बाल्कन प्रायद्वीप में स्वाधीनता की भावना प्रबल हो गई। १८२० में जब स्पेन, पोर्तुगाल और इटली में विद्रोह की अग्नि धधक रही थी, तो ग्रीक देशभक्तो को भी अपने देश मे स्वराज्य स्थापित करने की आशा प्रबल हो उठी। उनका प्रधान-नेता इप्सिलान्टी बड़े आवेश में, कहने लगा—'हेलन भाइयो! वक्त आगया है। अब हमें अपने धर्म और देश की स्वतन्त्रता के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।' सारे ग्रीस मे यही भाव हिलोरें मारने लगे। परिणाम यह हुआ, कि १८२१ मे ग्रीस का स्वाधीनता सग्राम प्रारम्भ हो गया।

१८२१ में जब लैबख नामक स्थान पर यूरोपियन मित्रमण्डल की अन्तर्राष्ट्रीय काग्रेस हो रही थी, तब उन्हें यह चिन्ताजनक समाचार सुनने को मिला, कि एक और देश ने न्याय्य और परमेश्वर के प्रतिनिधि सम्राट् के खिलाफ विद्रोह कर दिया है। मेटरनिख का पक्ष था कि ग्रीक विद्रोह को शान्त करने के लिये टर्की के सुलतान को सहायता दी जानी चाहिये। सुलतान ईसाई नहीं है, तो क्या हुआ। वह सम्राट् तो है। उस जमाने मे जाति, नसल, धर्म आदि तत्व लोगों में एकानुभूति उत्पन्न करने वाले नहीं थे। यूरोप भर के राजा अपने को भाई भाई समझते थे, जहा तक लोगों के अधिकारों को कुचलने का प्रश्न हो। फ्रास के कुलीन अपने देश के किसान व जुलाहे को उतना 'अपना' नहीं समझते थे, जितना कि प्रशिया व रशिया के कुलीन जमींदारों को। इस अवस्था मे, यह सर्वथा स्वाभाविक ही था, कि टर्की के

मुसलमान सुलतान की क्रिश्चियन ग्रीक प्रजा को कुचलने के लिये मेटरनिख प्रस्ताव उपस्थित करता। परन्तु अन्य राजाओं ने उसका समर्थन नहीं किया। सुलतान की शक्ति बहुत काफी थी। वह भयकर से भयकर उपायों का प्रयोग कर ग्रीक विद्रोह को शान्त करने का प्रयत्न कर रहा था। इस विद्रोह ने यूरोप के उदार विचारकों को एक अच्छा अवसर दिया। जनता अपने अधिकारों के लिये कहीं पर भी सघर्ष कर रही हो, उन्हें उसकी सफलता मे हार्दिक खुशी होती थी। ग्रीस के लोग ईसाई धर्म को मानने वाले थे और उनका सुलतान मुसलमान था। इस बात का इन उदार लोगों ने अच्छा उपयोग किया। मुसलमान अफसरों की तरफ से जो भयकर अत्याचार ग्रीस की ईसाई जनता पर किये जा रहे थे, उनके समाचारों को सुन कर यूरोप के ईसाई लोगों में हलचल मच गई। क्रान्ति के समर्थक उदार लोगों ने आन्दोलन करना प्रारम्भ किया कि ग्रीक लोगों के मामले मे हस्तक्षेप करना चाहिये और मुसलमानो के रजे से ईसाई भाइयों की रक्षा करनी चाहिये। ग्रीस के प्राचीन गौरवमय इतिहास को यूरोप के निवासी अभी भूले नहीं थे। ग्रीस की प्राचीन सभ्यता का यूरोप पर भारी प्रभाव था। इस कारण यूरोप के लोगों को ग्रीस से स्वाभाविक सहानुभूति थी। वे उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो गये। सब स्थानों से स्वय सेवक लोग ईसाई भाइयों की सहायता करने के लिये ग्रीक पहुंचने लगे। इङ्गलैंड का प्रसिद्ध कवि लार्ड बायरन भी इस युद्ध में स्वयसेवक के रूप मे सम्मिलित हुआ। यूरोप भर मे ग्रीस की सहायता के लिये चन्दा एकत्रित किया गया। सब जगह से युवक सेना मे भर्ती हुए। परन्तु अब भी मेटरनिख अपनी महाशक्ति के साथ ग्रीक जनता के विद्रोह को शान्त करने की चिन्ता मे व्यग्र था। आखिर, वह इस बात मे कामयाब हुआ, कि आस्ट्रिया और प्रशिया को ग्रीस की किसी भी प्रकार की सहायता करने से रोके रखे। पर अन्य देशो पर उसका जादू नहीं चला। जनता

में ग्रीस की सहायता के लिये जो आन्दोलन चल रहा था, वह बहुत प्रबल था। रशिया, फ्रास और ग्रेट ब्रिटेन ने मेटरनिख की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वहा के लोग ग्रीस की पूर्ण सहायता करते रहे। कुछ समय बाद ही इङ्गलैंड को ध्यान आया कि ग्रीस की स्वतन्त्रता का परिणाम यह होगा, कि टर्की की शक्ति निर्बल पड जायगी। अन्य बाल्कन जातिया भी ग्रीस का अनुसरण करेंगी और अन्ततोगत्वा टर्की का सर्वथा विनाश हो जायगा। इङ्गलैंड अपने पूर्वीय साम्राज्य की रक्षा के लिये यह आवश्यक समझता था, कि टर्की का विनाश न होने दिया जाय। यूरोप और एशिया के बीच के मार्ग पर इस समय टर्की का अधिकार था। टर्की से इङ्गलैंड को किसी प्रकार का खतरा नहीं था। पर यदि टर्की की शक्ति कमजोर हो जाय और इस महत्वपूर्ण मार्ग पर रशिया व किसी अन्य शक्तिशाली राज्य का कब्जा हो जाय, तो इङ्गलैंड के लिये बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न हो जाती थी। अतः इङ्गलैण्ड का कल्याण इसी में था, कि टर्की को नष्ट होने से बचाया जाय। आखिर, इस विचार से इङ्गलैंड ने ग्रीस की सहायता बन्द कर दी। परन्तु रशिया और फ्रास निरन्तर उसकी सहायता करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ, कि ग्रीस को अपने मनोरथ मे सफलता प्राप्त हुई। एड्रियानोपल की सन्धि मे (१८२९) ग्रीस की पूर्ण स्वतन्त्रता स्वीकृत कर ली गई।

ग्रीस मे स्वाधीन राज्य की स्थापना हो गई। शासन करने के लिये बवेरिया के राजकुमार ओटो को—जिसकी आयु १८ वर्ष की थी, राजगद्दी पर बिठाया गया। शासन विधान का निर्माण कर वैध राजसत्ता कायम की गई। यरोप भर के उदार लोग इस बात से बहुत अधिक प्रसन्न हुए। क्रान्ति की भावनाओं के प्रारम्भ होने के बाद ग्रीस पहला राज्य था, जिसने विदेशी शासन के विरुद्ध लड़ कर स्वतन्त्रता प्राप्त की थी।

अन्य बालकन जातियों में भी ग्रीस के उदाहरण ने असाधारण साहस का सचार किया। वे सब स्वाधीनता के लिये कोशिश करने लगीं। रशिया इस प्रयत्न में उनका प्रधान सहायक था। जनता से उसे कोई सहानुभूति नहीं थी, पर टर्कों की शक्ति को कमजोर कर अपने प्रभाव को विस्तृत करने की पूर्ण सम्भावना उसे दृष्टिगोचर होती थी। दूसरी तरफ ग्रेट ब्रिटेन इन जातियों की भावनाओं का प्रधान विरोधी था। ब्रिटेन को जनता से विशेष विरोध नहीं था—परन्तु टर्कों के निर्बल होने से उसे अपनी हानि प्रतीत होती थी। रशिया और ब्रिटेन की इन भावनाओं ने बालकन प्रायद्वीप की समस्या को कितना जटिल बना दिया, इस बात का उल्लेख आगे चलकर किया जावेगा। यह इतना लिखना पर्याप्त है, कि क्रान्ति की लहर सम्पूर्ण बाल्कन प्राय द्वीप में स्वतन्त्रता के लिये उत्कट आकाक्षा का प्रादुर्भाव कर रही थी।

४. फ्रांस की द्वितीय राज्यक्रान्ति

सन् १८३० मे फ्रास मे द्वितीय राज्यक्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। १७८९ की क्रान्ति ने जिन नवीन भावनाओं को जन्म दिया था, वे अपना कार्य कर रही थीं। वीएना की काग्रेस ने इन भावनाओं को कुचलने का यथाशक्ति प्रयत्न किया था। बोर्बों राजवंश का पुनरुद्धार करके वीएना के राजनीतिज्ञों ने फ्रास में पुराने जमाने को फिर से वापिस ले आने के लिये कोई भी कसर उठा नहीं रखी थी। पर नई प्रवृत्तियों को नष्ट कर सकना उनकी शक्ति के बाहर था। १८ वे लुई के शासन से लोग बहुत अधिक असतुष्ट नहीं हुए। उसने शक्तिभर जनता की परवाह करने का प्रयत्न किया था। पर चार्ल्स १० वा बहुत ही स्वेच्छाचारी तथा उद्धत राजा था। वह 'सच्चे अर्थों में' राजा बनना चाहता था। वैध राजसत्ता, उसकी दृष्टि मे कोई अर्थ ही नहीं रखती थी। परिणाम यह हुआ कि क्रान्ति की भावनाये फिर प्रबल होगई। चार्ल्स के

शासन से जनता असतुष्ट थी। क्रान्ति की प्रवृत्तिया निरन्तर जोर पकड़ रही थीं। इन दो कारणों ने मिल कर १८३० की द्वितीय राज्य क्रान्ति का प्रादुर्भाव किया।

चार्ल्स १० वा जनता के अधिकारों का घोर शत्रु था। वह पहले कट्टर राजसत्तावादी दल का नेता रह चुका था। १८ वे लुई की समझौते की नीति को देख कर वह गुस्से मे दात पीसा करता था। वह कहता था, कि इङ्गलैण्ड के राजा के समान 'वैध राजा' होने की अपेक्षा तो लकड़िया चीरना अधिक अच्छा है। १८२४ मे जब वह फ्रास की राजगद्दी पर बैठा, तब उसने निश्चय किया कि मै ईश्वर की इच्छा के अनुसार राज्य करूगा, जनता की इच्छा से नहीं। वह पूर्ण रूप से १६ वें लुई के समान स्वेच्छाचारी राजा होना चाहता था। उसका दृढ सकल्प था कि मैं क्रान्ति की सब भावनाओं को पूरी तरह कुचल कर वास्तविक राजा की तरह फ्रास का शासन करूँगा। राजगद्दी पर बैठते ही चार्ल्स ने अपना कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। लेख, भाषण और प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गई। कुलीन जमीदारों को हरजाने के तौर पर ६० करोड रुपये दिये गये। पादरियों को पुराना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कराया गया। शिक्षा का कार्य चर्च के सुपुर्द कर दिया गया। चार्ल्स ने नि.सङ्कोच रूप से पुराने जमाने को स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। इस नीति का परिणाम यह हुआ, कि फ्रास मे विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड होगई। उदार विचारों के लोग जोर पकड़ने लगे। रिपब्लिक और क्रान्ति के पक्षपातियों को अपनी शक्ति बढाने का उत्तम अवसर प्राप्त होगया। १८३० के राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन मे उन लोगो की सख्या बहुत अधिक बढ गई, जो नवीन प्रवृत्तियों के पक्षपाती थे और चार्ल्स दशम की नीति का विरोध करते थे। निर्वाचन के परिणाम को सुनकर चार्ल्स को बहुत क्रोध आया। २६ जुलाई सन् १८३० के दिन उसने चार विशेष कानून जारी किये। इन कानूनो में

निम्न लिखित व्यवस्थायें की गई थीं (१) प्रेस की स्वाधीनता को रोका गया (२) नई राष्ट्रप्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर दिया गया। (३) निर्वाचन का अधिकार किन को हो, इस सम्बन्ध मे नये नियम जारी किये गये। इन नियमों से वोट का अधिकार बहुत कम लोगों को रह गया। तीन चौथाई लोग वोट के अधिकर से वञ्चित कर दिये गये। (४) राष्ट्रप्रतिनिधि सभा का नया निर्वाचन करने के लिये हुकुम जारी हुआ। चार्ल्स दशम को स्वप्न मे भी खयाल नही था कि उसके इन विशेष कानूनों का क्या परिणाम होगा। वह तो मजे से शिकार खेलने मे वक्त गुजार रहा था। परन्तु इन कानूनों के प्रकाशित होते ही फ्रास भर में विद्रोह की ज्वालायें व्याप्त होगई। बोनापार्टिस्ट, रिपब्लिकन, वैध राजसत्तावादी—सब दल राजा की स्वेच्छाचारिता का विरोध करने के लिये एक हो गये। स्वाधीनता के जयजयकारों से पेरिस गूंज उठा। पुराने सिपाही, विद्यार्थी, मजदूर—सब भड़क गये। पेरिस की गलियो मे किलाबन्दी की जाने लगी। पत्थर, ईंट, तख्ते, पुरानी मेज कुर्सिया—जो कुछ भी मिला, इकट्ठा कर लिया गया और उससे मोर्चाबन्दी की जाने लगी। १७८९ और १७९२ के दिन एक बार फिर दृष्टिगोचर होने लगे। सारे पेरिस में सनसनी फैल गई। लफायत के नेतृत्व मे पेरिस के उदार लोग खुल्लमखुल्ला विद्रोह के लिये निकल पड़े। पेरिस विद्रोहियों के कब्जे मे आगया। राजा की सेनाओं ने उनका मुकाबला किया। पर जनता की शक्ति का सामना नहीं कर सके। तीन दिन तक लगातार गलियों में लड़ाई होती रही। सेना की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ थी। बहुत से सिपाही तो स्पष्टरूप से विद्रोह में हिस्सा ले रहे थे। प्रथम राज्य क्रान्ति ने जो भावनायें उत्पन्न की थीं, वीएना की कांग्रेस ने उन्हें केवल दबा दिया था। अवसर पाते ही ये फिर एक बार फूट पड़ीं। आखिर, चार्ल्स की पराजय हुई। उसे जनता की इच्छा के सम्मुख सिर झुकाना पड़ा। अपने १० वर्ष के

पोते को राजगद्दी पर बिठाकर वह स्वय इङ्गलैण्ड भाग गया। स्वेच्छाचारी राजसत्ता के पुनरुद्धार के लिये जो प्रयत्न उसने प्रारम्भ किया था, वह शीघ्र ही विफल हो गया।

क्रान्तिकारियों के सम्मुख अब यह समस्या पेश आई, कि शासन की क्या व्यवस्था करें। रिपब्लिकन दल का पक्ष था कि अब रिपब्लिक की स्थापना करनी चाहिये। क्रान्ति के वास्तविक सञ्चालक इसी दल के थे। मजदूर, व्यवसायी और विद्यार्थी इस दल मे बहुसख्या मे विद्यमान थे। ये सब रिपब्लिक के लिये उत्सुक थे। परन्तु मध्यश्रेणी के लोग— जिनका नेता थीयर था, वैध राजसत्ता के पक्षपाती थे। लफायत ने मध्यस्थ का कार्य किया और दोनों दलों मे समझौता हो गया। आखिर, रिपब्लिकन लोग भी वैध राजसत्ता की स्थापना के लिये राजी हो गये। ७ अगस्त १८३० को राष्ट्र प्रतिनिधि सभा मे यह विषय पेश हुआ और निश्चय हुआ कि लुई फिलिप को फ्रास की राजगद्दी पर बिठाया जाय। लुई फिलिप बोर्बो राजवश की एक शाखा ओर्लियनिस्ट वश का था, और अपने विचारों मे बहुत उदार था। लोग उसे बहुत चाहते थे। १८३० की क्रान्ति पूर्णरूप से सफल हुई। जनता ने स्वय अपना राजा चुना। जनता के अधिकारों की यह स्पष्ट विजय थी। फ्रास का नया राजा अपनी युवावस्था मे जैकोबिन दल का सदस्य रह चुका था। उसने क्रान्तिकारी सेना मे सम्मिलित होकर क्रान्ति के विरोधियों से अनेक लड़ाइया भी लड़ी थीं। 'आतङ्क के राज्य' मे जब फ्रेञ्च राज्यक्रान्ति ने बहुत उग्ररूप धारण किया, तब यह लुई फिलिप उसका विरोधी हो गया और फ्रास से भाग गया। वीएना की काग्रेस के बाद जब भागे हुए लोग अपने देश वापिस आये, तब यह भी आया। इस प्रतिक्रिया के काल में भी यह लोकतन्त्र का पक्षपाती रहा और यही कारण है, कि जनता इसे बहुत चाहती थी। वह सामान्य लोगों की तरह रहता था। सादे रहन सहन की वजह से भी लोग उसके बहुत पक्ष मे थे। १८३०

की राज्यक्रान्ति के बाद फ्रास में रिपब्लिक की स्थापना नहीं हुई, परन्तु जनता ने अपनी इच्छा से—अपनी सम्मति से यह निश्चय किया कि उनका शासक कौन हो। इस प्रकार १८३० की क्रान्ति सब प्रकार से सफल हुई।

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के लुई फिलिप को राजा चुनने के बाद ८९ प्रतिनिधियों के हस्ताक्षरों से एक उद्घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ। इसमें कहा गया था—फ्रासीसी भाइयो! फ्रास अब स्वतन्त्र है। एकतन्त्र स्वेच्छाचारी शासन अपना सिर ऊँचा उठा रहा था, पर पेरिस की जनता ने उसे पददलित कर दिया है। अब फिर व्यवस्था और स्वतन्त्रता की स्थापना हो गई है। लुई फिलिप हमारे अधिकारो की रक्षा करेगा, क्योंकि वह अपने अधिकार हम से ही प्राप्त करेगा।' नये शासन विधान में प्रेस की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया गया। लोग स्वतन्त्रता से सभा कर सके, इस अधिकार को माना गया। उन सब लोगों को वोट का अधिकार दिया गया, जिनकी आयु २५ साल से अधिक हो और जो अपनी जायदाद पर कम से कम १२०) रु० वार्षिक कर देते हों, या यदि वे कोई पेशा करने वाले हों, तो कम से कम ६०) रु० वार्षिक टैक्स देते हों। इस प्रकार मध्यश्रेणी के लोगो को वोट का अधिकार प्राप्त हुआ। पर सर्वसाधारण जनता को—किसानो और मजदूरों को इस नये शासन विधान ने भी कोई अधिकार नहीं दिया। ६०) रु० वार्षिक टैक्स देने वाले लोगों की सख्या भी बहुत अधिक नहीं थी। परन्तु नये मताधिकार के अनुसार वोटरों की सख्या दुगने के लगभग हो गई थी और समय को दृष्टि में रखते हुए यह मामूली बात नहीं थी। इस नये शासन विधान के अनुसार यह भी निश्चय किया गया, कि रोमन कैथोलिक धर्म का राज्य के साथ कोई सम्बन्ध न रहे, सब लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। शिक्षणालय चर्च के आधीन न रहें। इस प्रकार १८ वे लुई और १० वे चार्ल्स के समय मे जो प्रतिक्रिया हुई थी, उसे बहुत हद तक १८३० की राज्यक्रान्ति द्वारा दूर किया गया।

लुई फिलिप के मुख्य पक्षपाती मध्यश्रेणी के लोग थे। उसके विरोधियों की सख्या कम नही थी। कुलीन श्रेणी के लोग उसकी सत्ता को स्वीकृत करने के लिये तैयार न थे। वे बोर्बों राजवश के किसी कुमार को फ्रास की राजगद्दी पर देखना चाहते थे, इसके अतिरिक्त बोनापार्टिस्ट दल और रिपब्लिकन दल भी उस के शासन को स्वीकृत करने के लिये उद्यत न थे। बोनापार्टिस्ट दल 'रोम के बादशाह' को फ्रास का राज्य देना चाहता था और रिपब्लिकन लोग रिपब्लिक के आदर्श को पूर्ण करना चाहते थे। यद्यपि बहुत से रिपब्लिकन लोगों ने समझौते के तौर पर लुई फिलिप को राजा मान लिया था, पर उनकी वास्तविक आकाक्षा रिपब्लिक स्थापित करने की ही थी। मजदूर, किसान, कारीगर और अन्य सामान्य स्थिति के लोग नये शासन से असन्तुष्ट थे। इन लोगों के बड़े हिस्से को वोट का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था, अतः शासन पर उनका कोई प्रभाव नहीं था। उनमे असन्तोष फैलने लगा। लोग कहने लगे—चार्ल्स १० वे के स्वेच्छाचारी शासन का स्थान फ्रास के अमीरो के स्वेच्छाचारी शासन ने ले लिया है। वास्तविक लोकतत्र का फ्रास मे सर्वथा अभाव है। एक के बाद एक गुप्त समिति सङ्गठित की गई। मजदूर लोग अपनी हालत को अच्छा बनाने के लिये आन्दोलन करने लगे। काम करने के घण्टे कम होने चाहिये, वेतन बढने चाहिये, कारखानों की दशा को अधिक स्वास्थ्यप्रद बनाना चाहिये, कारखानो मे काम करने वाली स्त्रियों और बच्चों पर सख्ती नही की जानी चाहिये तथा उनके लिये विशेष सुविधाये और नियम होने चाहिये—इस प्रकार की मागे मजदूरों की तरफ से पेश की जाने लगी। मजदूर कहते थे— क्रान्ति से हमे क्या मिला है? चार्ल्स १० वे के शासन का अन्त हुआ, तो हमें क्या लाभ पहुँचा। क्रान्ति हमने की और उसका लाभ ले गये मध्यश्रेणी के लोग, अतः आवश्यकता इस बात की है कि क्रान्ति को पूर्ण किया जाय। देश के शासन मे जन साधारण का हाथ हो, मजदूरो और किसानों को वोट

का अधिकार प्राप्त हो। इतना ही नही, उनकी दशा की उन्नत करने के लिये राज्य की तरफ से प्रयत्न किया जाय।

परन्तु फ्रास की सरकार इस आंदोलन को कुचलने के लिये तुली हुई थी। ऐसे कानून पास किये गये, जिनसे मजदूर अपने को संगठित न कर सके। सगठन के बिना मजदूर अपनी उन्नति कदापि नही कर सकते थे, और फ्रास की उस सरकार ने जिसका प्रादुर्भाव १८३० की राज्यक्रान्ति से हुआ था, इन्हीं सगठनों को गैर कानूनी कर दिया था। मजदूरों ने अपनी दशा को सुधारने के लिये हड़ताले की। राज्य ने अपनी शक्ति का प्रयोग कर इन्हें तोड़ डाला। राज्य की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि मजदूर लोग विद्रोह के लिये तय्यार हो गये। लियों के रेशम के कारखानों में काम करने वाले मजदूर काले झडे लेकर निकल पड़े। विद्रोह हो गया। मजदूर लोगों की माग थी, कि मनुष्य मात्र को वोट का अधिकार दिया जाय। इतना ही नहीं, राजनीतिक क्रान्ति के साथ साथ वे सामाजिक क्रान्ति भी चाहते थे। उनकी माग थी, कि आर्थिक उत्पत्ति के मुनाफे का हिस्सेदार मजदूरो को भी बनाना चाहिए। वे केवल राजनीतिक अधिकारो से सतुष्ट नहीं थे। लुई ब्ला आदि विविध लेखक इस काल मे आर्थिक समस्या को लोगों के सम्मुख उपस्थित कर रहे थे। सम्भवतः इतिहास में प्रथम बार जनता अनुभव कर रही थी कि राजनीतिक स्वतत्रता और समानता के अतिरिक्त आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता की भी समाज की शान्ति और सन्तोष के लिए आवश्यकता है।

इस आर्थिक असन्तोष के अतिरिक्त रिपब्लिक के पक्षपाती लोग अनुभव करने लगे थे कि १८३० को राज्यक्रान्ति वस्तुतः सफल नहीं हुई। लुई फिलिप को राज गद्दी पर बिठाना स्वीकृत कर उन लोगों ने भारी भूल की थी। नये शासन मे सर्व साधारण जनता की क्या दशा थी? अधिकाश लोगों को वोट तक का अधिकार प्राप्त नहीं था। मजदूरों की शिकायतों का कोई अन्त न था। क्या इस शासन को स्वराज्य व लोकतंत्र

कहा जा सकता था? कभी नहीं। रिपब्लिकन लोग कहते थे-सर्व साधारण जनता को शिक्षित करना चाहिए। अमीर गरीब का भेद न करके सब लोगों को समान रूप से राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने चाहिये। इस मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि विविध सभायें सगठित की गई। बहुत सी गुप्त समितिया बनाई गई। अखबारों मे आन्दोलन होने लगा। नवीन शासन का मजाक किया जाने लगा। तानों और कानूनों से लुई फिलिप और उसके मन्त्रियों की मखौल होने लगी।

लुई फिलिप को चाहिये था, कि असन्तोष के वास्तविक कारणों को समझ कर इस आन्दोलन को शान्त करता। पर उसने शक्ति के प्रयोग का निश्चय किया, पुराने ढङ्ग के स्वेच्छाचारी राजाओं का अनुसरण कर आन्दोलन को कुचलने की कोशिश की। उद्घोषणा की गई, कि सब सगठन अपनी नियमावलियों को सरकार के सम्मुख पेश करें और सरकारी अनुमति के बिना कोई सगठन कायम न रह सके। लोगों को स्वतन्त्रता से सभायें करने का अधिकार प्राप्त था, उसे छीन लिया गया। रिपब्लि-कन सभाओं और गुप्त समितियों को नष्ट किया गया। रिपब्लिकन समाचार पत्रों को बन्द कर दिया गया, उनके सम्पादक कैद कर लिये गये। राज्य की आलोचना करना, सम्पत्ति के वैयक्तिक अधिकार का विरोध करना या राजसत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के शासन विधान का पक्ष लेना अपराध बना दिये गये। जो लोग इन कानूनो को तोड़ें, उन्हें दण्ड देने के लिये विशेष न्यायालयों की सृष्टि की गई। लुई फिलिप ने उदार और लोकसत्ता के पक्षपाती होने के ढोंग को छोड़ कर पूर्ण रूप से एकतन्त्र और स्वेच्छाचारी शासन का प्रारम्भ कर दिया।

वस्तुतः, १८३० की राज्यक्रान्ति असफल हो गई। जनता की इच्छा और अनुमति से जो लुई फिलिप राज्यगद्दी पर बैठा था, वह भी जनता पर ही अत्याचार करने लगा। उसे कतल करने के लिये ६ बार कोशिश

की गई। पर वह बचता गया। आखिर १८४८ की राज्यक्रान्ति ने उसके स्वेच्छाचारी शासन का अन्त किया।

१८३० की राज्यक्रान्ति नई प्रवृत्तियों की सामयिक रूप से विजय थी। क्रान्ति की प्रवृत्तिया निरन्तर अधिक अधिक प्रवल होती जाती थीं। पर पुराने जमाने को एकदम पलट देना उनकी शक्ति के बाहर था। यही कारण है कि एक बार कुछ समय के लिये सफल होकर भी वे शीघ्र ही फिर परास्त हो गईं।

५. १८३० की क्रांति का यूरोपियन देशों पर प्रभाव

क्राति का प्रसार—फ्रास की द्वितीय राज्य क्रान्ति अपने देश तक सीमित नहीं रही। एक ऐतिहासिक ने लिखा है, कि जिस प्रकार तालाब मे पत्थर फेंकने से उसकी लहरे एक स्थान से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण तालाब को व्याप्त कर लेती हैं, इसी प्रकार जब फ्रास में राज्यक्रान्ति होती थी, तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप मे व्याप्त हो जाता था। फ्रास की प्रथम राज्यक्रान्ति ने यूरोप के अधिकाश देशों मे कुलीन श्रेणि के विशेषाधिकारों को नष्ट कर दिया था। राष्ट्रीयता और लोकतत्र की आवाज यूरोप भर मे गूज रही थी। १८३० की इस क्रान्ति का प्रभाव बहुत व्याप्त था। यूरोप भर मे एक प्रकार की सनसनी सी फैल गई थी। सब देशों की जनता मे असाधारण रूप से साहस और उत्साह का सचार हो गया था। वीएना की काग्रेस ने जिस प्रकार अस्वाभाविक रूप से यूरोप का पुनः सगठन किया था, उसके विरुद्ध सर्वत्र विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। नया जमाना पुराने जमाने को पलट देने के लिये एक भारी कोशिश करने को सन्नद्ध हो गया था।

बेल्जियन क्रान्ति—१८३० की क्रान्ति का प्रभाव सबसे पहले बेल्जियम में प्रगट हुआ। वीएना की काग्रेस ने बेल्जियम को हालैण्ड के साथ मिला दिया था। भाषा, धर्म, नसल, हित आदि सब दृष्टियों से

बेल्जियन लोग डच लोगों से भिन्न थे। डच लोग प्रोटेस्टेएट धर्म को मानने वाले थे, बेल्जियन लोग रोमन कैथोलिक थे। डच लोगों की भाषा और नसल बेल्जियन लोगो से सर्वथा पृथक थी। अधिकाश डच लोग किसान थे, दूध दही उत्पन्न करना उनका मुख्य व्यवसाय था। उनका हित इस बात मे था, कि मुक्तद्वार वाणिज्य की नीति का अनुसरण किया जाय। इसके विपरीत, बेल्जियन लोग विविध व्यवसायो मे लगे हुए थे। पक्का माल तैयार करना उनका प्रधान पेशा था। बेल्जियम के विविध नगर खान तथा वस्त्र व्यवसाय के केन्द्र बन चुके थे। उनका मुख्य लाभ इसमे था, कि सरक्षण की नीति का प्रयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त डच लोग फ्रास से घृणा करते थे, बेल्जियन लोग फ्रास के मित्र थे। वेल्जियम और हालैण्ड एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे। राष्ट्रीयता और जनता की इच्छा की सर्वथा उपेक्षा कर वीएना मे उन्हें एक साथ मिला दिया गया था। हालैण्ड का राजा विलियम प्रथम बेल्जियन लोगों पर अत्याचार करने मे जरा भी सकोच नही करता था। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलने के लिये, उनके आर्थिक हितों को हानि पहुंचाने के लिये जो कुछ भी उससे बन सका, उसने किया। व्यापारियों और व्यवसाइयों पर भारी टैक्स लगाये गये। शासन के लिये डच आफिसर नियत किये गये। डच कानून जारी हुए। प्रेस की स्वाधीनता नष्ट की गई। स्कूलों का निरीक्षण करने के लिये प्रोटेस्टेन्ट निरीक्षक रखे गये, यद्यपि वेल्जियम के विद्यार्थी और शिक्षक सभी रोमन कैथोलिक थे। हालैण्ड और वेल्जियम की पार्लमैण्ट एक थी। यद्यपि वेल्जियम की आबादी हालैण्ड की अपेक्षा दुगने के लगभग थी, पर पार्लमैण्ट में उनके प्रतिनिधियों की सख्या एक बराबर थी। मन्त्रिमडल में वेल्जियन लोग बहुत कम होते थे। १८३० में मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की सख्या सात थी। उनमे से केवल एक मन्त्री वेल्जियन था। अभिप्राय यह है कि वेल्जियन लोग अनुभव करते थे कि उनके साथ अधीनस्थ

देश का सा व्यवहार किया जा रहा है, और डच लोग अपने लाभ के लिये उनके हितों का विघात कर रहे है । उनमें स्वतन्त्रता की भावनायें निरन्तर प्रवल होती जाती थीं। डच शासन के अत्याचारों के होते हुए भी वेल्जियन लोगों में अपनी राष्ट्रीय, स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए आन्दोलन प्रचण्ड होता जाता था।

सफलता—१८३० में जब फ्रांस में राज्यक्रान्ति हुई, तब बेल्जियन लोगों में भी अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिये उत्साह का सचार हुआ। १८ नवम्बर के दिन बेल्जियम में विद्रोह हुआ। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता उद्घोषित करदी गई। नवीन शासन विधान का निर्माण किया गया। लिओपोल्ड प्रथम के नाम से एक जर्मन राजकुमार को राजगद्दी पर बिठा कर वैध राजसत्ता की स्थापना की गई। ४ अक्टूबर को बेल्जियम की स्वतन्त्र सरकार ने उद्घोषणा की, कि "बेल्जियम का प्रदेश शक्ति के प्रयोग से हालैण्ड से पृथक् कर लिया गया है, और अब वह पृथक् स्वतन्त्र राज्य के रूप में परिवर्तित किया जाता है।" जुलाई १८३१ में लिओपोल्ड का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम के साथ बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स में किया गया। इस प्रकार बेल्जियम हालैण्ड की आधीनता से मुक्त हुआ। अन्य यूरोपियन राज्यों ने उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकृत कर लिया। इसके कुछ समय बाद ही १८३९ में, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रिया, रशिया और प्रशिया ने बेल्जियम की स्वाधीनता के अतिरिक्त यह भी स्वीकृत किया कि हम सब उसे उदासीन राज्य समझेंगे। १९१४ तक बेल्जियम की उदासीनता कायम रही। किसी राज्य ने इसे नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया। पर १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध के प्रारम्भ में जर्मनी ने १८३९ के समझौते को 'कागज का टुकड़ा' कहकर बेल्जियम पर आक्रमण किया और इस अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि की उपेक्षा की। १८३० से १९१४ तक बेल्जियम पूर्णरूप से स्वाधीन रहा और 'उदासीन राज्य' होने के कारण सब युद्धों से बचा रहा।

जर्मनी से पृथक् नहीं था। मैटरनिख की पूरी शक्ति स्वतन्त्रता और एकता की प्रवृत्तियों को नष्ट करने में लगी हुई थी। जर्मन राज्य सघ की राजसभा में नवीन प्रवृत्तियों के विरुद्ध कानून पेश किये गये। उनको स्वीकृत कराने मे मेटरनिख को विशेष तकलीफ नहीं हुई। नये कानूनों का परिणाम यह हुआ कि सर्वत्र देशभक्तों और सुधार के पक्षपातियों पर भयङ्कर अत्याचार किये गये। देशभक्त लोग गिरफ्तार कर लिये गये। बहुतों को देश निकाला दिया गया। नवीन शासन विधान नष्ट कर दिये गये। शासन विधान के लिए अंग्रेजी मे शब्द है—कान्स्टीट्यूशन। इसका एक और अर्थ होता है, वह है शरीर का सगठन। एक बार की बात है, कि आस्ट्रिया के राजा फ्रासिस से किसी सरदार ने कहा—'आपका कान्स्टिट्यूशन (शरीर का सगठन) बहुत उत्तम है।' फ्रासिस इस पर बहुत नाराज हुआ। उसने क्रोध मे आकर कहा—"तुम क्या कहते हो? याद रखो, फिर कभी यह शब्द मेरे सम्मुख न बोलना। कहो, आपका शारीरिक स्वास्थ्य बहुत उत्तम है, या आपके शरीर की रचना बहुत अच्छी है, पर इस 'कान्स्टिट्यूशन' शब्द का प्रयोग कभी मत करो, मेरे यहा कोई कान्स्टिट्यूशन न अब है, और न भविष्य मे कभी होगा। शैतान के सिवा अन्य किसी के पास कान्स्टिट्यूशन नही होता और न किसी को इसकी आवश्यकता ही है।" इसमे सन्देह नहीं, कि उस समय के जर्मन शासकों मे कान्स्टिट्यूशन के लिये इसी ढङ्ग की घृणा विद्यमान थी। मैटरनिख कहता था, सब मुसीबतों की जड़ यह है, कि थोड़े से लोग खतरनाक प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन के लिये आन्दोलन करते हैं। जर्मनी में मैटरनिख को पूर्ण सफलता हुई। विद्रोह शान्त कर दिये गये। देशभक्तों की आकाक्षाओं को कुचल दिया गया। पर यह नहीं समझना चाहिये कि स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता के भाव सदा के लिये नष्ट हो गये। कुछ ही समय के अनन्तर जर्मनी एक सगठित राष्ट्र के रूप में परिवर्तित होगया और उसमें लोकतन्त्र शासन स्थापित होने मे भी बहुत देर

नहीं लगी। यह सब किस प्रकार सम्पन्न हुआ, इस पर हम यथास्थान आगे चल कर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

इटली—१८३० की क्रान्ति ने इटली पर बड़ा प्रभाव डाला। वीएना की काग्रेस ने इटली को अनेक राज्यों में विभक्त कर दिया था। इटालियन देशभक्त अपने देश को एक सूत्र में संगठित करने तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये उतावले हो रहे थे। १८३० की लहर ने उनमे नई आशा और उत्साह का संचार किया। इटली के लोगों को आशा थी कि स्पेन और फ्रास उनकी सहायता करेंगे। कुछ लोगों का खयाल था कि नैपोलियन के लड़के को स्वतन्त्र इटली की राजगद्दी पर-बिठा कर सम्पूर्ण देश को सगठित किया जा सकता है। इटली मे गुप्त समितियों की कमी नहीं थी। लोगों मे वतन्त्रता की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। वे अवसर की प्रतीक्षा मे थे। १८३० मे जब फ्रास, बेल्जियम, जर्मनी और पोलैण्ड—सब जगह क्रान्ति की अग्नि धधक रही थी, इटालियन लोगों ने भी विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। मोडेना के लोगो ने अपने ड्यूक को बाहर निकाल दिया। परमा की शासिका नैपोलियन की रानी मेरिया लुइसा थी। परमा के लोगों ने उसे अपने पितृगृह आस्ट्रिया भाग जाने के लिये बाधित किया। पोप के राज्य मे भी विद्रोह हुआ। पो से लेकर टाइबर नदी तक सब जगह राष्ट्रीय तिरगे झण्डे के नीचे लोग विद्रोह के लिये तैयार हो गये। इस विकट समय मे इटली के विविध राजाओं को एक स्थान से ही सहायता की आशा थी और वह था मेटरनिख। वह सदा 'ईश्वर के प्रतिनिधि' राजाओं की सहायता के लिये उद्यत रहता था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के इस सुवर्णावसर को वह कब अपने हाथ से जाने दे सकता था। एक दम आस्ट्रियन सेनायें इटली भेजी गई। आस्ट्रिया की सधी हुई सेनाओं का मुकाबला करने की हिम्मत इटालियन देशभक्तों मे नहीं थी। वे परास्त हो गये। पुराने राजाओं का पुनरुद्धार किया गया। १८३० की क्रान्ति की लहर में

इटालियन लोगों ने जो कुछ भी प्राप्त किया था, उस सब को मटियामेट कर दिया गया। मेटरनिख क्षण भर के लिये भी यह नही सह सकता था, कि आस्ट्रिया के पड़ौस मे ही लोग 'स्वतन्त्रता' और 'राष्ट्रीयता' की बाते करे। उत्तरीय इटली पर आस्ट्रिया का आधिपत्य भी था। इन 'भयकर' प्रवृत्तियों के होते हुए यह प्रभाव व आधिपत्य किस प्रकार कायम रह सकता था!

स्पेन—१८३० की क्रान्ति का प्रभाव स्पेन पर भी पड़ा। उदार विचार के लोग फिर जनता के अधिकारों को प्राप्त करने के लिये कोशिश करने लगे। परन्तु उन्हें सफलता नहीं हुई। फर्डिनैण्ड ने क्रूरता और अत्याचार का आश्रय लिया। क्रान्ति की भावनाओं से अपने देश को बचाने के लिये उसने सब प्रकार के उपायों का प्रयोग किया। परिणाम यह हुआ, कि कुछ समय के लिये क्रान्ति तथा सुधार की भावनाये दब गईं। १८३७ मे ये भावनाये फिर बलवती हुईं। उस समय जनता को नवीन शासन विधान की स्थापना मे सफलता हुई और स्पेन का शासन 'वैध राजसत्ता' के रूप मे परिवर्तित हो गया।

स्विटजरलैंड—स्विटजरलैंड के विविध प्रान्तों (कैण्टन) पर भी १८३० की क्रान्ति का असर हुआ। प्राय सभी प्रान्तों मे लोग अपने शासन विधान में सुधार करने के लिये अग्रसर हुए। अब तक स्विटजर-लैंड के विविध प्रान्तों मे जो शासन विधान प्रचलित थे, उनमे सर्व साधारण जनता का बहुत कम हाथ था। सम्पूर्ण शक्ति कुछ कुलीन परिवारों के पास थी। इनका शासन बहुत ही दोषपूर्ण तथा निन्दनीय था। १८३० में जनता ने कोशिश की कि इस अवस्था मे सुधार किया जाय। सब प्रान्तों मे शासन विधानों का सुधार किया गया। केवल प्रान्तीय शासन में ही नहीं, केन्द्रीय सरकार के सुधार के लिये भी आन्दोलन हुआ। स्थान-स्थान पर सभायें की गईं। आखिर केन्द्रीय सरकार को जनता के सम्मुख झुकना पड़ा। उसमें भी अनेक परिवर्तन

किये गये। १८३० की क्रान्ति की लहर ने स्विटजरलैण्ड के शासन में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये, परन्तु अभी वह पूर्णरूप से लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार नहीं बन सका। इसके लिये अभी और अधिक आन्दोलन की आवश्यकता थी। १८४८ मे जब फ्रास मे तीसरी राज्य-क्रान्ति हुई. और एक नई तथा अधिक प्रबल क्रान्ति की लहर का प्रारम्भ हुआ—उस समय स्विस लोग अपने उद्देश्य मे सफल हुए और स्विटजरलैण्ड का शासन पूर्णतया लोकतन्त्र सिद्धान्तों पर आश्रित हो गया।

ग्रेट ब्रिटेन—ग्रेट ब्रिटेन भी क्रान्ति के प्रभाव से नहीं बच सका। १८३० मे ग्रेट ब्रिटेन मे टोरी दल का प्रभुत्व था। इस कारण सर्वसाधारण जनता बहुत असतुष्ट थी। फ्रास की राज्यक्रान्ति के समाचारों से उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा और ब्रिटिश लोग भी अपने अधिकारों के लिये सघर्ष करने का प्रयत्न करने लगे। टोरी दल का प्रधान नेता विलिङ्गटन का ड्यूक—जो मेटरनिख का पक्का दोस्त था और उस समय मे इङ्गलैण्ड का प्रधानमन्त्री था, जनता के अधिकारों से जरा भी सहानुभूति नही रखता था। उसने स्पष्ट उद्घोषित कर दिया कि पार्लियामैण्ट के निर्वाचन के लिये वोट देने का अधिकार और अधिक विस्तृत नहीं किया जा सकता। उस समय इङ्गलैड मे वोट देने का अधिकार बहुत कम लोगों को प्राप्त था और निर्वाचन के ढग मे बहुत से दोष थे। जनता इनमे सुधार चाहती थी। पर टोरी पार्टी इससे सहमत नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि विलिङ्गटन के ड्यूक की निराशाजनक उद्घोषणा से लोग बहुत क्रुद्ध हो गये। टोरी पार्टी बदनाम हो गई। ह्विग (लिबरल) पार्टी का प्राबल्य हो गया और लार्ड जान रसल ने प्रथम सुधार बिल पेश किया। लोग अब तक भी सुधार के इतने खिलाफ थे कि यह बिल पास नहीं हो सका। ह्विग प्रधानमन्त्री ने पार्लियामैंट को बर्खास्त कर नये चुनाव का निश्चय किया। नवीन

निर्वाचन मे ह्विग दल की सख्या बहुत अधिक बढ़ गई। लोक सभा मे द्वितीय सुधार बिल सुगमता से पास हो गया, परन्तु लार्ड सभा ने उसे अस्वीकृत कर दिया। जनता सुधार के साथ थी, पर लार्ड लोग उसे क्रिया में परिणत नहीं होने देते थे। जब तक कि दोनों सभायें प्रस्तावित सुधारों को पास न करदे, तब तक वे स्वीकृत नही समझे जा सकते थे। परिणाम यह हुआ कि जनता मे प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। बड़ी बडी सभायें की गई, जुलूस निकाले गये। कई स्थानों पर दगे भी हो गये। लोग वैध उपायों से अपनी बात को मनाने मे असमर्थ हुए थे, उन्होंने शक्ति प्रदर्शित करने का निश्चय किया। आखिर, सुधार के विरोधी लार्ड लोगों को जनता की इच्छा के सम्मुख सिर झुकाना पड़ा। १८३२ का तृतीय सुधार बिल दोनों सभाओ मे पास हो गया। इससे जनता को बहुत बड़े परिमाण में अधिकार प्राप्त हुए। ग्रेट ब्रिटेन का शासन बहुत अशों मे 'लोकतन्त्र' हो गया। स्पेन्सर वालपूल ने १८३२ के सुधारों को सब से बडी क्रान्ति के नाम से पुकारा है। इन सुधारो के रूप मे ब्रिटेन मे नई प्रवृतिया बहुत हद तक सफल हो गई। इन्होंने शासन के रूप को ही परिवर्तित कर दिया। ग्रेट ब्रिटेन के शासन विधान के विकास पर एक पृथक् अध्याय मे विचार किया जावेगा। और तब इस सुधार बिल पर विस्तार से प्रकाश डाला जावेगा।

अमेरिका—१८३० की क्रान्ति की लहर केवल यूरोप तक ही सीमित नहीं रही। विशाल अटलान्टिक महासागर को पार कर अमेरिका मे भी उसने अपना प्रभाव प्रदर्शित किया। सयुक्त प्रान्त मेरिका मे भी दोनों तरह की प्रवृत्तिया विद्यमान थीं। एक तरफ जहा जनता लोकतन्त्र को पूर्णता तक पहुँचाने के लिये प्रयत्न कर रही थी, वहा ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी, जो नई प्रवृत्तियों को पसन्द नहीं करते थे। विशेषतया बड़े बड़े अमीर लोग इन प्रवृत्तियों के विरोधी थे। अमेरिका मे कुलीन श्रेणी का अभाव था। कोई ऐसे लोग नहीं थे, जिन्हें अपने जन्म

की वजह से विशेषाधिकार प्राप्त हों। पर वहां की विशेष आर्थिक दशा ने ऐसे लोगों की एक श्रेणी उत्पन्न कर दी थी, जो बहुत ही अधिक धनी और समृद्धिशाली थे। अमेरिका की विस्तृत उपजाऊ जमीनों पर गुलामों के श्रम से खेती की जाती थी। इन जमीनों के मालिक गुलामों की कमाई को लूट कर असाधारण रूप से अमीर हो गये थे। इसके अतिरिक्त खानों तथा कल कारखानों के मालिक भी समृद्धि की दृष्टि से बहुत आगे बढे हुए थे। ये लोग स्वाभाविक रूप से सर्वसाधारण जनता के अधिकारों तथा नई प्रवृत्तियों को बहुत पसन्द नहीं करते थे। १८३० की क्रान्ति की लहर ने जनता तथा सुधार के पक्षपातियों में नवीन उत्साह का सचार किया। दासप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन प्रबल होगया। सयुक्तप्रान्त अमेरिका के उत्तरीय प्रदेशों मे एक हजार के लगभग दास-प्रथा विरोधी सभाओं का सगठन किया गया। इन सभाओं की माग थी कि दासप्रथा को एक दम नष्ट कर दिया जाय। इस आन्दोलन के अतिरिक्त गरीबों और मामूली लोगों की दशा मे सुधार करने के लिये भी इस समय मे बहुत प्रयत्न किया गया। कारखानो मे काम करने वाले बच्चों और स्त्रियों के सम्बन्ध में विशेष नियम बनाये गये। कर्ज को अदा न कर सकने पर कैद मे डाल देने के नियम को उड़ाया गया। इसी प्रकार के अन्य भी बहुत से सुधार हुए। अमेरिका के इतिहास मे यह काल बहुत महत्त्व रखता है। इस समय जनता के अधिकारों को स्थापित करने के लिये बहुत कुछ कार्य हुआ। राज्य तथा सरकार ने यह अनुभव करना शुरू किया, कि सर्व साधारण जनता के अधिकारों की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। निस्सन्देह, यह एक नया विचार था। अब तक जनता राज्य से सघर्ष करती थी। अब से राज्य ने स्वयं जनता और उसके अधिकारों की फिकर करनी प्रारम्भ की।

मित्र मण्डल का अन्त—इस अध्याय के प्रारम्भ मे हमने बताया था, कि क्रान्ति की प्रवृत्तियों के खिलाफ जिस प्रतिक्रिया के काल का

प्रारम्भ वीएना की कांग्रेस से हुआ था, वह देर तक स्थिर न रह सका। शीघ्र ही नई प्रवृत्तिया प्रबल हो गई और पुराने जमाने को परास्त करने के लिये सघर्ष करने लगी। १८३० की लहर ने अनेक देशों से पुरानी भावनाओं को नष्ट कर दिया। अनेक देशों मे इस नई लहर को असफलता भी हुई। परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि ससार धीरे-धीरे नई रोशनी से प्रकाशित होता जाता था। नई प्रवृत्तियों को कुचलने तथा पुराने जमाने को स्थिर रखने के लिये यूरोपियन राज्यों ने जिस 'मित्रमण्डल' का निर्माण किया था, १८३० की क्राति की लहर से उसे भयकर धक्का लगा। ग्रेट-ब्रिटेन और फ्रास उससे पूर्णतया पृथक् हो गये। मैटरनिख का प्रभाव कम होगया। उसने रशिया और प्रशिया के साथ मिलकर राजा के दैवीय अधिकारों की रक्षा के लिये एक नवीन सघ का निर्माण किया। पर ब्रिटेन और फ्रास उसमे सम्मिलित नही हुए। १८३० की क्रान्ति ने ब्रिटेन मे टोरी दल का प्रभुत्व नष्ट कर दिया था। फ्रास मे तो जनता की इच्छा से एक नवीन शासन का स्थापन हुआ ही था। इस दशा मे यह कैसे सम्भव हो सकता था, कि ये दोनों राज्य मैटरनिख का साथ दे सके निस्सन्देह, १८३० की क्रान्ति की यह सबसे भारी विजय थी। मैटरनिख तथा उसके साथी जिस प्रकार यूरोप को चलाना चाहते थे, १८३० की क्रान्ति ने सिद्ध कर दिया कि उसमे उन्हें कदापि सफलता नहीं हो सकती।